३२०
राजनीति

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का ऐतिहासिक विश्लेषण

लेखक

केशवप्रसाद शर्मा

किताब महल
इलाहाबाद • बम्बई

समर्पित :—

हिन्दुस्तान के महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी और
पाकिस्तान के कायदे आजम मोहम्मद
अली जिन्ना को जो अब इस
संसार में नहीं हैं।

—केशवप्रसाद शर्मा

पाठकों से

देश की आजादी की वेदी पर हजारों क्रान्तिकारियों ने अपने प्राण निछावर किये। लाखों वर्षों तक साम्राज्यशाही यूनियन जैक के जेलों में सड़ते रहे। उन साथियों जैसा मैं भी वर्षों तक यूनियन जैक के नीचे जेलों में जीवन व्यतीत करता रहा। पूँजीवादी राष्ट्रीय तिरंगे सरकार के नैनी सेन्ट्रल जेल में सन् १६४७ ई० के ऐतिहासिक १५ अगस्त के उपरान्त महीनों तक मैंने जीवन व्यतीत किया। सन् १६४२ ई० की ऐतिहासिक अगस्त क्रान्ति और नेताजी के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज के सशस्त्र आक्रमण से जनता का क्रान्तिकारी मोर्चा विकसित हो रहा था। उसे अनुभवकर भारतीय तथा ब्रिटिश पूँजीवादी वर्ग दहल उठा। साँठ-गाँठ की बातें उनके बीच होने लगीं। भारतीय जनता के साथ विश्वासघातकर भारतीय पूँजीवादी वर्ग और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बीच समझौता हो गया। तिरंगे और दोरंगे के नीचे केन्द्र में अर्ध-राष्ट्रीय सरकार गठित की गई। परन्तु भारतीय पूँजीवादी वर्ग की आन्तरिक असंगतियाँ दूर न हो सकीं, बल्कि ये और भी प्रबल हो उठीं। मुस्लिम पूँजीपति बिना पाकिस्तान की स्थापना के सन्तुष्ट होने को नहीं थे। साम्प्रदायिकता के विष पैदाकर वे साम्प्रदायिक दंगों को साम्प्रदायिक युद्ध का रूप देने में व्यस्त हो गये। इसके भयानक रूप देखकर ब्रिटिश साम्राज्यशाही तथा भारतीय पूँजीवादी सुधारवादी नेतृत्व ने देश को साम्प्रदायिकता के आधार पर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की स्थापना करने का निश्चय किया और इसकी घोषणा ३ जून, सन् १६४७ ई० को ब्रिटिश साम्राज्यशाही की ओर से की गई।

इसका प्रभाव देश में अच्छा नहीं पड़ा। इससे साम्प्रदायिक युद्ध बन्द नहीं हो सका बल्कि और भी विकराल रूप इसने धारण किया। ता० २८-५-४७ से ही क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी की ओर से प्रान्तीय राजनीतिक शिक्षण शिविर शाहरणपुर जिला के नरसन कला गाँव में चल रहा था। इसके सामने से मुजफ्फरनगर-रुड़की रोड जाती है। वहाँ प्रान्त के विभिन्न जिलों से कार्य-कर्त्ता आये हुए थे। आर० एस० पी० के जिला मन्त्री साथी मुकुन्दसिंह जी, वैद्य, का गाँव करीब ११ मील पर था। ता० १५-६-४७ के लिये उन्होंने अपने यहाँ निमन्त्रित किया और अपने गाँव जरोदाजट और देवबन्द के आस-पास कई स्थानों में सभा की आयोजना की थी। वहाँ पैदल ही जाना था। शाम को क्लास खत्म होने के बाद करीब २६ साथियों ने साढ़े पाँच बजे वहाँ के लिये प्रस्थान किया। यहाँ यह उल्लेख करना अनुचित न होगा कि पश्चिमी पंजाब में साम्प्रदायिक युद्ध खूब जोरों पर था। उधर से काफी हिन्दू-सिख भागकर यू० पी० के पश्चिमी जिलों में, विशेषतः शाहरणपुर जिले में आये थे। इसके कारण उधर की परिस्थिति बहुत भयानक हो उठी थी, जिसका अन्दाजा हम नहीं कर पाये थे। पाँच ६ मील चलने के बाद एक साथी के आग्रह करने पर उसके गाँव में हम सब रुक गये और शर्बत पीने लगे। जब वहाँ से चले तो काफी अन्धकार हो चुका था। हम यहाँ यह कहना असंगत नहीं समझते कि हम सब जुलूस के रूप में जा रहे थे और पार्टी के नारे लगाते हुए आगे बढ़ रहे थे। शर्बत पीने के बाद उस गाँव में भी नारे लगे। वहाँ से दो-तीन फर्लाङ्ग पर ही मुसलमानों का एक छोटा गाँव पैरोली है।

नारे सुनकर वहाँ के मुसलमानों ने समझा कि हिन्दू उस गाँव के ऊपर आक्रमण करने आ रहे हैं। उसके आस-पास तीन-चार बड़े गाँव मुसलमानों के हैं। पैरोली के मुसलमानों ने नारे की आवाज सुनते ही उन गाँव में आदमी भेज दिया कि हिन्दू उनके गाँवों पर आक्रमण कर रहे हैं। इधर हम इससे एकदम अनभिज्ञ थे। पैरोली गाँव के पास पहुँचने पर हमने नारे लगाये और आगे बढ़ते गये। कुछ दूर जाने पर आगे के गाँव से बहुत जोरों का हल्ला सुनाई दिया। मैंने साथियों को रुकने को कहा। और भी स्पष्टत: सुनने में आया और ज्ञात हुआ कि अल्ला-हो-अकबर का नारा लगाते हुये वे गाँव के बाहर आ रहे थे। पीछे लौटने को मैंने साथियों को कहा और हम पीछे लौटे। पैरोली गाँव के पास आने पर तीन-चार आदमी खड़े मिले। उन लोगों ने कहा कि आप लोग क्यों लौटे जा रहे हैं? आप लोगों से क्या मतलब? उन लोगों से बातें करने के बाद आगे आप लोग चले जायेंगे।" मैंने यह सुनकर साथियों को ठहरने को कहा। इतने ही में वहाँ तीस-चालिस आदमी पहुँचे। मैंने उनसे बातें की। उन लोगों ने कहा कि हम उनके गाँव से आगे चले जायेंगे। उनके साथ हम चले। मैं अपने साथियों के आगे-आगे चल रहा था। कुछ दूर जाने के बाद तीन-चार सौ आदमी बल्लम, बर्छी, तलवार इत्यादि के साथ आ गये और हमला कर दिया। सर्वप्रथम मेरे ऊपर आक्रमण हुआ। चार लाठी मेरे सिर में लगी और मेरा सिर फट गया, मैं गिर गया। इस पर आठ-नव लाठी और लगी। मेरे सारे कपड़े खून से तर-बतर हो गये। साथी मन-भरसिंह, [आजाद हिन्द फौज का कप्तान] साथी, जयदेव

आजाद (बदाऊँ) साथी श्यामसुन्दर दत्त (कलकत्ता) और मैं बुरी तरह घायल हुआ। तीन-चार सौ की भीड़ में दस साथी इधर-उधर हो गये। बाकी हम १६ साथियों को वे साँपले गाँव में पकड़कर ले गये। वहाँ रस्सी से एक साथ ही हम सबों को बाँधकर भूसे के घर में बन्द कर दिया। अन्त में उन्होंने यह निर्णय किया कि हम सब को टुकड़े-टुकड़े करके गाड़ दिया जाय। कत्ल करने के लिये नंगी तलवार लेकर बहुत से लोग तैयार हो गये। मैंने उनसे कहा था कि "जो आप लोगों में दो-तीन समझदार हैं, उनसे मैं दो-चार बातें करूँगा उसके बाद आप लोग जो चाहें करें।" बाँधने के समय मैंने यह अनुभव किया था कि दो-तीन आदमी उनमें कुछ अच्छे ख्याल होते थे। मैंने उन लोगों को बुलाकर कुछ देर तक बातें की। मैंने उन्हें बतलाया कि क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी क्या चाहती है। क्रान्तिकारी समाजवाद क्या है? हमसे न कांग्रेस से मतलब न मुस्लिम लीग से। हम न हिन्दू जानते और न मुसलमान। हम तो गरीब और अमीर को ही जानते हैं। हम गरीबी और अमीरी के खिलाफ लड़ रहे हैं! मेरी बातों का काफी असर उनके ऊपर हुआ। उन लोगों ने और लोगों से बातें की और अन्त में उन लोगों ने अपने निर्णय को पलट दिया। हम खोल दिये गये और घर से बाहर निकाले गये। यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि एक क्षण के लिये भी साम्प्रदायिकता की भावना से मेरा विचार कलुषित नहीं हुआ था। घर से निकालकर उन लोगों ने हमसे कहा कि अब हम जा सकते हैं। मैंने कहा कि हम रात में यहीं रहेंगे और सुबह मीटिंग करके हम जायेंगे। उन लोगों ने खाने का प्रबन्ध

किया। मालिश के लिये तेल लाये। सबसे ताज्जुब की बात यह थी कि जो लोग कत्ल करने के लिये तलवार निकालकर खड़े थे, वे पचास-साठ हाथ जोड़कर खड़े हो गये और क्षमा माँगी। यह थी क्रान्तिकारी समाजवाद की विजय।

सुबह होते ही हम हाथ-मुँह धोकर तैयार हो गये। इतने ही में देवबन्द की पुलिस आ धमकी। उनके साथ हम भी चले। चलने के समय गाँव वालों ने हमें दूध पिलाकर विदा किया। पुलिस के आते ही मैंने स्पष्टतः कह दिया था कि किसी को किसी प्रकार तंग न करो और न कोई गिरफ्तार किया जायेगा और न किसी पर किसी प्रकार का मुकदमा ही चलाया जायेगा। इसके बाद और अधिकारियों से बातें हुईं। मैंने उनसे साफ-साफ कह दिया कि मैं मुकदमा नहीं चलाऊँगा। आज परिस्थिति बहुत खराब है। छोटी गलती से हजारों आदमियों की जान जा सकती है। मुकदमा वगैरह से परिस्थिति सँभलेगी नहीं बल्कि और भी खराब होगी।

यहाँ यह उल्लेख करना मैं आवश्यक समझता हूँ कि भूसे के घर से हम बाहर निकाले गये और रोटी और शकर खाये। खाने के बाद साथी सब सो गये। परन्तु मुझे दर्द के मारे नींद नहीं आई। लेकिन दिमाग तीव्र गति से काम कर रहा था। यह सोचने में मैं सारे दर्द को भूलसा गया कि "आज साम्प्रदायिकता चरम सीमा पर पहुँच रही है। इसके कारण साम्प्रदायिकता के आधार पर पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की स्थापना की घोषणा की गई है। गुलामी और शोषण के खिलाफ श्रमिक शोषित जनता की लड़ाई के लिये यह भी घातक होगी। इससे जनता को आगाह करना आवश्यक है।"

उस समय यह विचार हुआ कि इस विषय पर मैं एक पुस्तक लिखूँ। परन्तु पार्टी संगठन कार्य में संलग्न होने के कारण सर्वदा समय का अभाव रहा। जिसके कारण नरसन कला में उदय हुए विचार को कार्यान्वित मैं नहीं कर सका था।

सन् १९४७ ई० का ऐतिहासिक १५ अगस्त आया। भारत-वर्ष विभाजित तथा आजाद घोषित किया गया। परन्तु विभाजित भारत में आजादी का स्थान बरबादी तथा तबाही ले रही थी। देश भर में साम्प्रदायिक युद्ध ने भयानक रूप धारण किया और अपनी वास्तविकता से सामाजिक जीवन को ढक लिया। फिर तो मानवता का नाम लोप होने लगा। किसी प्रकार यह वश में किया गया। परिस्थिति कुछ काबू में आई। इसके विष में अपने जीवन को कलुषितकर श्रमिक शोषित जनता कुछ काल के लिये यह भूल गई कि अभी भी पूँजीवादी गुलामी और शोषण में जीवन व्यतीत करने के लिये वे बाध्य होती हैं। कुछ देर में उन्हें होश हुई और क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी के लाल झंडे के नीचे संगठित हो जहाँ-तहाँ वे वर्ग संघर्ष का संचालन करने लगी। इसके अस्तित्व को अनुभवकर पूँजीवादी वर्ग तथा सरकार खतरा महसूस करने लगी। फिर क्या था? सन् १९४७ ई० के दिसम्बर महीने के अन्त से पूँजीवादी सरकार का आक्रमण क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी पर प्रारम्भ हो गया। बहुत से किसान, मजदूर, क्रान्तिकारी समाजवादी कार्य-कर्त्ता जेलों में बन्द किये जाने लगे। मैं भी सन् १९४८ ई० के जनवरी में इलाहाबाद में गिरफ्तार किया गया और नैनी सेन्ट्रल जेल में नजरबन्द ६ महीने तक रखा गया। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये दमन को पूँजीवादी

सरकार काफी नहीं समझी। इसके अतिरिक्त साम्प्रदायिक भावनों को जीवित रखने का प्रयास यह करने लगी। यह नारा बुलन्द किया जाने लगा कि पाकिस्तान हिन्दुस्तान पर हमला करके हिन्दुस्तान को गुलाम बनाना चाहता है। इससे साम्प्रदायिक भावनाएँ और भी उत्तेजित हुईं।

दिन प्रतिदिन साम्प्रदायिकता और भी तीव्र हो उठने लगी। इसकी वेदी पर महात्मा गांधी की बलि चढ़ाई गई। यह थी इसकी चरम सीमा। महात्मा गांधी की मृत्यु की खबर मैंने नैनी सेन्ट्रल जेल के सेल में सुनी थी। उस समय मैं तिरंगी सरकार के जेल में दुर्व्यवहार के खिलाफ भूख हड़ताल कर रहा था। मैं सोचने लगा कि साम्प्रदायिकता हमें कहाँ ले जा रही है। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की स्थापना भी साम्प्रदायिक समस्याओं का हल नहीं कर सकी। बल्कि और भी इसने जटिल बना दिया है। मैं अनशन के समय तथा उसके बाद सोचने लगा कि इसका वास्तविक समाधान कहाँ है? मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि इसके लिये इसका ऐतिहासिक विश्लेषण करना आवश्यक है। उसके बाद ही हम इसका हल निकाल सकेंगे। इसके परिणाम-स्वरूप मैंने पाठकों के सामने "पाकिस्तान और हिन्दुस्तान का ऐतिहासिक विश्लेषण" पुस्तक के रूप में रखा है। मैं आशा करता हूँ कि पाठकगण इसे अध्ययन करेंगे और क्रान्तिकारी समाजवाद के प्रसार में सहायक होंगे।

—केशवप्रसाद शर्मा

मन्त्री—क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी

देवरा,

गया (बिहार)

ता० २२-१२-४८

विषय-सूची

१

वर्तमान भारतवर्ष

आज भारतीय श्रमिक शोषित जनता की गुलामी और शोषण के खिलाफ आजादी की लड़ाई विकट भौतिक परिस्थिति से होकर गुजर रही है। ता० १५-८-४७ को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति से लाचार होकर ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार ने भारतीयों के हाथों में शासन की बागडोर सौंप दी। परन्तु आजाद हिन्दुस्तान संयुक्त भारतवर्ष के रूप में कायम नहीं रहा। साम्प्रदायिक आधार पर भारतवर्ष का विभाजन होकर पाकिस्तान और हिन्दुस्तान कायम किया गया।

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की स्थापना के उपरान्त भी हिन्दू और मुस्लिम की समस्या हल नहीं हो सकी। बल्कि इसने और भी भयानक रूप ग्रहण कर लिया है। साम्प्रदायिकता के आधार पर भारतवर्ष के विभाजन के परिणामस्वरूप आज भारतीय शोषित श्रमिक जनता बँटी हुई है। इनके अन्दर साम्प्रदायिक विचार कूट-कूटकर भर गया है। वह आज भूल रहे हैं कि वह अभी भी शोषण की चक्की में पिसे जा रहे हैं। दूसरे साम्राज्यवादी युद्ध के उपरान्त पूँजीवादी संसार आर्थिक

संकट का बुरी तरह शिकार हो रहा है। प्रत्येक मुल्क में पूँजीवाद तथा पूँजीवादी वर्ग का अस्तित्व संकट से घिरा हुआ है। प्रत्येक देश का पूँजीवादी वर्ग अपने अपने ढंग से अपने अस्तित्व की रक्षा करने का प्रयास कर रहा है। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के पूँजीवादी वर्ग का अस्तित्व भी खतरे से खाली नहीं है। सदियों से ब्रिटिश पूँजीवादी-साम्राज्यवादी शोषण के परिणामस्वरूप भारतीय जनता की भौतिक अवस्था यों ही असहनीय हो उठी थी। इसके अतिरिक्त साम्राज्यवादी युद्ध के फलस्वरूप और भी खराब हो गई है। पूँजीवाद तथा पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ बगावत की अग्नि शोषित जनता के अन्दर सुलग रही है। आज हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का पूँजीवादी वर्ग जी जान से भारतीय शोषित जनता की बगावत की अग्नि को ठंडा करने का प्रयत्न कर रहा है। प्रथम प्रयास इसने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ गँठबन्धन करके किया है। साथ ही साथ यह भारतीय प्रतिक्रियावादी सामन्तशाहियों के साथ समझौता करके कर रहा है।

तीसरा सबसे बड़ा और प्रबलशाली उपाय—भारतीय जनता को साम्प्रदायिकता के आधार पर विभाजित करके उनकी संयुक्त क्रान्तकारी शक्ति को नष्ट करके अपने अस्तित्व की रक्षा करने की कोशिश भारतीय पूँजीवादी वर्ग कर रहा है। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में भारतीय जनता के विभाजन के उपरान्त भी इनका संकट नहीं दूर हो पाया; बल्कि दिन प्रतिदिन आर्थिक संकट के साथ भयानक होता जा रहा है। आज इस संकट से अपने को सुरक्षित रखने के लिये हिन्दुस्तान में यह प्रचार जोरों से किया जा रहा है कि किसी भी समय पाकिस्तान

हिन्दुस्तान पर आक्रमण कर सकता है। अतः इस खतरे को हमेशा के लिये खत्म करने के लिये यह आवश्यक है कि पाकिस्तान पर हमलाकर हिन्दुस्तान में मिला लिया जाये और अखण्ड अविभाजित भारतवर्ष की स्थापना की जाये। दूसरी ओर पाकिस्तान में यह प्रचार किया जाता है कि हिन्दुस्तान पाकिस्तान को ध्वंसकर हिन्दुस्तान में शामिलकर हिन्दुओं का राज्य कायम करना चाहता है। अतः हिन्दुओं की गुलामी से बचने के लिये यह आवश्यक है कि पाकिस्तान हिन्दुस्तान के ऊपर आक्रमण करके पाकिस्तान में सम्मिलित कर ले। अतः इस प्रकार भारतीय शोषित श्रमिक जनता को पूँजीवादी शोषण और गुलामी के खिलाफ मुक्ति की लड़ाई से अलग रखने का प्रयत्न भारतीय पूँजीवादी वर्ग कर रहा है। कुछ हद तक इसे सफलता भी प्राप्त हुई है, जो श्रमिक शोषित जनता की आजादी की लड़ाई के लिये घातक है। मानव समाज के इतिहास के अध्ययन से यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि भारतीय समाज के सामाजिक-आर्थिक जीवन के विकास तथा प्रगति और समाजवादी समाज के विकास के लिये संयुक्त भारतवर्ष अतिआवश्यक है। परन्तु आज तो भारतवर्ष साम्प्रदायिक आधार पर पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में बँटा हुआ है। फिर किस प्रकार विभाजित भारतवर्ष संयुक्त भारतवर्ष में विकसित हो सकता है। यह प्रश्न आज भारतीय समाज के सामने महत्वपूर्ण है। अतः इसका हल निकालने के लिये यह आवश्यक है कि यह हम देखें कि आखिर यह विभाजित ही क्यों हुआ। इसके तथा सही हल हासिल करने के लिये भी यह आवश्यक है कि वर्तमान भौतिक परिस्थिति के अतिरिक्त

आजादी की लड़ाई के तथा पाकिस्तान की स्थापना के इतिहास का सिंहावलोकन करें और ऐसा करके ही हम सही साधन तक पहुँच सकेंगे और इसके द्वारा शोषित श्रमिक जनता के संयुक्त भारतवर्ष को विकसित कर पायेंगे।

१९वीं सदी के प्रारम्भ का राष्ट्रीय आन्दोलन

जब से जनता गुलामी की बेड़ी में जकड़ी जाती है, तभी से उसकी मुक्ति की भी लड़ाई प्रारम्भ होती है। यह महत्वपूर्ण ऐतिहासिक नियम हिन्दुस्तान के ऊपर भी लागू होता है। गुलामी के साथ-साथ आजादी की लड़ाई का भी श्रीगणेश हो गया था। संसार में सर्वप्रथम पूँजीवाद का विकास ब्रिटेन में हुआ। पूँजीवाद के विकास के साथ-साथ ब्रिटेन पिछड़े हुए देशों के ऊपर अपना प्रभुत्व कायम करने का प्रयत्न सदियों तक करता रहा। इसके परिणाम स्वरूप १९वीं सदी के आरम्भ तक अंग्रेजों ने अरब के मुल्कों की आजादी हड़प उन्हें अपने साम्राज्यवादी पंजों में मजबूती से जकड़ लिया था। उक्त महत्वपूर्ण ऐतिहासिक नियम को पालन करते हुए अरबी देशों ने भी अपनी आजादी के लिये प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया। सर्वप्रथम उनके आन्दोलन ने धार्मिक सुधार का रूप धारण किया और प्राचीन धर्म में कुछ नवीनता की पुट दी जाने लगी। इसका उद्देश्य केवल धर्म सुधार नहीं था, प्रत्युत धार्मिक रूढ़ियों को दूर करके वर्तमान शासन व्यवस्था के प्रति रोष प्रकट करना भी था। साधारण जनता को धार्मिक सुधार के साथ ही आजादी की भी घूँटी पिलाई जाने लगी। इतिहास में यह आन्दोलन "वोहावीजम" के नाम से मशहूर है।

बहुधा मुसलमान हज करने के लिये मक्काशरीफ जाया करते हैं। १९वीं सदी के प्रारम्भ में जितने हाजी मक्काशरीफ गये, वे इस आन्दोलन से काफी प्रभावित होते और ब्रिटिश विरोधी भावना लेकर वहाँ से भारतवर्ष लौटते थे। सन् १८२० ई० में ऐसी भावना से ओत-प्रोत होकर सैय्यद अहमद मौलवी हज करके भारत लौटे। भारतवर्ष की राजनैतिक व्यवस्था में भी परिवर्तन करने के लिये उत्सुक हो उठे और अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिये भारतीय जनता में "बोहाबी" नाम से ही प्रचार और संगठन करने लगे। थोड़े दिनों में ही यह आन्दोलन काफी विकसित होकर आम जनता में फैल गया और दिन प्रतिदिन शक्तिशाली होता गया। इतने शीघ्र इसकी सफलता का श्रेय इसकी धार्मिक स्वच्छन्दता को नहीं, बल्कि इसके क्रान्तिकारी कार्य-क्रम को है। साधारण जनता में वे क्रान्ति का सन्देश लेकर गये थे। उनकी ये क्रान्तिकारी भावनायें शोषित पीड़ित जनता में सूखी बारूद में चिनगारी की भाँति पड़ीं और शीघ्र ही एक महाभयंकर क्रान्तिकारी विस्फोट हुआ। भारतीय आजादी की लड़ाई के इतिहास में १९वीं सदी के पूर्वार्ध का यह क्रान्तिकारी विस्फोट "बंगाल में कृषक विद्रोह" के नाम से विख्यात है। इस विद्रोह का नेतृत्व तित्तू मियाँ नामक एक मुसलमान क्रान्तिकारी के हाथ में था। इसके नेतृत्व में बंगाल के कई जिलों के ब्रिटिश साम्राज्यशाही द्वारा पीड़ित तथा शोषित कृषक संगठित होकर ब्रिटिश साम्राज्यशाही के ऊपर हमला बोल दिया। उन पर [illegible] मनोवृत्ति की छाप नहीं थी। सरकारी रिपोर्ट में इस कृषक-विद्रोह का वर्णन इस प्रकार

है :—"एक लाख किसानों ने इस विद्रोह में भाग लिया था। इस विद्रोह का मूल सिद्धान्त भारतवर्ष में प्रजातंत्र की स्थापना था।" इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत में भी कई कृषक विद्रोह हुए और कई स्थानों में विदेश जाने के प्रश्न पर सेना ने भी बगावत की। इन सभी विद्रोहों का प्रधानतः एक ही रूप था और था वह असन्तुष्ट भारतीयों का ब्रिटिश साम्राज्यशाही के खिलाफ विद्रोह। इनमें कहीं भी साम्प्रदायिकता की गंध तक नहीं थी। शत्रु की गोलियों से हिन्दू और मुसलमान दोनों के सीने समान रूप से बिंध रहे थे। ये घटनाएँ १८५७ ई० की आजादी की लड़ाई से पूर्व घट रही थीं।

भारतीय समाज के ऊपर अंग्रेजी हुकूमत का प्रारम्भिक प्रभाव

यह कहना या सोचना सर्वथा गलत है कि मुसलमान स्वतंत्रता संग्राम से सदा दूर रहे हैं और भरसक इसके मार्ग में रोड़े अटकाये हैं। इतिहास अपने गर्भ में एक नहीं ऐसे अनेक स्थल छिपे हुए हैं, जहाँ हिन्दू-मुस्लिम एकता के बेजोड़ मिसाल देखने को मिलते हैं। इन ऐतिहासिक सत्यों से आँख मूँदने से भारतीय शोषित जनता का अहित ही होता है तथा इसका स्पष्ट प्रभाव श्रमिक शोषित जनता की आजादी की लड़ाई पर भी पड़ता है और गुमराह होती है। ऐसी भ्रान्तिमूलक धारणाओं का निर्मूलन करने के लिये सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम का जीता जागता नमूना अब भी हमारे सामने मौजूद है।

विदेशी सौदागरों के हाथ में शासन-सूत्र आते ही भारतीय उद्योग-धन्धा, व्यापार और व्यवसाय सभी पर अंग्रेज शासकों

की क्रूर दृष्टि पड़ी और सभी असामयिक तथा अप्राकृतिक मृत्यु को प्राप्त हुए। एक ही केन्द्रीय सत्ता में बँधे हुए, भयंकर शोषण और पीड़न से भारतीय जनता समान रूप से त्राहि-त्राहि कर उठी और इसके कारण ब्रिटिश विरोधी भावना की एक ही धारा में हिन्दू और मुस्लिम सभी बहने लगे। कुछ भागों को छोड़कर अभी भारतवर्ष में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार प्रारम्भ नहीं हुआ था। जनता की बोल-चाल की भाषा उर्दू थी, जो वास्तव में हिन्दुस्तानी थी। ब्रिटिश शासकों के पूर्व अन्य भारतीय शासक शिक्षा पर विशेष जोर देते थे और राज-कोष से उसके लिये विशेष सहायता भी दी जाती थी। भूमिकर का पर्याप्त अंश शिक्षा के लिये सुरक्षित छोड़ा जाता था। ब्रिटिश शासक इस प्रकार की शिक्षा के प्रबन्ध को अपने अस्तित्व के लिये घातक समझते थे। ब्रिटिश शासन सत्ता की स्थापना के उपरान्त एक अंग्रेज महोदय जेम्स ग्रान्ट ने हिसाब लगाकर दिखाया कि बंगाल की चौथाई भूमि शिक्षा संस्थाओं में लगी हुई है, जो राजकर से सर्वथा मुक्त है। अंग्रेजी हुकूमत इसे कब सहन कर सकती थी कि इतनी बड़ी रकम शिक्षा के लिये व्यय की जाय जो उनके आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थ के लिये घातक था। फलतः सन् १८२५ ई० में एक कानून बनाकर सम्पूर्ण जमीन पर कर लगाने के लिये एक अदालत नियुक्त की गई; इसके परिणाम-स्वरूप राज कर में ३००००० पौंड की वृद्धि हुई। विदेशियों के कोष में तो लक्ष्मी बैठ गई, परन्तु भारती सरस्वती की दशा शोचनीय हो गई। उनके आराधकों की संख्या दिन प्रतिदिन घटने लगी।

हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि सोलहवीं और सत्तरहवीं

सदी में सामन्तवाद के गर्भ में पूँजीवाद का अंकुर उगने और बढ़ने लगा था। फलतः भारतवर्ष में क्रमशः भारतीय राष्ट्र और राष्ट्रीयता का उदय तथा विकास होने लगा। भारतीय जनता एक ऐसी राष्ट्रीयता के सूत्र में क्रमशः बँध रही थी, जिसकी संस्कृति और सभ्यता का आधार पूँजीवाद बनकर भारतीय पृष्ठिभूमि में विकसित हो रहा था। इसके पूर्व कि यह भ्रूण-समाज सर्वाङ्गपूर्ण हो सामन्त समाज के गर्भ से जन्म लेता भारतवर्ष में विदेशी व्यापारियों का 'आगमन हुआ और अंग्रेजी शासन का सूत्रपात हो गया और इस समाज का हत्या गर्भ में हो कर दिया गया। अतः युरोप के देशों के जैसा पूँजीवाद और राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता का विकास भारतवर्ष में नहीं हो सका। अंग्रेजी साम्राज्यवादी शोषण और गुलामी से पीड़ित होकर भारतीय जनता समान रूप से एकता के सूत्र में बँधकर कंधे से कन्धा मिलाकर उठ खड़ी हुई। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारतीय जनता ने स्वतंत्रता की बलिवेदी पर निछावर होकर अपनी एकता का परिचय दिया है। इस प्रसंग में इतना कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि भारतवर्ष में जहाँ भी कहीं प्रारम्भ में बुद्धि जीवी लोग अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव में आ गये थे वहाँ की जनता स्वतंत्रता की प्रथम लड़ाई में अपना उचित सहयोग न दे सकी।

भारतीय जनता की प्रारम्भिक एकता और उसे भंग करने का प्रयास

उपरोक्त बातों तथा घटनाओं से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि भारतीय जनता की एकता का आधार केवल अंग्रेजों

के अत्याचार से पीड़ित होने के कारण विरोध की समान भावना ही न थी बल्कि साधारण बोल-चाल की भाषा की एकता, समान रहन-सहन और सभ्यता भी थी, साथ ही साथ वह एकता भी पैदा हो रही थी, जो पूँजीवादी समाज की देन है। किन्तु अंग्रेजों के आगमन ने उसका नाश कर डाला। अतः हमारे सामने भारतीय एकता मुख्यतः अंग्रेजी-विरोधी भावनाजन्य दिखाई पड़ती है। इसका एक और उदाहरण है। इसका महत्व विशेषतः इसलिये है कि स्वयं एक अंग्रेज ने अपने मुख से स्वीकार किया है। यह एकता है सरकारी सेना में भारतीय सैनिकों की। मि० मैक, एक अंग्रेज सहोदय इसका वर्णन इस प्रकार करते हैं—"सेना में सभी मिल-जुलकर हर एक अवसर का समान रूपसे सामना करते हैं। यहाँ जाति और रंग का कोई भेद-भाव नहीं है। समय पड़ने पर हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख और पूर्विया बिल्कुल एक हो जाते हैं।" यह है भारतीय जातियों की एकता का ज्वलन्त प्रमाण। किन्तु जिन अंग्रेज महोदय ने इसकी एक स्थान पर प्रशंसा की है, उन्हीं के भाई-बन्धुओं ने अपने अस्तित्व के लिये इसे खतरनाक समझ इसके मूलोच्छेदन में अपनी एड़ी चोटी का पसीना एक कर दिया। इस एका के भयावह परिणाम ने अंग्रेजों को सन् १८५७ ई० की घटनाओं द्वारा त्रस्त कर दिया। सन् १८५७ ई० के गदर ने अंग्रेजों के भाग्य का लगभग निपटारा ही कर दिया था। यही एकता थी जो अंग्रेजों की आँखों की शूल थी। एक अंग्रेज महोदय ने जिनका नाम जानलारेन्स था, जो स्वयं इस भयानक अग्नि काण्ड की लपटों में झुलसे हुए हैं, इससे बचने की यह तरकीब पेश की है। आप का कथन है:—"गदर के पूर्व की

सेना का सबसे बड़ा दोष, जो निर्विवाद रूप से अत्यन्त भयानक और हमारे लिये घातक था, बंगाल की सेना में समता ... और भ्रातृत्व। इससे बचने की अमोघ औषधि है, उनमें वैषम्य स्थापित करना। जो इन दो उपायों के अवलम्बन से सफलतापूर्वक स्थापित किया जा सकता है। प्रथम-युरोपियनों की संख्या की वृद्धि, दूसरी विभिन्न जातियों की अलग-अलग रेजीमेन्ट बनाकर।"

ब्रिटिश अफसरों ने इस प्रकार भारतीय सेना की एकता को नष्ट करने के लिये तथा उसमें एक देशीय भावना को उखाड़ फेंकने के लिये सेना के संगठन में आमूल परिवर्तन किया। उन्हीं के शब्दों में पढ़िये उनका नया संगठन किस प्रकार का है। सेना, बटालियन, कम्पनी, स्क्वैड्रन तथा बहुधा निश्चित जातीय साद्रूनों में बाँट दी गई हैं। इन विभिन्न टुकड़ियों का विभाजन जाति, सम्प्रदाय तथा धर्म के आधार पर था। इस प्रकार से भारतीय सेना की एकता की भावना को कुचलने का उपाय काम में लाया गया था। आम जनता की राष्ट्रीय भावना तथा एकता सेना से किसी भी अंश में कम न थी। सन् १८५७ ई० का उदाहरण इसकी पुष्टि करने के लिये पर्य्याप्त है, पर विद्रोह के बाद की कुछ घटनाएँ इस पर और अधिक प्रकाश डालती हैं। अतः उनका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। हम सभी सर सय्यद अहमद खाँ के नाम से परिचित हैं। छोटी आयु में ही उन्होंने ब्रिटिश सरकार की सेवा स्वीकार कर ली थी। अपनी नमकहलाली का परिचय उन्होंने "सन् १८५७ ई० के विद्रोह" में पूर्ण रूप से दिया था। भारतीय विद्रोही जनता के दमन में इन्होंने अंग्रेजों का खूब

साथ दिया। इनके प्रयत्न से बहुतेरे अंग्रेजों के प्राण बच गये। जब इसका समाचार क्रान्तिकारी जनता को मिला तो उसने दिल्ली में उनके घर को लूटा और नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

सन् १८५७ ई० की क्रान्ति के उपरान्त

अंग्रेजी सरकार की आँखों में भारतीय जनता की यह एकता चुभने लगी और उसने किसी भी तरह इसको नष्ट-भ्रष्ट करने में ही अपना कल्याण समझा। विद्रोहियों का दमन करके तथा राजभक्तों को पुरस्कार और प्रतिष्ठा देकर पहला कदम उठाया गया। जनता के विद्रोहियों को "सर" का खिताब मिला और जिसे जनता ने सर पर उठाया था, उसका सर धड़ से अलग कर दिया गया। इन्हीं विभीषणों तथा भारतीय-हित घातकों को ही पाकर तो 'सर जौन शिली' को यह कहने का साहस हुआ कि "जानते हो, भारतीयों को ही एक दूसरे के विरुद्ध खड़ा करके हम गदर को दबाने में सफल हुए हैं, और जब तक जनता का, संगठित होकर, सरकार की आलोचना करने तथा उसके विरुद्ध विद्रोह करने का स्वभाव नहीं बन जाता, तब तक इंगलैण्ड से भारतवर्ष पर शासन करना असम्भव है" इसमें कोई विलक्षणता नहीं है। जैसाकि पहले मैंने कह दिया है, यदि अवस्था परिवर्तित हो गई और जनता राष्ट्रीयता के सूत्र में बँधकर किसी कारण से विचार करने लगी, तो यह मैं नहीं कह सकता कि हमें अपने साम्राज्य के लिये भयभीत होना चाहिये, परन्तु इतना तो कहूँगा कि 'साम्राज्य के स्थायी होने के विचार को अवश्य परित्याग देना होगा।" इसके बाद ब्रिटिश सरकार ने 'दमन' और 'फूट' नीति का प्रयोग करना

आरम्भ कर दिया। चाटुकार लोग उच्च पदों पर नियुक्त किये जाने लगे, जनता पर आतंक जमाने का प्रयत्न आरम्भ हुआ। उन तमाम प्रयत्नों के बावजूद भी जनता की विद्रोही मनोवृति कुचलने में अंग्रेजी सरकार सफल न हो सकी। उसकी शोषण नीति से जनता का असन्तोष दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था। गदर के दो वर्ष बाद सन् १८५६ ई० में बढ़ता हुआ यह असन्तोष विद्रोह के रूप में प्रकट हुआ। इतिहास में "नील विद्रोह" के नाम से प्रसिद्ध है। अब तक अत्याचार का प्याला भर चुका था और आततायियों को डुबा देने के लिये समुद्र कर उफन पड़ा। इतना ही नहीं, देश और भी क्रान्तिकारी उपायों का अवलम्बन कर रहा था जिसमें भारतीय समान रूप से शरीक थे। इसमें "बहावी" संघ का नाम उल्लेखनीय है। उस समय भारतवर्ष में इसका संगठन थानेश्वर के जाफिरन जाफर कर रहे थे। गुप्त उपायों द्वारा ब्रिटिश सरकार को खत्म करने के लिये लोग अत्यधिक संख्या में शरीक हो रहे थे। प्रथम क्रान्तिकारी प्रयास की असफलता के बाद कई वर्ष तक भारतवर्ष के कोने-कोने से स्वतंत्रता प्रेमियों तथा धन संग्रह करके यह संस्था ब्रिटिश साम्राज्यशाही से लोहा लेती रही।

अंग्रेजी शिक्षा का भारतीय सामाजिक जीवन पर प्रारम्भिक प्रभाव

सन् १८५७ ई० की जन बगावत के अवसर पर ब्रिटिश सरकार ने यह अनुभव कर लिया था कि जहाँ पर अंग्रेजी शिक्षा का असर हो चुका था, वहाँ पर क्रान्तिकारी भावनाएँ उतनी तीव्र और उग्र नहीं हो सकीं। अब भारतीय जनता और

शासक वर्ग के बीच में एक ऐसा पठित-भृत्य वर्ग बन चुका था, जो जन्म और संस्कार से भारतीय होने पर भी वेषभूषा तथा शिक्षा-दीक्षा के कारण अपने को भारतीय कहने में भी लज्जित होता था और भारतीय जनता पर रोब-दाब दिखाकर तथा अंग्रेजों का अत्याचार और शोषण में सहायक होकर अपने को सार्थक कर रहा था। उच्च पदों पर अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगों के आसीन होने से तथा राज द्वारा अंग्रेजी शिक्षा का आदर होने के कारण देशीय भाषाओं का पठन-पाठन क्रमशः क्षीण हो रहा था। यहाँ पर यह कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि अब तक केवल हिन्दुओं ने ही अंग्रेजी शिक्षा को ग्रहण किया था। अतः सरकारी नौकरियों में उनका ही बाहुल्य था और विदेशी सत्ता के आगमन के समय भारतीय व्यापार प्रधानतः हिन्दुओं के ही हाथ में था। भूकर विभाग में तो प्रायः यही शत प्रतिशत होते थे। विदेशी व्यापारियों के पहले सम्पर्क में आने के कारण गुलामी भी पहले इन्हीं के सर पड़ी। इसके विपरीत, मुसलमानों में प्रबल अंग्रेज विरोधी भावना के कारण, कुछ समय तक वे अंग्रेजी शिक्षा से वंचित रहे।

सन् १८५७ ई० की क्रान्ति की असफलता के बाद मुसलमानों की अंग्रेज विरोधी भावनाएँ इतनी तीव्र हो गई थीं कि प्रतिक्रिया स्वरूप उनका धार्मिक और राष्ट्रीय कट्टरता ने उग्र रूप धारण कर लिया था। वे अंग्रेजी शिक्षा को अपने धर्म और राष्ट्रीयता दोनों ही के लिये विषवत समझते थे। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों को वे तिरस्कार तथा अविश्वास की दृष्टि से देखते थे। ऊपर हम कह ही आये हैं कि अंग्रेजों ने यह अनुभव कर

लिया था कि अंग्रेजी शिक्षा बहुत अंश तक क्रान्ति के वेग को कम करने में सफल हुई थी। अतः उन्होंने इस परीक्षित औषधि का, मुसलमानों की राष्ट्रीयता का नाश करने के लिये, उनमें सर सैय्यद अहमद खाँ द्वारा प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। सर सैय्यद अहमद खाँ ने मुसलमानों को बहुत ही सब्ज बाग दिखाये, अनेक प्रलोभन दिये, पर उनके विश्वासघात की बात अभी ताजी थी। अतः उनकी माया उन पर कुछ असर न डाल सकी। उल्टे उन्हीं को विधर्मी घोषित करके जातिच्युत कर दिया गया। लेकिन सर अहमद खाँ भी अपने प्रयत्न से बाज न आये। वे तो मुसलमानों के हृदय में अंग्रेजों के प्रति सद्-भावना उत्पन्न करने पर तुले हुए थे। राष्ट्रीयता का गहरा रंग उन्हें अरुचिकर प्रतीत हो रहा था। अतः कुछ समय पश्चात् वे अपने प्रयत्न में सफल होने लगे। उनकी मुसलमानों में एक पठित-भृत्य वर्ग की कामना फूलने फलने लगी। मुसलमानों में भी यह वर्ग क्रमशः विकसित होने लगा।

२

जनता की क्रान्तिकारी मनोवृत्ति को बदलने के हेतु राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना

हिन्दू और मुस्लिम-पठित-भृत्य वर्ग को पारस्परिक प्रति-द्वन्द्वता में खड़ाकर अंग्रेजी सरकार बहुत अंश तक सफल हो सकी, और सदा क्रान्ति की आशंका, जो उनके हृदय में बनी रहती थी, कुछ हद तक इससे दूर हुई। लेकिन एक दम दूर नहीं हो सकी, क्योंकि क्रान्ति की असली जड़ तो साधारण जनता में है, शोषण और अत्याचार की कठिन पीड़ा से व्याकुल वही श्रेणी है। राज्य के प्रति असन्तोष और क्षोभ की मात्रा वहीं पर अधिक है। यही श्रेणी राज्य को उलटने में सदैव प्रयत्नशील रहती है, और जिस दिन से गुलामी का जुआ उसके कंधे पर पड़ा उसी दिन से उसे उतार फेंकने के लिए व्याकुल रहती। अतः जब तक जनसाधारण की क्रान्तिकारी मनोवृत्ति का प्रवाह नहीं रहता है, तब तक क्रान्ति का भीषण प्रवाह राज्यसत्ता को किसी भी क्षण बहा ले जा सकता है, यह ख्याल अंग्रेज राजनीतिज्ञों को सदैव बेचैन बनाये रखती थी। अतः उनके सामने अब यही प्रश्न था कि जिस किसी भी प्रकार

से सम्भव हो जनता की इस मनोवृत्ति की रोक-थाम की जाय। इस प्रश्न को हल करने के लिये सन् १८८५ ई० में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना सर ह्यूम द्वारा की गई। असन्तुष्ट जनता में जहाँ कहीं क्रान्ति की परिस्थितियाँ परिपक्व हो उठती थीं, क्रान्ति का सन्देश ले जाने से शिक्षित वर्ग सफलता के साथ कांग्रेस द्वारा रोका जाने लगा। वे अपने उद्देश्य एवं कर्तव्य को भूलकर कांग्रेस के द्वारा नौकरी तथा सरकारी पदों की प्राप्ति के लिये आवेदन-पत्र देने लगे। कांग्रेस ने जनता की क्रान्तिकारी मनोवृत्ति को मोड़कर सुधारवाद की तरफ ले जाकर बहुत अंशों तक क्रान्ति की आग को ठंडी करने में सरकार की सहायता की।

कांग्रेस के द्वारा जनता की क्रान्तिकारी मनोवृत्ति को ढीली पड़ती देखकर अंग्रेजों ने कुछ राहत की साँस ली, पर वे उससे सर्वथा सन्तुष्ट नहीं हुए। इसमें भी उन्हें अपने विनाश का एक अंकुर उगता हुआ नजर आने लगा। वह था भारतीय जातियों में सुधार-पथ पर मिलन। मिलन सुखे वा दुःखे किसी भी जगह उन्हें वांछनीय न था, इसका परिणाम सन् १८५७ ई० में उन्हें भोगना पड़ा था। इसके बाद से ही वे किस प्रकार पहले हिन्दुओं को अपने पक्ष में करके फूट डालकर शासन करने की नीति को व्यवहार में ला रहे थे, इसका संकेत ऊपर हो चुका है। अतः पुनः उस मेल के अंकुर को हरा-भरा देखकर अंग्रेजी सरकार शंकित हो उठी और उसके नाश का उपाय ढूँढ़ने लगी।

मुसलमानों में साम्प्रदायिक-विद्वेष की भावना का बीजारोपण

अब अंग्रेजों ने अपनी नीति को सफल बनाने के लिये निम्नांकित उपाय को अपनाया। सर सय्यद अहमद खाँ अंग्रेजी

हुकूमत के लिये काफी मददगार साबित हुए। इन्होंने अंग्रेजों की सहायता से अलीगढ़ में एक मुस्लिम कालेज की स्थापना की। वहाँ के अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त मुस्लिम युवक अंग्रेजों की गुलामी को स्वीकार करने लगे और मुस्लिम पठित-भृत्य-वर्ग विकसित होने लगा, जो हिन्दू पठित-भृत्य-वर्ग की प्रतिद्वन्द्विता में खड़ा किया गया। किन्तु सन् १८८५ ई० के बाद जब उनकी एक खासी संख्या हो गई तो मुस्लिम सम्प्रदाय के लिये नौकरी वगैरह के रूप में अलग रियायतों की माँग उठवाई जाने लगी। अलीगढ़ मुस्लिम कालेज मुस्लिम राजनीति का केन्द्र हो गया था। अंग्रेजों ने अलीगढ़ कालेज को साम्प्रदायिक-विद्वेष की भावना का बीजारोपण करने का उपयुक्त क्षेत्र बनाकर इसका प्रयोग भी अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये करना आरम्भ कर दिया। यह कार्य सीधे सरकार द्वारा सम्पन्न न होकर एक गैरसरकारी अंग्रेज कर्मचारी मि० बेक के द्वारा हुआ, यह महोदय अलीगढ़ कालेज के प्रिंसपल पद पर नियुक्त किये गये। वहाँ आते ही इन्होंने "इन्स्टिट्यूट" गजेट के सम्पादन का चार्ज अपने ऊपर ले लिया। अब तक इसका सम्पादन तथा संचालन सर सय्यद अहमद खाँ के द्वारा हो रहा था। इस पत्र के ऊपर अधिकार करके मि० बेक मुसलमानों में साम्प्रदायिकता के विष का बीज बोने लगे।

इस नीति का अवलम्बन करके सरकार हिन्दू और मुस्लिम शिक्षित वर्ग में फूट डालने में तो सफल हुई पर पूरी मकसद इससे पूरी नहीं हो रही थी। साधारण जनता अब भी कन्धे से कन्धा मिलाये अंग्रेजी शोषण और अत्याचार के विरुद्ध उठ रही थी। इनमें अभी ऐसी कोई चीज नहीं घुस पाई थी,

जो वैषम्य उपस्थित करती। अतः उनमें फूट डालने का काम अभी बाकी था और जब तक यह कार्य्य पूरा नहीं होता, तो अब तक के किये गये प्रयत्नों पर किसी भी क्षण पानी फिर जाने की आशंका बनी हुई थी। अतः अंग्रेजों के सामने यही प्रश्न विकट रूप धारण किये उपस्थित था। उनकी कूटनीति की परीक्षा इसी कसौटी पर होने वाली थी। अब हम आगे देखें कि किस प्रकार अपनी कूटनीति को अंग्रेजों ने कार्यान्वित किया।

दो राष्ट्र के सिद्धान्त का बीजारोपण

दमन-चक्र के द्वारा तथा क्रान्ति-विरोधी तथा सुधारवादी नीति के आधार पर राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना करके भी जनता की क्रान्तिकारी मनोवृत्ति बदली या कुचली न जा सकी, प्रत्युत शनैः शनैः यह अग्रसर होती गई। अतः सरकार ने यह अच्छी तरह समझ लिया कि इस मनोवृत्ति के कारण उसके हाथ से राजनीतिक सुधार के रूप में कुछ ऐंठे जाने वाला है, और बिना उसके बचत का कोई उपाय नहीं। अतः सरकार अब इस बात के लिये परेशान हो उठी कि सुधार किसी भी तरह क्रान्ति के पौधे को सींचने में प्रयोग न हो सके। इस खतरे से अपनी रक्षा करने के लिये ब्रिटिश सरकार ने मि० बेक की सहायता से अपना उल्लू सीधा करना प्रारम्भ किया। सन् १८८६ ई० ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में चार्ल्स ब्राडला ने भारतवर्ष में राजनीतिक सुधार के सम्बन्ध में एक बिल भी उपस्थित किया। इस बिल का उद्देश्य भारतवर्ष में प्रजातांत्रिक संस्था की बुनियाद डालना था। मि० बेक ने इस अवसर पर मुसलमानों का

ध्यान उनके अस्तित्व की तरफ खींचना आरम्भ किया। उनमें इस प्रकार की मनोवृत्ति पैदा करने की चेष्टा वे करने लगे। मुसलमानों की ओर से उन्होंने एक प्रार्थना-पत्र तैयार किया। उसमें उन्होंने यह उल्लेख किया कि "भारत एक राष्ट्र नहीं है। अतः लोकतंत्रीय सिद्धान्त यहाँ पर लागू नहीं हो सकता।" इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रार्थना-पत्र में अच्छी तरह किया गया और इसके आधार पर सुधार का विरोध किया गया। बड़ी मक्कारी और धोकेबाजी के साथ २० हजार मुसलमानों से यह कहकर हस्ताक्षर करवाया गया कि यह हिन्दुओं के विरुद्ध जो गोकुशी को बन्द करना चाहते हैं, सरकार के पास भेजने का आवेदन-पत्र है। इस कार्य में मि० बेक को अलीगढ़ कालेज के विद्यार्थियों से काफी सहायता मिली। वे स्वयं उनका एक जत्था लेकर दिल्ली पहुँचे और जामा मस्जिद के फाटक पर खड़े होकर नमाजी मुसलमानों को असत्य वाक्जाल में फँसाकर हस्ताक्षर कराने लगे। म० बेक ने इस अवसर पर संगठन के प्रभाव को अनुभव किया और अनुमान किया कि साम्प्रदायिकता के आधार पर मुसलमानों का अलग संगठन अंग्रेजों की दुष्कामनाओं की पूर्ति में बड़ा सहायक साबित होगा।

भारतीय मुसलमानों और अंग्रेजों के बीच एकता का प्रयास

सर्वप्रथम सन् १८८८ ई० के अगस्त में अलीगढ़ में "दि युनाइटेड इंडियन पैट्रिआटिक एसोसियेसन" स्थापित किया गया था। लेकिन मि० बेक की पूरी मकसद इससे पूरा नहीं हो पा रही थी। अतः अपने विचार को कार्यरूप में पूरी तरह

परिणत करने के लिये सन् १८९३ ई० में "दि मोहम्मदन-ऐंग्लो ओरियन्टल डिफेन्स एसोसियेसन" के नाम से इन्होंने मुसलमानों की एक पृथक संस्था की नींव डाली। इसका मुख्य उद्देश्य था :—(१) "साधारणत: अंग्रेज जाति और विशेषतया सरकार को मुस्लिम सम्प्रदाय के विचारों से अवगत कराना तथा मुसलमानों के राजनीतिक अधिकारों की रक्षा करना। (२) उन उपायों का समर्थन करना जिससे ब्रिटिश हुकूमत भारत में सुदृढ़ हो। (३) जनता में राजभक्ति का प्रचार करना और मुसलमानों में राजनीतिक संघर्ष को रोकना"। इस संस्था के मन्त्री पद का भार स्वयं बेक साहब ने ग्रहण किया। मि० बेक एक स्थान पर अपने पत्र "गजट" में लिखते हैं कि "मुसलमानों और अंग्रेजों के लिये यह आवश्यक है कि संगठित होकर राजनीतिक हलचल और लोकतंत्रीय सिद्धान्तों पर निर्मित शासन व्यवस्था के समावेश का प्रतिरोध करें, क्योंकि यह मुल्क की आवश्यकता और बुद्धि दोनों के ही विपरीत है। अत: हम राज के प्रति भक्ति और अंग्रेज-मुस्लिम मिलाप का जोरों से समर्थन करते हैं।"

क्रान्तिकारी आन्दोलन का श्रीगणेश

इन सब प्रयत्नों के बावजूद भी ब्रिटिश सरकार जनता की क्रान्तिकारी मनोवृत्ति को कुचल न सकी। इसके दमन तथा अन्य अत्याचारों ने आग में घी डालकर सुलगती हुई क्रान्ति की अग्नि को प्रज्वलित कर दिया। अंग्रेजों के अत्याचारों से तंग आकर लाचार होकर प्रारम्भ में क्रान्तिकारियों को प्रत्यातंकवाद का आश्रय लेना पड़ा। प्राय: प्रारम्भिक अवस्था

में क्रान्तिकारी आन्दोलन का स्वभाविक रूप प्रत्यातंकवादी ही रहता है। हिन्दुस्तान में भी प्रारम्भिक अवस्था में यह प्रधानतः प्रत्यातंकवादी रहा। सर्वप्रथम सन् १८९८ ई० में यह (क्रान्तिकारी आन्दोलन) प्रगट रूप में प्रारम्भ होता है, जब चफेकर बन्धुओं को पूना के एक अंग्रेज कमिश्नर की हत्या के अपराध में फाँसी दी गई थी। पूना निवासियों पर प्लेग के समय कमिश्नर रैंड का कठोर व्यवहार ही उसकी मृत्यु तथा प्रत्यातंकवाद के सूत्रपात का तात्कालिक कारण था। यह क्रान्ति की लहर विंध्याचल पर्वत को दक्षिणी भारत से पारकर उत्तरी भारत को भी प्लावित करने लगी। बंगाल के नवयुवक भी इस धारा में बह चले। २०वीं सदी के ऊषाकाल में भारतीय क्षितिज पर क्रान्ति-सूर्य की प्रखर किरणें प्रस्फुटित हो रही थीं। सरकार इस क्रान्तिकारी वेग को रोकने के लिये चिन्तित हो उठी। लार्ड कर्जन (तात्कालिक वायसराय) क्रान्ति के इस बढ़ते हुए वेग को रोकने में असफल हुए। उनकी दमन तथा आतंक की नीति असफल सिद्ध हुई। ब्रिटिश सरकार ने समझ लिया कि बिना सुधार दिये क्रान्ति की बढ़ती हुई लहर को नहीं रोका जा सकता है परन्तु सुधार भी सदैव निरापद नहीं है। क्रान्तिकारी इसके मोह में नहीं फँसते, प्रत्युत उलटे उसका प्रयोग अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये करते हैं। अतः सरकार के हित में सुधार तभी लाभदायक साबित होता है, जब कि एक वर्ग इसी में उलझ जाता है और क्रान्ति के पथ का परित्याग कर देता है। सुधारवादी शक्तियाँ सुधार रूप में मिले टुकड़े पर लड़ने झगड़ने लगती है, देश की संगठित शक्ति को छिन्न-भिन्न करती है, सुधार के पीछे सरकार की यही मनोवृत्ति होती

है। यही कारण है कि सरकार हर सुधार के पीछे साम्प्रदायिक समस्या को जटिल बनाती गई और सुधारवादियों का एक दल पा जाने के कारण उसे (सरकार को) मनोवांछित सफलता भी मिलती गई है। सरकार ने सुधार के अवसर पर इसी नीति को ग्रहण किया। अब हम देखेंगे कि किस रूप में यह प्रकट हुई और क्या इसका असर पड़ा।

बंगाल का विभाजन

१६१० ई० में भारतवर्ष में जो सुधार मिला, उसकी तैयारी पहले से ही हो रही थी, ब्रिटिश सरकार को अपनी उपरोक्त नीति के अनुसार ही कार्य करना था, यानी साम्प्रदायिक समस्या को उलझाकर क्रान्तिकारी शक्तियों को छिन्न-भिन्न करना। अत: इस दृष्टिकोण से लार्ड कर्जन ने सन् १६०५ में ढाका में यह घोषणा की कि आगामी सुधार में ब्रिटिश सरकार मुसलमानों को एक अलग प्रान्त देने जा रही है। यह बंगाल के विभाजन के द्वारा सम्पन्न होने को था। बंग-भंग की मुखालिफत भारत के कोने-कोने में की गई। बंग-भंग के पीछे कितनी मुस्लिम-हितों की शुभ कामना थी और कितना इनका अपना स्वार्थ, यह उन्हीं के मुख से सुनिये। इस सम्बन्ध में सर हेनरी कालटन ने अपनी पुस्तक "इंडिया इन ट्रांजिशन" में लिखा है:—"इस नीति का महत्व प्रान्त की एकता और संगठित शक्ति को छिन्न-भिन्न करना था। इस योजना के मूल में शासन सम्बन्धी कारण थे। लार्ड कर्जन की नीति का मुख्य अभिप्राय प्रान्त की बढ़ती हुई शक्ति को निर्बल तथा राष्ट्रीयता की ओर विकसित होते हुए राजनीतिक मनोभाव को नष्ट करना था।"

इन वाक्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि बंग-भंग के पीछे ब्रिटिश सरकार का क्या उद्देश्य था।

इसके विरोध में भारत के कोने-कोने से हिन्दू-मुस्लिम की सम्मिलित जोरदार आवाज उठने लगी। सन् १९०६ ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में नवाबजादा ख्वाजा अली खाँ ने घोषित किया कि "मैं बिना हिचकिचाहट के आप को यह बतलाना चाहता हूँ कि यह बिल्कुल असत्य है कि पूर्वी बंगाल के मुस्लिम बंग-भंग के पक्ष में हैं। वास्तविकता यह है कि कुछ बड़े-बड़े मुसलमान अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिये इस योजना का समर्थन कर रहे हैं।" कलकत्ता के केन्द्रीय मुस्लिम संघ के मन्त्री नवाब अली हसन ने भी इसका विरोध किया।

स्वदेशी आन्दोलन

हम सब स्वदेशी आन्दोलन से परिचित हैं। यह देश व्यापी आन्दोलन बंग-भंग की घोषणा के विरोध में किया गया था। इस आन्दोलन के कार्य-क्रम में विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार मुख्य था। सन् १९०६ ई० में राष्ट्रीय कांग्रेस के बनारस वार्षिक अधिवेशन में भी विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का प्रस्ताव पास किया गया। यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि स्वदेशी आन्दोलन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के द्वारा संचालित नहीं होता था, बल्कि इसके संचालन का भार इंडियन एसोसियेसन के हाथों में था। स्वदेशी आन्दोलन के संचालन और सफल बनाने में भारतीय क्रान्तिकारियों का प्रमुख्य हाथ था, या यों कहिये कि सम्पूर्ण आन्दोलन के संचालन ही उनके

हाथों में था। हिन्दू और मुस्लिम का समान सहयोग इस आन्दोलन को प्राप्त था। स्वदेशी आन्दोलन के अवसर पर बारिसाल (बंगाल) की हड़ताल का विशेष महत्व है। सारे नगर में गवर्नर के आने के उपलक्ष में हड़ताल थी, हिन्दू-मुस्लिम दोनों जोश से हड़ताल को सफल बनाने में कंधे से कंधा मिलाये थे। परिणाम भी उनके अनुकूल ही हुआ। क्या मजाल कि कोई भी वस्तु बाजार में ऊँचे से ऊँचे आफिसर को मिल सके। बारीसाल के मजिस्ट्रेट को भी तभी सामान मिला जब हड़ताल के नेता, अनुशीलन दल के सदस्य अश्विनी कुमार ने अपने हस्ताक्षर से आज्ञा दी। जनता पर क्रान्तिकारियों के इस प्रभाव को देखकर सरकार दहल उठी। फिर बौखलाकर उसने आतंक का सहारा लिया, पर निष्फल, विवश होकर क्रान्तिकारी शक्तियों के आगे झुकना पड़ा। संगठित जनता ने अपने अंग-भंग को बचा लिया और सरकार को अपनी योजना वापस लेनी पड़ी।

क्रान्तिकारी संगठन का विकास

इतिहास हमें बतलाता है कि दमन क्रान्तिकारी शक्तियों को नष्ट नहीं कर पाता बल्कि उसके वेग को ही बढ़ाता है। यह जनता में शासक के प्रति रोष, घृणा और क्रान्तिकारियों के प्रति सहानुभूति, आदर और प्रेम का सृजन करता है। यह क्रान्ति के विकास के लिये अनुकूल परिस्थिति पैदा करता है, ऐसे ही समय में क्रान्तिकारी दल व्यापक होते हैं, उनके सदस्यों की संख्या बढ़ती है, दमन के समय उनके कर्तव्य, धैर्य और चरित्र की परख होती है। लार्ड कर्जन के दमन काल और स्वदेशी आन्दोलन के अवसर पर क्रान्तिकारी

पार्टियों का विकास एवं उन्नति काफी हुई। अनुशीलन दल का संगठन काफी प्रभावशाली हो गया। कुछ समय के अन्दर केवल बंगाल में ही ६०० से अधिक केन्द्र स्थापित हो गये। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के अन्य स्थानों में स्थापित केन्द्रों की संख्या अधिक थी। सरकार क्रान्तिकारी संगठन के व्यापक प्रसार से भयभीत हो उठी और सन् १९०८ ई० में उसने राजनीतिक संस्थाओं को गैरकानूनी घोषित करने का कानून पास किया और अनुशीलन दल वगैरह क्रान्तिकारी संगठनों को अवैध करार दिया। अतः सुधार द्वारा फूट उत्पन्न करके तथा दमन का संयोग स्थापितकर क्रान्तिकारी शक्तियों को विछिन्न करने की नीति बरती गई।

मुसलमान पठित-मध्यम वर्ग को खुश करने की नीति

ऊपर हम देख आये हैं कि मुसलमान और हिन्दू दोनों ही ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध रहे और राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग एक साथ लेते रहे, किन्तु इस समय तक मुसलमानों में पठित-मध्यम वर्ग का उदय तथा विकास हो चुका था। सुधार रूप में प्राप्त सरकारी नौकरियों में इसका स्वार्थ निहित था। अतः सरकार इनको कुछ सुविधायें देकर अपनी तरफ खींचने में सफल हुई। इस समय तक इनकी संख्या भी साधारण थी। अतः सरकार को इन्हें सन्तुष्ट करने में कोई असुविधा नहीं हुई। यह वर्ग धीरे-धीरे सरकार के प्रयत्नों द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग होता गया।

वाइसराय के पास मुसलमानों का प्रथम डेपुटेशन

हम सब सन् १९०६ ई० में सर आगा खाँ के नेतृत्व में

वायसराय के पास मुसलमानों के डेपुटेशन जाने से परिचित हैं। यह जानकर हम अचम्भित हो जायेंगे कि डेपुटेशन ले जाने का विचार न तो सर आगा खाँ के ही दिमाग में आया और न अन्य मुसलमानों के दिमाग में, बल्कि इसकी सृष्टि वाइसराय के दिमाग से हुई। ता० १०-८-१९०६ ई० को मि० आर्च बोल्ड ने नवाब मोशीनउल्मुल्क को एक पत्र लिखा, जिसमें वाइसराय के पास मुसलमानों की ओर से डेपुटेशन ले जाने की सलाह दी गई है। ये अपने पत्र में इस प्रकार लिखते हैं :—"कर्नल डवलप स्मिथ हिज एक्सेलेन्सी के प्राइवेट सेक्रेटरी मुझे सूचित करते हैं कि हिज एक्सेलेन्सी मुसलमानों के डेपुटेशन से मिलने के लिये राजी हैं। वह यह सलाह देते हैं कि मुलाकात की आज्ञा प्राप्त करने के लिये रिवाजन वाइसराय के पास एक आवेदन-पत्र भेजें, इस सम्बन्ध में मैं यह सलाह दूँगा कि—वाइसराय के पास जो आवेदन-पत्र आये, उस पर मुसलमानों के प्रतिनिधियों का हस्ताक्षर होना चाहिये और डेपुटेशन में सभी प्रान्तों का प्रतिनिधित्व होना चाहिये। तीसरी महत्वपूर्ण बात पत्र के विषय में हैं। मैं यहाँ पर सलाह दूँगा कि हमको सरकार के प्रति भक्ति दर्शाते हुए पत्र का आरम्भ करना चाहिये, तथा स्वायत्त शासन की तरफ कदम उठाने के सरकार के फैसले की प्रशंसा करनी चाहिये। लेकिन हमारी शिकायतों की अर्जी यह होना चाहिये कि यदि चुनाव के सिद्धान्तों को लागू किया गया तो वह अल्पसंख्यक मुस्लिम हितों के लिये घातक होगा और विनयपूर्वक यह परामर्श दिया जाना चाहिये कि मुस्लिम हितों की रक्षा के लिये धार्मिक आधार पर नामजदगी या प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त

लागू करके मुस्लिम जनता के परामर्श का उचित सत्कार किया जा सकता है। हमें यह भी सलाह देनी होगी कि भारत ऐसे देश में जमीन्दारों के विचारों को उचित महत्व मिलना चाहिये।"

इस पत्र के उपरान्त मुसलमानों का डेपुटेशन हिज होलीनेश आगा खाँ के नेतृत्व में सन् १९०६ ई० में वाइसराय के पास गया। इसका उल्लेख वाइसराय ने इस प्रकार किया है :—"आपके पत्र का मुख्य विषय जैसा कि मैंने समझा है, यह है कि प्रतिनिधित्व की जो कोई व्यवस्था चाहे इसका सम्बन्ध म्युनिसिपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या व्यवस्थापक सभा से हो और जिसमें चुनाव के सिद्धान्तों को लागू किया गया हो या उनकी वृद्धि की गई हो, वहाँ पर मुस्लिम सम्प्रदाय को एक अलग सम्प्रदाय माना जाना चाहिये और आप इस तरफ संकेत करते हैं कि बहुधा प्रतिनिधि संस्थाओं में जैसा कि इस समय उनका रूप है, मुस्लिम उम्मीदवार के चुनकर आने की बहुत कम सम्भावना है। यदि किसी मामले में ऐसा हो भी गया तो वह केवल मुस्लिम उम्मीदवार के द्वारा अपने विचारों को बहुमत के आगे बलिदान करके ही सम्भव हो सकता है। अतः वह अपने सम्प्रदाय का असली प्रतिनिधि नहीं हो सकता। और आपका यह कहना न्यायोचित है कि आपके प्रतिनिधित्व के अनुपात का आधार आप की संख्या नहीं बल्कि आपका राजनीतिक महत्व तथा साम्राज्य को अर्पित सेवायें होनी चाहिये। मैं आप लोगों से पूर्ण रूप से सहमत हूँ।" [V. Buchan lord Minto]

हमने देखा है कि मुस्लिम डेपुटेशन का विचार लार्ड

मिन्टो के ही दिमाग की उपज है। अतः इसकी सफलता स्वयं सिद्ध है। असफलता ही आश्चर्य की बात होती। अपनी पुस्तक "दि एवेकनिंग आफ इंडिया" में मुस्लिम डेपुटेशन के विषय में मि० रैमजे मैकडोनल्ड लिखते हैं कि "मुस्लिम नेताओं को एंग्लो इंडियन आफिसरों के द्वारा उकसाया गया और शिमला और लंडन में बैठे-बैठे तार खींच रहे थे और मुसलमानों को विशेष रियायतें देकर हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदायों में कटुता और वैमनस्य का बीज बो रहे थे।"

मुस्लिम लीग की स्थापना

भारतीय जनता क्रान्ति की ओर अग्रसर हो रही थी। उसके अन्दर बगावत की प्रवृत्ति दिन प्रतिदिन प्रबल तथा उग्रतर होती जा रही थी। क्रान्ति विरोधी तथा सुधारवादी नीति के आधार पर कांग्रेस की स्थापना की गई और कांग्रेस पूर्ण रूप से इस नीति को निभा रही थी। लेकिन सूरत कांग्रेस में सन् १९०६ ई० में स्वर्गीय लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में स्वतंत्रता का प्रस्ताव उपस्थित किया गया, किन्तु बहुमत के विरोध से यह प्रस्ताव पास नहीं हो सका। श्री लोकमान्य तिलक जी को कांग्रेस से बाहर आ जाना पड़ा। क्रान्ति की बढ़ती हुई प्रवृत्ति को रोकने के लिये दमन शुरू हुआ। उधर कुछ और राजनीतिक सुधार मिलने की सम्भावना दिखाई दे रही थी। आगा खाँ के डेपुटेशन को काफी सफलता मिली। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर ३० दिसम्बर १९०६ ई० को नवाब सली मुल्लाह खाँ ने ढाँका में जलसा के लिये प्रसिद्ध मुसलमानों को निमंत्रित किया। आल इंडिया मुस्लिम लीग का प्रथम अधि-

वेशन सन् १९०६ ई० के दिसम्बर के अन्तिम तिथि को ढाका में हुआ।

मुस्लिम लीग का उद्देश्य

अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने निम्नांकित चीज़ों को अपना उद्देश्य ठहराया। (१) भारतीय मुसलमानों में ब्रिटिश गवर्नमेंट की राज-भक्ति का प्रचार करना तथा उसको किसी नीति से यदि किसी प्रकार की गलतफहमी तथा असन्तोष फैले तो उसको दूर करना।

(२) भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक तथा अन्य अधिकारों की रक्षा करना और उनकी आवश्यकताओं को तथा भावनाओं एवं आकांक्षाओं को गवर्नमेंट के सामने विनम्र भाषा में उपस्थित करना। इन प्रधान उद्देश्यों पर अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। सर अली इमाम के सभापतित्व में सन् १९०८ ई० में मुस्लिम लीग का सालाना जलसा अमृतसर में हुआ। वहाँ स्थानीय संस्थाओं में साम्प्रदायिक प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ाने का प्रस्ताव पास किया गया। और एक दूसरे प्रस्ताव में बंग-भंग के प्रति अखिल भारतीय कांग्रेस के रुख के प्रति असन्तोष प्रकट किया गया।

मार्ले मिन्टो सुधार

सन् १९०८ ई० में नया राजनीतिक सुधार हिन्दुस्तान में लागू किया गया। मार्ले मिन्टो, सुधार को लोकतंत्रीय सिद्धान्त पर निर्मित सुधार कहना सही न होगा। इस सुधार की विशेषता यह थी कि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के साथ ही साथ खास-खास हितों के प्रतिनिधित्व को स्वीकार किया गया।

इसके अन्दर पृथक निर्वाचन के कारण विशेषतः सारे देश में विरोध किया गया, केवल राष्ट्रीय शक्तियाँ ही विरोध नहीं कर रही थीं, बल्कि अंग्रेजों का एक प्रमुख्य अंग "दि स्टेट्समैन" समाचार-पत्र ने भी इसका विरोध किया। पृथक निर्वाचन-प्रणाली को लागू करके ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिकता के उस विष-बीज का आरोपण कर दिया जिसके लिये सन् १८८६ ई० से मि० बेक क्षेत्र तैयार कर रहे थे। ज्यों-ज्यों यह विष-वृक्ष बढ़ने लगा, त्यों त्यों भारतीय-राष्ट्रीय आन्दोलन में बाधा उपस्थित होती गई और आज भारतवर्ष का साम्प्रदायिक आधार पर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में विभाजन उसी विष-वृक्ष का है, जो श्रमिक शोषित जनता के आजादी की लड़ाई के लिये घातक हो रहा है।

३

प्रथम साम्राज्यवादी युद्ध

इधर ब्रिटिश सरकार साम्प्रदायिक वैषम्य फैलाने के लिये प्रयत्नशील हो रही थी और मुसलमानों के अन्दर एक वर्ग विशेष को विशेष सुविधा प्रदान कर अपने पक्ष में करने का प्रयास कर रही थी और किसी अंश में कुछ सफलता भी इसे प्राप्त हो रही थी, उधर विश्व में कुछ और ही घटनाएँ घट रही थीं, जिसमें भारतीय जनता भी अछूते न रह सकी। ब्रिटिश सरकार की सफलताओं पर भी लगभग पानी फिर गया। राजनीतिक नभ-मण्डल में युद्ध के बादल छाये हुये थे, साम्राज्यवादी शक्तियाँ अपनी साम्राज्य लिप्सा के कारण किसी भी क्षण एक दूसरे पर टूट पड़ने का अवसर ढूँढ़ रही थीं। साम्राज्यवाद की शोषण नीति से श्रमिक जनता काफी असन्तुष्ट हो चुकी थी और इस अवसर को बड़ी आशा और उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी कि जब साम्राज्यवादी राज-शक्तियाँ आपस में टकरायें तो उसे भी अपना बन्धन तोड़ने का अवसर मिले। ऐसे अवसर पर गुलाम जनता के सच्चे प्रतिनिधि-क्रान्तिकारी बड़ी लगन से काम करने लगे और ब्रिटिश शासकों

की कूटनीति व्यर्थ होने लगी। इसके पहले भी मुस्लिम जनता ने अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली बनकर रहना अवांछनीय समझा। फलतः इनके विरोध से अलीगढ़ से मुस्लिम लीग का दफ्तर उठकर लखनऊ चला आया और अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के प्रिंसिपल महोदय के चंगुल से बाहर चली गई।

टर्की में प्रजातन्त्र की स्थापना

ऊपर हम प्रथम विश्व-युद्ध के मड़राते हुए बादल से भारतीय वातावरण में परिवर्तन का संकेत कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त यूरोप में एक और घटना घटी, जिससे परिवर्तित होती हुई भारतीय परिस्थितियों ने एक मूर्तरूप धारण कर लिया, यह था मुस्लिम सम्प्रदाय का स्पष्ट रूप से अंग्रेजों के विरुद्ध संगठित हो जाना। घटनायें थीं—बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही बालकन के प्रान्त जो तुर्क साम्राज्य के आधीन थे, स्वतन्त्र होने को चेष्टा कर रहे थे। रूसी जार तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद अपने राजनीतिक तथा आर्थिक स्वार्थों के कारण बालकन प्रान्तों की सहायता कर रहे थे। धार्मिक भावनाओं के कारण भारतीय मुसलमानों के ऊपर बुरा असर हुआ और अपने सहधर्मियों (तुर्कों) के विरुद्ध विजातियों का यह संगठन उन्हें बहुत खला। भोले-भाले धर्म भीरु मुसलमानों में पहले यह प्रचार किया गया था कि अंग्रेज मुस्लिम धर्म के शुभेच्छुक हैं, किन्तु इस विश्वास का इस प्रकार गला घुटते देखकर उनकी धार्मिक प्रवृत्ति विद्रोह कर उठी। सन् १९०८ ई० टर्की के नौजवानों ने प्रजातन्त्र की स्थापना के लिये सुल्तान के विरुद्ध बगावत का झण्डा खड़ा किया। ब्रिटिश सरकार टर्की में प्रजातन्त्र की

स्थापना के विरुद्ध थी, मध्य एसिया में टर्की को सबल राष्ट्र होने देना उन्हें अपने स्वार्थ के लिये भयोत्पादक दृष्टिगोचर हो रहा था। अतः उन्होंने क्रान्तिकारियों को कुचलने में सुल्तान की काफी मदद की। भारतीय मुस्लिम जनता धर्म के नाते टर्की की जनता के साथ सहानुभूति रखती थी। अतः जनता के ऊपर अत्याचार करने में टर्की के सुल्तान को सहयोग देकर ब्रिटिश सरकार भारतीय मुस्लिम नौजवानों में और भी अप्रिय हो गई। अंग्रेजों से रुष्ट होने के साथ ही साथ तुर्की के क्रान्तिकारी आन्दोलन के सिद्धान्तों की छाप भारतीय मुस्लिम नवयुवकों पर पड़ी और उन्होंने साम्प्रदायिकता के संकीर्ण क्षेत्र से निकलकर राष्ट्रीयता के विस्तृत क्षेत्र में पदार्पण किया। भारतवर्ष में भी प्रजातन्त्र स्थापना के हेतु वे भारत की अन्य क्रान्तिकारी शक्तियों के साथ एक-दूसरे के गले में हाथ डालकर क्रान्तिकारी पथ पर आ मिले।

उपरोक्त अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के साथ-साथ राष्ट्रीय घटनाओं का भी अंग्रेजों के विरुद्ध मुसलमान साधारण जनता के मनोभावों को करने में काफी असर पड़ा। बंग-भंग का उद्देश्य अंग्रेजों ने यह बताया था कि हम मुसलमानों के लिये एक अलग प्रान्त का निर्माण कर रहे हैं, पर उक्त योजना को वापस लेते समय मुसलमानों से एक बार भी नहीं पूछा गया। अतः मुसलमानों की आँखें खुल गईं, उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो गया। वे समझ गये कि अंग्रेज केवल अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिये ही उन्हें अपने हाथों की कठपुतली बनाये रखना चाहते हैं, और अवसर पड़ने पर उन्हें दूध की मक्खी की भाँति अलग फेंक सकते हैं। फलतः इससे उनके हृदय में

अंग्रेज विरोधी भाव उठने लगे और राष्ट्रीय एकता उत्पन्न करने में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ।

प्रथम साम्राज्यवादी युद्ध के पूर्व क्रान्तिकारी संगठन

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय परिस्थितियों ने भारतीय जनता को एकता के सूत्र में बाँध दिया और अंग्रेजों के पंजे से मुक्त होने के संग्राम को सरल और शक्तिशाली बना दिया। भारतीय क्रान्तिकारी इस अवसर पर आगे आये और उन्होंने देश की संगठित शक्तियों का, क्रान्ति के लिये, नेतृत्व अपने हाथ में लिया। प्रथम विश्वयुद्ध—किसी भी क्षण अपनी विभीषिकाओं के साथ प्रकट हो सकता था—ने उनके लिये अनुकूल अवसर उपस्थित कर दिया। वे इस मौके की ताक में थे और इससे समुचित लाभ उठाना चाहते थे। इसी दृष्टिकोण से वे तैयारी कर रहे थे। इसी समय सन् १९११ ई० में नयी राजधानी दिल्ली में प्रवेश करते समय लार्ड हार्डिंग्ज पर बम फेंका गया। इसका उद्देश्य यह था कि भारतीय क्रान्तिकारी केवल बंग-भंग को ही खत्म करके सन्तुष्ट नहीं हुए हैं, बल्कि भारतवर्ष की वे पूर्ण स्वाधीनता चाहते हैं। जब तक भारतीय जनता गुलामी की जंजीर से जकड़ी है, तब तक उनकी लड़ाई अविराम गति से चलती रहेगी।

मुस्लिम क्रान्तिकारी

अंग्रेजों से असंतुष्ट होकर मुस्लिम नौजवान गुप्त संगठनों में संगठित हो रहे थे, परन्तु अभी तक उनका ध्येय भारतीय प्रजातंत्र की स्थापना नहीं था, वे धार्मिक संकीर्णता में अधिक फँसे थे। अतः उनकी इस प्रवृत्ति ने मुस्लिम राष्ट्रों का एक

संघ स्थापित करने की कल्पना का उनके दिमाग में जन्म दिया। दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि उस समय पान इस्लामिज्म की भावना ही उनकी अंग्रेज विरोधी प्रवृत्ति का संचालन कर रही थी, परन्तु प्रसन्नता की बात यह है कि उनकी यह मिथ्या कल्पना वास्तविकता के सम्पर्क में आते ही नष्ट हो गई। नव-तुर्की के राष्ट्रीय-प्रजातन्त्रीय आन्दोलन ने उनकी निराधार कल्पना की निरर्थकता को स्पष्ट कर दिया, अन्य मुस्लिम-राष्ट्रों के राष्ट्रीय रंग के सामने उनका धार्मिक रंग कच्चा और फीका मालूम हुआ। उन्होंने भी छाया का त्याग करके सत्य को ग्रहण किया। राष्ट्रीय प्रजातन्त्रीय क्रान्ति को अपना ध्येय बनाकर अपने कार्य कलाप का संचालन उसी ओर करने लगे। इस समय मुस्लिम क्रान्तिकारियों का क्षेत्र देवबन्द बन रहा था। यह स्थान फारसी और अरबी की शिक्षा का संसार प्रसिद्ध केन्द्र है। दूर-दूर के देशों के विद्याव्यसनी मुसलमान अध्ययन के लिये यहाँ आते हैं। देवबन्द को केन्द्र बनाकर मुसलमान उत्तरी भारत में क्रान्तिकारी संगठन कर रहे थे। अन्य भारतीय क्रान्तिकारियों के साथ सम्पर्क स्थापित करके वे ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार को उखाड़ फेंकने के कार्य में उनके साथ पंक्तिबद्ध हो गये। इस एकता के परिणाम-स्वरूप देवबन्द के मौलवी शेख-उल-हिन्द, मौलाना महमूद-उल-हसन ने स्वर्गीय मौलाना ओबेदुल्लाह सिन्धी को काबुल में टर्की और जर्मनी के राजदूतों से भारतीय भावी क्रान्ति में सहायता देने के सम्बन्ध में गुप्त बातें करने के लिये भेजा। ओबेदुल्लाह सिन्धी वहाँ से यूरोप चले गये और भारतवर्ष से बाहर रहकर भारतीयों को क्रान्ति के लिये संगठित करने

लगे। उनके प्रयत्नों के भण्डाफोड़ होने पर हिन्दुस्तान में "रेशमी रूमालों का षड्यन्त्र" चला था। यूरोप में उन्होंने अन्य भारतीय क्रान्तिकारियों के साथ "भारतीय क्रान्तिकारी प्रजातन्त्रीय सरकार" की स्थापना की।

शिबली नोमानी नामक मुसलमानों में उर्दू के एक प्रसिद्ध लेखक हुये, साहित्य में उन्होंने राष्ट्रीयता की भावना का चित्रण किया। मुसलमानों में राष्ट्रीय विचार को फैलाने में उनका विशेष हाथ रहा है। सन् १९१२ ई० में डा० अन्सारी एक मेडिकल मिशन टर्की को लेकर गये। मौ० अब्दुल कलाम आजाद ने "अलहेलाल" नाम का अखबार प्रकाशित किया, इनके अतिरिक्त मौ० मुहम्मद अली ने "कामरेड" (साथी) नामक अंग्रेजी और "हमदर्द" नामक उर्दू पत्रों का प्रकाशन आरम्भ किया। इन लोगों के प्रयत्न से मुसलमानों में भारतीय राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूटकर भरी जाने लगी।

राष्ट्रीय रूप में मुस्लिम लीग

सन् १९०६ ई० में जब मुस्लिम लीग की स्थापना हुई थी, उस समय इसका मुख्य उद्देश्य था मुसलमानों में राजभक्ति का प्रचार तथा मुस्लिम-अंग्रेज मैत्री कायम करना। परन्तु कालान्तर में अपने प्रतिक्रियावादी सिद्धान्तों पर टिकी न रह सकी। भारतीय राष्ट्रीयता के प्रभाव के सामने इसे भी झुकना पड़ा। सन् १९१३ ई० के अपने वार्षिक अधिवेशन, लखनऊ में अपने उद्देश्य में मुस्लिम लीग ने संशोधन किया कि ब्रिटिश सरकार की छत्रछाया में स्वायत्त-शासन कायम करना आवश्यक है। सन् १९०६ ई० के स्वीकृत प्रस्तावों और १९१३ ई० के

लखनऊ अधिवेशन के स्वीकृत प्रस्तावों पर दृष्टि डालते ही आकाश-पाताल का अन्तर दिखाई पड़ेगा। अब अपनी सात वर्ष की जिन्दगी के बाद मुस्लिम लीग राजभक्ति का प्रचार करने की शपथ लेने वाली संस्था नहीं रही; बल्कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद की छत्रछाया में स्वायत्त-शासन की स्थापना को अपना उद्देश्य इसने बनाया है।

उक्त बातों से यह स्पष्ट हो गया था कि भारतीय मुसलमान अंग्रेजों द्वारा फैलाये मोह-जाल को भंग कर चुके थे। अब स्वायत्त-शासन की माँग करने लगे थे। वे प्रजातंत्र के कायल हो चुके थे, उसकी स्थापना को उचित और सही समझने लगे। उनकी राजनीति प्रतिक्रियावादी पथ का परित्याग कर प्रगतिशील पथ, अनुसरण कर रही थी। सन् १९१६ ई० में मुस्लिम लीग के लखनऊ वार्षिक अधिवेशन के सभापति के पद से दिये गये जिन्ना साहब के भाषण पर आप एक दृष्टिपात कीजिये, आपको स्पष्ट ही दिखाई देगा कि मुस्लिम राजनीति का बिल्कुल ही कायापलट हो गया है। जिन्ना साहब के वक्तृता के उन अंशों को, जहाँ भारत में प्रजातंत्र की स्थापना के लिये उनकी व्यग्रता प्रकट होती है, हम पाठकों के ज्ञानार्थ उद्धृत करते हैं—"वायहाल राजनीतिक उक्तियों का निर्माण किया गया है और बहुधा भारतीयों पर उन्हें आरोपित किया गया है। राजनीतिक के विद्यार्थी उनसे भली-भाँति परिचित हैं। उदाहरणार्थ, यह कहा जाता है कि "प्रजातंत्रीय संस्थायें" पूर्व के लोगों की बुद्धि के प्रतिकूल हैं। क्या 'प्रजातंत्र' हिन्दू और मुसलमानों के लिये अनोखी चीज है? यह प्रश्न जिन्ना साहब ललकारते हुए पूछते हैं और स्वयं ही उत्तर देते हैं—"तो फिर

ग्राम-पंचायतें क्या थीं ? इस्लाम का गौरवमय अतीत जिस बात को प्रमाणित करता है ? दुनिया की कोई भी राष्ट्रीय जाति मुसलमानों से अधिक प्रजातंत्रीय भावों और परम्पराओं की दावेदार नहीं हो सकती हैं।" इस स्थान पर जिन्ना साहब ने प्राचीन भारत में "प्रजातंत्रीय संस्थाओं" की ओर प्रमाणित करने के लिये ग्राम-पंचायतों का जो प्रमाण उपस्थित किया, वह अकाट्य सत्य है। सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में प्रजातंत्रीय सिद्धान्तों का निरूपण का यह जीता। जागता नमूना है। यह पद्धित सदियों ईसा पूर्व से चली आ रही थी। जब तक अंग्रेजों के लोह पंजे से यह मसल नहीं दी गई, तब तक भारतीय सामाजिक जीवन को प्रभावित करती रही और एक विशेष कार की एकता प्रदान करती रही। पंचायतों की एक ही प्रकार की व्यवस्था, एक ही प्रकार से उनके द्वारा आर्थिक जीवन का संचालन तथा सामाजिक एवं नागरिक नियमों का निर्माण, आदेश तथा न्याय, भारतीय जनता की एकता का प्रबल प्रमाण उपस्थित करती हैं। अंग्रेज अपनी शासनभित्ति को दृढ़ बनाने के लिये भारतीयों की आपसी फूट और वैमनस्य को दृढ़ आधार समझकर जहाँ एकता के सभी चिन्हों तथा संस्थाओं को नष्ट कर रहे थे, वहाँ भारतीय-ग्राम-पंचायतें भी इनकी क्रूर दृष्टि से बची न रह सकीं।

लखनऊ पैक्ट:—हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की नींव

सन् १९१४ ई० में प्रथम संसार-व्यापी साम्राज्यवादी युद्ध आरम्भ हुआ। संसार के प्रमुख्य पूँजीवादी औद्योगिक देश सब के सब करीब-करीब युद्ध के संचालन में व्यस्त हो रहे थे।

पिछड़े हुए उपनिवेशिक देशों को अपने यहाँ औद्योगिक विकास करने का अवसर प्राप्त हुआ। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रमुख उपनिवेश हिन्दुस्तान था। साम्राज्यवादी युद्ध को भारतीय मध्यम वर्ग ने यहाँ औद्योगिक तथा पूँजीवादी विकास करने के लिये अच्छा मौका समझा। अतः ब्रिटिश छत्रछाया में भारतीय स्वायत-शासन की स्थापना राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों का राजनीतिक उद्देश्य था। परन्तु भारतीय जनता पूँजीवाद के विकास के लिये युद्ध-काल को सुअवसर समझकर किसी भी प्रकार का अड़चन लड़ाई के संचालन में नहीं डालना चाहती थी। एक ओर तो भारतीय क्रान्तिकारी नौजवान जान की बाजी लगाकर आजादी हासिल करने के हेतु सशस्त्र क्रान्ति की तैयारी तथा संगठन कर रहे थे, दूसरी ओर राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग साम्राज्यवादी युद्ध के संचालन में हर प्रकार की सहायता कर रही थी। इन्हें आशा थी कि युद्धोपरान्त "भारतीय स्वायत्त-शासन" के रूप में राजनीतिक सुधार अवश्य दिया जायेगा। अतः साम्राज्यवादी युद्ध के संचालन में अधिक सहायता करने के और राजनीतिक सुधार के कार्यान्वित करने के हेतु राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच सन् १९१६ ई० में लखनऊ में एक समझौता हुआ जिसके अनुसार प्रजातंत्रीय संस्थाओं का चुनाव पृथक निर्वाचन के सिद्धान्त के अनुसार होगा। यह "लखनऊ पैक्ट" के नाम से मशहूर है।

क्रान्तिकारी आन्दोलन की बलिवेदी पर मुस्लिम क्रान्तिकारी

ऊपर हम सन् १९१४ ई० के विश्व-युद्ध के अवसर पर

भारतीय क्रान्तिकारियों की तैयारियों का वर्णन कर चुके हैं। अब उनका परिणाम भी पाठकों के आगे आंशिक रूप में उपस्थित किया जाता है। हिन्दू-मुस्लिम क्रान्तिकारियों के संयुक्त प्रयत्न के विषय में हमने ऊपर देखा है। अब हम उनके संयुक्त बलिदान पर दृष्टिपात करें। यहाँ पर केवल कुछ मुस्लिम क्रान्तिकारियों का ही हम उल्लेख करेंगे। स्वर्गीय ओबेदुल्लाह सिन्धी, मौ० अब्दुल कलाम आजाद, मौलाना मुहम्मदुलहसन, जो मुसलमानों के मुल्ला थे, भारतवर्ष के बाहर कारागार की यातनायें सह रहे थे। भारतीय जेलों में हसरत मोहानी, शौकत अली और मुहम्मद अली वगैरह भारत की आजादी का मूल्य चुका रहे थे। जिस समय क्रान्तिकारी वीर फाँसी के तख्ते पर, जेलों के सींकचों के भीतर स्वतंत्रता के लिये अपना सब कुछ निछावर कर रहे थे, उस समय गांधी जी तथा राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग ब्रिटिश सेना के लिये रंगरूट भरती कर रही थी। भला ऐसे समय जब देश की एक बड़ी संख्या स्वयं ही क्रान्ति की जड़ पर कुठाराघात कर रही हो, तो क्रान्तिकारी कहाँ से अपने जीवन उद्देश्य को कार्यान्वित बनाने में सफल होते। वे भारतीय जनता की विद्रोहाग्नि को प्रज्वलित रखने के लिये अपने प्राणों को स्वाहा करके शहीद पथ के अनुगामी हो रहे थे। ब्रिटिश सरकार समझ गई कि क्रान्तिकारियों का दमन यदि न किया गया तो वह भारतवर्ष में गिने दिनों का ही मेहमान है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये रौलट एक्ट का निर्माण किया गया। सारा देश एक स्वर से इसका विरोध कर उठा, जनता के लिये क्रान्तिकारियों का दमन असह्य था। भारतीय हिन्दू-मुस्लिम जनता क्रान्ति के पक्ष में किस हद

तक थी, क्रान्तिकारियों के लिये उनके दिलों में कितनी सहानुभूति और श्रद्धा थी, इसका यह ज्वलन्त प्रमाण है।

रौलट-एक्ट

सन् १९१४ ई० से विश्व-युद्ध का युग भारतीय पूँजीवाद के अविर्भाव और विकास का युग था। साम्राज्यवादी युद्ध छिड़ जाने के कारण भारतीय पूँजीवाद के विकास तथा उन्नति के लिये स्वाभाविक संरक्षण प्राप्त हो गया था। जिसके परिणाम-स्वरूप भारतीय पूँजीवाद गत महायुद्ध के अवसर पर उन्नति कर रहा था। अब क्या था, भारतीय पूँजीवादी वर्ग के दलालों का हित साधन ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार की सहायता करने पर निर्भर था। उन्होंने दिल खोलकर सहायता की। इसके बदले में उन्हें आशा थी कि युद्धोपरान्त उन्हें स्वायत्त-शासन प्राप्त होगा। युद्ध के समाप्त होते ही ब्रिटिश पूँजीवाद तथा पूँजीवादी वर्ग को अपने ही अस्तित्व की रक्षा की आ पड़ी, उसे अपनी उन्नतिशील तथा विकसित अवस्था को कायम रखने के लिये हिन्दुस्तान से कच्चे माल तथा पक्के माल की खपत के लिये हिन्दुस्तान का बाजार आवश्यक था। अतः हिन्दुस्तान को किसी प्रकार की स्वतंत्रता प्रदान करना उनके हित के लिये घातक था। उनके इस रुख से भारतीय पूँजीवाद को गहरी निराशा हुई, उनकी सभी आशाओं पर पानी फिर गया। भारतीय पूँजीवादी वर्ग ने यह अनुभव किया कि ब्रिटिश पूँजीवादी वर्ग के तथा उनके आर्थिक स्वार्थों के बीच संघर्ष तीव्र हो उठा है और उन्हें इसमें सफलता की आशा तब तक नहीं करनी चाहिये जब तक उन्हें राज की ओर

से संरक्षण नहीं प्राप्त होता अथवा भारतीय जनता भारतीय उद्योग-धन्धों को नहीं अपना लेती है। ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार से संरक्षण की आशा करना व्यर्थ था। भारतीय जनता के सौहार्द पर उनके रोजगार का भविष्य निर्भर था। अत: उनकी (जनता की) सहानुभूति प्राप्त करना उनके लिये आवश्यक हो गया। लेकिन जनता के हितों की उन्होंने युद्ध के अवसर पर उपेक्षा की थी और उसमें काफी बदनाम हो चुके थे। अत: उनके दलालों को जनता के बीच जाने का साहस न था और वे इस अवसर की ताक में थे कि जनता के शुभ-चिन्तक बनकर उसके बीच में जा सकें और उसके अन्दर राष्ट्रीय भावना भरकर उन्हें संगठित करके सब्ज बाग दिखा कर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्हें प्रयोग कर सकें।

हमने देखा है कि दमन के साथ-साथ राजनीतिक सुधार जनता की विद्रोह प्रवृत्ति को शान्त करने के लिये आवश्यक होता है। ब्रिटिश सरकार शासन नीति के इस मूल मन्त्र का सदैव प्रयोग करती रही है। गत महायुद्ध के उपरान्त इस नियम का उल्लंघन उसने ठीक न समझा। राष्ट्रीय कांग्रेस वगैरह सुधारवादी संस्थाएँ सुधार की तरफ टकटकी लगाये देख रही थीं। सुधार रूपी रोटी के टुकड़े के बँटवारे की तैयारी भी वे कर चुकी थीं। "लखनऊ पैक्ट" जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, इसी सुधार को कार्यान्वित करने के लिये ही किया गया था। इसका उद्देश्य भारतीय क्रान्तिकारी लड़ाई को बढ़ाकर आजादी हासिल करना नहीं था; बल्कि सुधार भारतीय पूँजीवाद तथा पूँजीवादी वर्ग के विकास करने के लिये आपसी समझौता था। तब से कांग्रेस और लीग

के वार्षिक अधिवेशन कई वर्ष तक एक समय और एक साथ, एक ही स्थान में होते रहे। मुस्लिम लीग और कांग्रेस के समझौते में प्रगतिशील माँगे रक्खी गई थीं। प्रजातंत्र की जो माँग रक्खी गई थी, वह उस समय की हिन्दू-मुस्लिम जनता की भावना का द्योतक है, जिसको सन्तुष्ट करने के लिये इस मुस्लिम और हिन्दू पूँजीपतियों की गुट्ट ने विवश होकर स्वीकार किया था।

अन्ततोगत्वा सन् १९१९ ई० का सुधार भारतवर्ष में लागू किया गया, किन्तु भारतीय पूँजीवाद के विकास के लिये यह अपर्याप्त था। जनता को साथ लिये बिना और सीधे संघर्ष किये बिना ब्रिटिश सरकार से और सुधार की आशा करना केवल बालू से तेल निकालने की आशा के समान ही था। हम पहले कह चुके हैं कि अवसरवादी-सुधारवादी भारतीय पूँजीवाद के समर्थक इस अवसर की ताक में थे ही कि किसी प्रकार भारतीय साधारण जनता में जाकर अपनी कलंक कालिमा को छोड़ा लें और उनका विश्वास प्राप्त कर सकें। यह अवसर उन्हें मिल गया। क्रान्तिकारियों के दमन के हेतु निर्मित रौलट एक्ट का विरोध जनता कर रही थी, इस अवसर को इन अवसरवादी सुधारवादियों ने अनुकूल समझा और गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय कांग्रेस ने रौलट-एक्ट के विरोध में प्रदर्शन किया और जनता के खोये हुए विश्वास को पुनः प्राप्त करने लगी। इस ऐक्ट का विरोध सबसे अधिक जलियाँ वाला बाग में प्रदर्शित हुआ।

"खिलाफत" आन्दोलन

प्रथम विश्व-व्यापी युद्ध की समाप्ति पर भारतीय मध्यम और

पूँजीवादी वर्ग की बड़ी-बड़ी आशायें एक-एक करके नष्ट होने लगी अभी हमने सुधार के द्वारा भारतीय पूँजीपतियों की आशा नता पर तुषारपात का वर्णन किया है। आगे अब इस बात का वर्णन किया जायगा कि अंग्रेजी सरकार की दूसरी नीति ने किस प्रकार भारतीय मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं को धक्का पहुँचाया और उन्हें अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध संघर्ष करने पर विवश कर दिया। प्रथम विश्व-व्यापी युद्ध मित्र-राष्ट्रों के पक्ष में समाप्त हुआ। लड़ाई के दरम्यान ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार की ओर से मुसलमानों को यह आश्वासन दिया गया था कि युद्ध की सफलता के उपरान्त टर्की के साथ अनुचित व्यवहार तथा अरेबिया और मेसोपोटेमिया में मुस्लिम-धार्मिक स्थानों के विषय में कोई ऐसा काम नहीं किया जायेगा जिससे मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं को चोट पहुँचे। परन्तु विजय के उपरान्त इसके विपरीत रुख उसने अपनाया। सन् १६१८ ई० में ब्रिटेन और फ्रान्स के द्वारा यह कहा गया कि जर्मनी की महत्वाकांक्षा के कारण फ्रान्स और ब्रिटेन का पूर्व में युद्ध के संचालन का ध्येय निश्चित एवं पूर्ण रूप से उन लोगों का उद्धार करना जो अब तक तुर्की की पराधीनता में हैं, तथा स्वतंत्र राष्ट्रों तथा स्वतंत्र राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करना है, जो अपना अधिकार वहाँ की असली निवासी जनता की मुक्त इच्छा से ग्रहण करेगी। परन्तु प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर जो शान्ति स्थापित हुई, उससे मुस्लिम-धार्मिक शहरों को स्वतंत्रता नहीं प्राप्त हुई। इसके खिलाफ हिन्दुस्तान में जोरों से आवाज उठाई गई और शीघ्र ही इस मुखालिफत की आवाज ने "खिलाफत" आन्दोलन का रूप

धारण कर लिया। यहाँ से "खिलाफत" आन्दोलन का श्री-गणेश होता है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ने इसमें भाग लिया। इसका संचालन अखिल भारतीय मुस्लिम लीग और अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संयुक्त नेतृत्व के द्वारा होने लगा। इसके फलस्वरूप हिन्दू और मुस्लिम मध्यम और पूंजीवादी वर्गों के बीच प्रतिक्रियावादी धार्मिक आधार पर क्षणिक कालीन एकता की स्थापना हुई। परन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार इस मध्यम वर्गीय एकता के अन्दर भावी अनिष्टकारी क्रान्ति के निहित बीज से सशंकित एवं भयभीत हो उठी। अब उसे किसी न किसी प्रकार जनता को क्रान्ति के मार्ग पर चलने से रोकना था। इसके लिये तत्कालीन भारत सचिव माण्टेग्यू और वाइसराय लार्ड रीडिंग ने परामर्श किया और इस नतीजे पर पहुँचे कि लार्ड रीडिंग सम्राट् की सरकार के पास मुसलमानों को असन्तुष्ट करने वाली कार्यवाइयों को रोकने के लिये तार भेजें और इस बात को सम्राट की सरकार पर स्पष्ट कर दें कि मुस्लिम धार्मिक नगरों पर अपनी प्रभुता स्थापित करने की नीति का भारत में ब्रिटिश स्वार्थों पर घातक प्रभाव पड़ रहा है। भारत सचिव और वाइसराय के परामर्श तथा निष्कर्ष का वर्णन 'राय स्मिथ' ने अपनी पुस्तक "भारत में राष्ट्रीयता तथा सुधार" में इस प्रकार किया है। ब्रिटिश सरकार की तुर्क विरोधी नीति से मि० माण्टेग्यू और लार्ड रीडिंग दोनों ही भयभीत हो गये और मि० माण्टेग्यू ने एक साहसिक एवं स्वाभाविक उपाय का अवलम्बन किया। उन्होंने वाइसराय को अपने पास तार भेजने का आदेश दिया। तार में वाइसराय ने सम्राट् की सरकार का ध्यान भारतीय

मुसलमानों के दावे का सम्पूर्ण भारत से प्राप्त समर्थन की ओर आकर्षित किया था, और इस प्रकार की प्रार्थना की गई थी कि कुस्तुन्तुनियाँ खाली कर दिया जाय और आरमन तथा स्मर्ना पुनः वापस कर दिये जायें। तार के अन्त में यह कहा गया था कि उन तीनों बातों का मान लेना भारत के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

जमायतुल-उलेमाय-हिन्द की स्थापना

सन् १६१६ ई० में दिल्ली में खिलाफत कान्फ्रेंस हुई और इस अवसर पर उल्मा लोगों ने अपने को संगठित करने का प्रयत्न किया। सन् १८५७ ई० के बाद उल्मा लोग प्रायः राजनैतिक जीवन से विमुख हो गये थे। राजनीति में सक्रिय भाग न लेने पर भी उनका अंग्रेजी विरोधी भाव अभी तक पूर्ववत् विद्यमान थे। इस अवसर पर उनके ब्रिटिश-विरोधी भावों ने प्रकट रूप धारण किया और उन्होंने "जमायतुल-उलेमाय हिन्द" नामक राजनीतिक संस्था की नींव डाली और अपनी दीर्घकालीन उदासीनता को त्यागकर वे राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे। इस नवजात संगठन के प्रथम सभापति मुसलमानों के प्रधान धार्मिक एवं विख्यात राष्ट्रीय क्रान्तिकारी मौलाना मुहम्मदुलहसन निर्वाचित हुए। महायुद्ध के अवसर पर ब्रिटिश विरोधी भारतीय क्रान्तिकारी षड्यन्त्रों से सम्पर्क होने के कारण उन्हें माल्टा के कारागार में बन्द रखा गया था। वहाँ से छूट कर जब वे पुनः अपने देश वापस आये, तो देशवासियों ने आपके प्रति यथेष्ठ सम्मान और प्रतिष्ठा का प्रदर्शन किया। 'जमायतुलउलेमा' के सभापति के पद से पुनः प्राणपण से

ब्रिटिश विरोधी कार्य में लीन हो गये। सन् १६२१ ई० में 'जमायतुलउलेमा' ने भारतीय मुसलमानों के नाम एक 'फतवा' निकाला। भारत की राजनीति में धर्म गुरुओं की ओर से स्वतन्त्रता संग्राम में मुसलमानों का अह्वान सन् १६५७ ई० के बाद यह प्रथम बार हुआ। 'फतवा' में मुसलमानों को अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध असहयोग करने का आदेश दिया गया था।

राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी इसी अवसर पर आन्दोलन प्रारम्भ किया, परन्तु इसका अभिप्राय स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये जन-आन्दोलन चलाने का नहीं था। वह किसी प्रकार जनता को अपने साथ रखकर ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालकर अधिक से अधिक सुधार तथा सुविधायें प्राप्त करना चाहती थी। इस का हम ऊपर वर्णन कर आये हैं कि भारतीय जनता क्रान्ति-कारियों के दमन के हेतु निर्मित 'रौलट-ऐक्ट' से बहुत असन्तुष्ट थी। अतः कांग्रेस के सुधारवादी मध्यम वर्गीय नेतृत्व जनता की इस इच्छित माँग को आगे रखकर उनके प्रियपात्र बनकर उनका समर्थन, सहयोग और सहानुभूति प्राप्त करने में सफल हुये। यही उनका उद्देश्य था, इसके अतिरिक्त उनके द्वारा संचालित आन्दोलन का अन्य कोई उद्देश्य न था और न उन्होंने कोई स्पष्ट कार्यक्रम ही रखा था। वे सुधार प्राप्ति के लिये जनता को अपने साथ करना चाहते थे, जिसमें उन्हें काफी सफलता भी मिली।

असहयोग आन्दोलन

सन् १६२१ ई० के असहयोग आन्दोलन को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये आन्दोलन समझना बड़ी भारी ऐतिहासिक भूल होगी।

इसकी विशेषता यह थी कि न तो यह जन-आन्दोलन ही कहा जा सकता था और न इसका ध्येय स्वतन्त्रता प्राप्ति ही था। यदि हम तत्कालीन आन्दोलन पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डालें तो वास्तविकता स्वतः स्पष्ट हो जायगी। सन् १६२१ ई० में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया गया, पर फिर भी स्वतंत्रता की माँग नहीं रक्खी जाती है, जब कि भारतवर्ष के क्रान्तिकारी वर्षों से इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हजारों की संख्या में बलि चढ़ चुके थे और अधिक संख्या में जेलों की कठोर यातनायें भुगत रहे थे। अपने प्राणों की आहुति देकर जनता के हृदय में भी उन्होंने स्वतन्त्रता की अग्नि को प्रज्वलित कर दिया था, फिर इस पर पटाक्षेप क्यों किया गया? इसका उत्तर यही है कि राष्ट्रीय कांग्रेस ने शोषित एवं पीड़ित व्यथित जनता की माँग को लेकर आन्दोलन नहीं चलाया था। उनकी व्यथाओं और पीड़ाओं का बिना स्वतन्त्रता के अन्त कहाँ था? अतः यह जन-आन्दोलन नहीं कहा जा सकता। तो फिर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि फिर इसका क्या रूप था? यह आन्दोलन मध्यम वर्ग का था, जो सुधार के लिये भूखा रहता है और वह जनता का सहयोग वहीं तक चाहता है जहाँ तक उसके अभीष्ट की सिद्धि हो और जैसे ही जनता अपने दुःख के निवारणार्थ क्रान्ति पथ का अनुसरण करती है तथा राज-सत्ता एवं अपनी निर्धनता के मूल कारण सामाजिक ढाँचे की जड़ पर प्रहार करती है, वैसे ही यह वर्ग जन-आन्दोलन का विरोधी हो जाता है; आन्दोलन को रोकना चाहता है, यदि शान्तिमय उपायों द्वारा न रोक सका, तो हिंसात्मक उपायों का भी अवलम्बन करता है। जनता तो किसी लड़ाई में जिसमें उसकी अवस्था को

सुधारने का आश्वासन होता है, शरीक हो जाती है और इसे तुरन्त अपने हित साधन के लिये स्वाभाविक क्रान्तिकारी रूप प्रदान करती है। तो क्या यही अवस्था कांग्रेस आन्दोलन की भी हुई ? ठीक ऐसी ही। जैसे ही सन् १६२१ ई० में असहयोग आन्दोलन छिड़ा, जनता स्वराज्य के नाम पर दीवानी हो गई और इसमें कूद पड़ी। अहिंसा की संकुचित सीमा में आन्दोलन सीमित रहने से उनकी समस्या हल नहीं होती। अत: तुरन्त ही इसका उल्लंघनकर अपना हित क्रान्ति के विशाल पथ पर ढूँढ़ना प्रारम्भ किया। जनता के हाथों पड़ कर आन्दोलन ने जैसे ही क्रान्ति पथ का अनुसरण किया कि धनी वर्ग थर्रा उठा। उसे अपनी लक्ष्मी विचलित होती प्रतीत हुई। खतरे की घंटी बज उठी। तुरन्त आन्दोलन को रोकने का प्रयत्न किया जाने लगा। राष्ट्रीय कांग्रेस की अखिल भारतीय कार्यकारिणी कमेटी की बारदोली बैठक में एक प्रस्ताव पास करके इस आन्दोलन को बन्द करने का आदेश दिया गया।

यहाँ पर यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि मुसलमानों में गुलामी के प्रति इतनी घृणा उत्पन्न हो गई थी कि ३६००० मुसलमानों ने गुलाम बनकर रहने की अपेक्षा अपनी जन्मभूमि का त्याग करना उचित समझा और भारत छोड़कर दूसरे मुल्कों में चले जाना अच्छा समझा।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए क्या हम कांग्रेस द्वारा संचालित सन् १६२१ ई० के आन्दोलन को स्वतन्त्रता प्राप्ति का जन आन्दोलन कह सकते हैं ? कदापि नहीं। यहाँ पर एक बात

ध्यान से देखने की आवश्यकता है। असहयोग आन्दोलन के इतिहास का आलोचनात्मक अध्ययन से यह स्पष्टतः ज्ञान होता है कि आम भारतीय जनता में किसी प्रकार का हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था, उनका स्वार्थ एक था, उनका शत्रु एक था, जिसके विरुद्ध दोनों ने कंधे से कंधा मिला-कर खून की धारा बहाई। जब कभी शत्रु से लड़ने का अवसर हुआ, उनकी एकता स्पष्ट रूप से लक्षित हुई है। यह उनकी परिस्थितिजन्य स्वाभाविक एकता है। इस बात को ध्यान में रखकर ही हम उनके बीच उत्पन्न किये गये भेदभावों और मनोमालिन्य की कृत्रिमता को पूर्णरूपेण समझ सकेंगे।

असहयोग आन्दोलन के बाद कांग्रेस का रचनात्मक कार्य-क्रम

सन् १९२२ ई० में असहयोग आन्दोलन बन्द कर दिया गया। राष्ट्रीय कांग्रेस के सुधारवादी मध्यम वर्गीय नेतृत्व ने आन्दोलन को बन्दकर चर्खा, हरिजन सेवा तथा ग्राम-सुधार हिन्दू-मुस्लिम एकता आदि के रूप में 'रचनात्मक कार्य-क्रम को और एसेम्बली वगैरह में जाकर स्वराज्य की लड़ाई' करने का वैधानिक कार्य-क्रम को अपनाया। अर्थात् जो कुछ ब्रिटिश सरकार ने राजनीतिक सुधार प्रदान किया था उसे राष्ट्रीय कांग्रेस के सुधार-वादी मध्यम वर्गीय नेतृत्व कार्यान्वित करने लगाय हाँ यह। कहना अनुचित न होगा कि इसने संघर्ष के मार्ग की तिलाञ्जलि देकर सुधारवादी वैधानिक पथ को ग्रहण किया। इसका स्वाभाविक परिणाम जो होता है वही हुआ। एक ओर तो कांग्रेस के कार्य-क्रम हिन्दू-मुस्लिम एकता का कार्य-क्रम सम्मिलित है, दूसरी

और इसके सुधारवादी और वैधानिक कार्य-क्रम को कार्यान्वित करने के फलस्वरूप हिन्दुस्तान भर में जहाँ-तहाँ हिन्दू-मुस्लिम दंगा होने लगा। यह है कांग्रेस के सुधारवादी और वैधानिक रचनात्मक कार्य-क्रम का परिणाम। भारतीय जनता की एकता के स्थान पर साम्प्रदायिकता की प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति उत्पन्न की जाने लगी। यह कांग्रेस के रचनात्मक कार्य-क्रम! ऊपर हम देख चुके हैं और आगे भी देखेंगे कि राष्टीय कांग्रेस के वैधानिक तथा सुधारवादी कार्य-क्रम के विस्तार के साथ-साथ साम्प्रदायिकता का भी रूप उग्रतर होता गया।

साम्प्रदायिक दंगा

साम्प्रदायिक दंगे के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक "इंडिया डिवाइडेड" (India Divided) में श्री डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद लिखते हैं कि "अगर निष्पक्ष होकर गत् तीस साल के दरमियान के साम्प्रदायिक दंगो के इतिहास का अध्ययन किया जाये, तो यह ज्ञात होगा कि देश के राजनीतिक इतिहास की नाजुक परिस्थिति में अपने ढंग के दंगे होते रहे हैं।" [पेज ११७] दूसरे स्थान में राजेन्द्र बाबू आगे कहते हैं कि "वास्तविकता यह है कि बहुत से साम्प्रदायिक दंगों का राजनीतिक कारण रहता है, हालाँकि ऊपर से यह जाहिर होता है कि धार्मिक पागलपन के कारण हुए हैं।" [पेज ११८]

बावजूद ब्रिटिश सरकार की कूटनीति के होते हुए भी सुधारवादी पथ पर हिन्दू-मुस्लिम एकता की स्थापना सम्भव ज्ञात हो रही थी, इसे भंग करने का उपाय ब्रिटिश सरकार करने लगी। कई वर्ष से यू० पी० में कचहरियों में देवनागरी

लागू करने के लिये आन्दोलन चल रहा था। परन्तु जब ब्रिटिश सरकार ने देखा कि राजनीतिक सुधार देना आवश्यक है, उस समय सन् १९०० ई० में यू० पी० की कचहरियों में देव नागरी [Nagri Script] लागू करने की आज्ञा जारी की। इसके फलस्वरूप हिन्दू और मुसलमानों में वैषम्य पैदा अवश्य हुआ।

यह ठीक है कि क्रान्तिकारी अपने प्रयास में असफल अवश्य रहे, लेकिन क्रान्तिकारी शक्तियाँ कुचली नहीं जा सकीं। अतः युद्धोपरान्त राजनीतिक सुधार हिन्दुस्तान में लागू करना ब्रिटिश सरकार ने आवश्यक समझा। इसके पहले हिन्दू-मुस्लिम वातावरण को खराब करना आवश्यक समझा। सन् १९१७ ई० के अन्तिम भाग में शाहाबाद जिले (बिहार) में बड़ा भारी हिन्दू-मुस्लिम दंगा शुरू हुआ। यू० पी० में कानपुर शहर में भी सन् १९१८ ई० में जोरों का दंगा हुआ। इसके बाद फिर सन् १९२२ ई० के अन्त में साम्प्रदायिक दंगे प्रारम्भ हुए। यह करीब-करीब सन् १९२७ ई० तक हिन्दुस्तान में कहीं न कहीं होता रहा। यहाँ पर यह उल्लेख करना अनुचित न होगा कि असहयोग आन्दोलन के बन्द होते ही सरकार ने गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया और ६ वर्ष का कठोर दंड मिला। परन्तु दो वर्ष में ही जेल से छूट गये। बाहर आते ही साम्प्रदायिक दंगे के खिलाफ सन् १९२४ ई० में उन्होंने अनशन किया। इसका कुछ असर अवश्य हुआ। परन्तु दंगा एकदम बन्द नहीं हो सका।

क्रान्तिकारी आन्दोलन

सन् १९२० ई० तक फाँसी और गोली से बचे हुए क्रान्तिकारी

जेलों के सीकचों के अन्दर सड़ रहे थे। इसके बाद धीरे-धीरे जेलों से बाहर निकाले जाने लगे। सन् १६१७ ई० लेनिन के क्रान्तिकारी नेतृत्व में रूस की श्रमिक शोषित जनता शासन सत्ता पर कब्जाकर अपनी पंचायती व्यवस्था कायम कर चुकी थी, जिसका प्रभाव हिन्दुस्तान के क्रान्तिकारी आन्दोलन पर भी पड़ा। साम्राज्यवादी युद्धोपरान्त संसार के और देशों जैसा हिन्दुस्तान में भी क्रान्तिकारी परिस्थिति विकसित तो अवश्य हुई परन्तु ब्रिटिश सरकार के दमन के कारण क्रान्तिकारी पार्टी का संगठन कमजोर और छिन्न-भिन्न हो रहा था। अभी भी बचे हुए क्रान्तिकारी अधिकांश जेलों में ही बन्द थे। जब वे छोड़े गये, तब उनके सामने गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस का असहयोग आन्दोलन खड़ा था। उसका समर्थन करना उन्होंने उचित समझा और किया। परन्तु शीघ्र ही यह बन्द कर दिया गया किन्तु क्रान्तिकारी मैदान में डटे रहे और अपने संगठन को विकसित तथा मजबूत बनाने के प्रयास में वे जुट गये। फिर क्या था ब्रिटिश सरकार के दमन के प्रखर सूर्य की किरणें निर्मल आकाश से सीधे उन्हीं पर पड़ने लगीं। उन्हें न तो एसेम्बली की नर्म गद्दियों की ही आवश्यकता थी और न वह चुपचाप अपनी कुटिया में ही विश्राम कर सकते थे। उनके जीवन का गठबन्धन भारतीय स्वतंत्रता से हो चुका था। अब उनका जीवन उद्देश्य राष्ट्रीय स्वतंत्रता तक ही सीमित न रहा, बल्कि इसके उपरान्त वे एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था कायम करना चाहते जिसमें मनुष्य के द्वारा मनुष्य का शोषण सम्भव न हो सकेगा। इस सामाजिक ऐतिहासिक उद्देश्य से प्रेरित हो क्रान्तिकारी आन्दोलन तथा संगठन

संचालित हो रहा था। दिन प्रतिदिन यह शक्तिशाली होने लगा। परन्तु ब्रिटिश सरकार की आँखों से बचा नहीं रह सका। इसकी दृष्टि पड़ी और इसके विकास प्रगति को देखकर भयावह हो उठी। तुरन्त इस खतरे से अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिये क्रान्तिकारी संगठन के ऊपर दमन-चक्र घुमाने लगी। इसके शिकार हो सैकड़ों की तादाद में कुछ दिन के अन्दर क्रान्तिकारी जेलों में बन्द कर दिये गये।

साइमन कमीशन का आगमन

हम ऊपर देख चुके हैं कि असहयोग आन्दोलन के बन्द होते ही साम्प्रदायिक दंगे ने काफी जोर पकड़ा। सारे देश में हिन्दू-मुस्लिम दंगों का कुहराम मच गया। कल जो अभी भाई-भाई के सामने स्वाधीनता संग्राम में अपने खून बहा रहे थे, वही आज एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे थे। प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ मजबूत हो रही थीं। साम्प्रदायिकता राष्ट्रीयता से बीस पड़ रही थी।

इस विषम परिस्थिति में जब कि राष्ट्रीयता अपना पथ भूलकर साम्प्रदायिकता के अन्धकूप में गिर पड़ी थी और अपनी विनाश लीला स्वयं अपने हाथों पूरा कर रही थी, उस समय भी भारतीय क्रान्तिकारी धैर्य के साथ अपने पथ पर डटे हुए थे और जनता की क्षीण होती हुई क्रान्तिकारी शक्तियों को शक्ति तथा जीवन प्रदान करने की भरपूर चेष्टा कर रहे थे। साम्प्रदायिकता के कीटाणु, राष्ट्र के शरीर में प्रवेश करके उसे प्राय: निष्प्राण बनाने के प्रयत्न में थे, उस समय उन्होंने (क्रान्तिकारियों ने) अपने शरीर का स्वस्थ रक्त देकर पुनः

राष्ट्र में इतनी शक्ति भर देने का प्रयत्न कर रहे थे कि वह स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये क्रान्ति पथ पर चल सके। क्रान्तिकारियों के प्रयत्नों से पुनः जागृति के चिन्ह दिखाई देने लगे और जनता की गति धीरे-धीरे क्रान्ति पथ पर तीव्रतर होने लगी। यह स्थिति ब्रिटिश सरकार से छिपी न रह सकी। उन्हें यह अनुभव होने लगा कि दमन पूर्ण रूप से जनता की क्रान्तिकारी मनोवृत्ति को कुचलने में सफल नहीं हुआ है और न हो सकता है। जब क्रान्तिकारी शक्तियों को विनाश करने के प्रयत्न में उनका "मारण मन्त्र" निष्फल गया तो उन्होंने "मोहन मन्त्र" का आश्रय लिया और भारत को सुधार देने की तैयारी की जाने लगी। सन् १९२७ ई० में सर साइमन के नेतृत्व में एक कमीशन भारत-भाग्य विधाता बनाकर ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा भारतवर्ष में भेजा गया। इसके सदस्य सब के सब अंग्रेज थे। इसे यह जाँच सुपुर्द की गई कि भारतवर्ष किस हद तक "वैधानिक सुधार" प्राप्त करने की क्षमता रखता है और उसको वह "सुधार" किस समय दिया जाय।

दिन प्रतिदिन भारतीय और ब्रिटिश पूँजीवादी वर्ग के बीच का संघर्ष स्पष्ट और तीव्रतर होता जा रहा था। इसका प्रभाव भारतीय वर्गों के ऊपर भी कुछ न कुछ अवश्य पड़ा। साइमन कमीशन कुछ सुधार देने आ रहा है, यह जानते ही प्रतिक्रियावादियों, विशेषतः मुस्लिम प्रतिक्रियावादियों, के मुख में पानी भर आया। इस अवसर से लाभ उठाने के लिये उन्होंने मुस्लिम लीग पर अपना अधिकार जमाना चाहा, जिस पर अभी राष्ट्रीय विचार वाले मुसलमानों का अधिकार था। इसलिये उन्होंने मुस्लिम लीग की अगली बैठक लाहौर में

निमन्त्रित किया। पर राष्ट्रीय विचार के मुसलमानों के बहुमत के विरोध के कारण बैठक लाहौर की जगह कलकत्ता में होना निश्चय किया गया। प्रतिक्रियावादी मुसलमान इससे भड़क उठे और सर फिरोज खाँ नून, सर मुहम्मद इकबाल बैठक छोड़कर चले गए। सर मुहम्मद सफी की अध्यक्षता में उन्होंने इसका अधिवेशन करके साइमन के स्वागत का प्रस्ताव पास किया। जब कि सारे देश में एक स्वर में विरोध की आवाज उठाई गई थी। आज जब ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरोध का अवसर था, एक दूसरे के खून के प्यासे हिन्दू-मुस्लिम अपना कृतिम भेद-भाव को भूलकर स्वाभाविक एकता के सूत्र में बँधने लगे।

कलकत्ता में मि० मुहम्मद अली जिन्ना के सभापतित्व में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का अधिवेशन हुआ। इसमें दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुए, एक के अनुसार साइमन कमीशन का बहिष्कार और दूसरे के अनुसार राजनीतिक बन्दियों की रिहाई की माँग की गई। ये दोनों प्रस्ताव बहुत ही महत्वपूर्ण थे। इसके सिवाय एक और महत्वपूर्ण काम हुआ। भारत-सचिव लार्ड बर्कनहेड ने यह चुनौती दी थी कि भारत के लोग भारतवर्ष के लिये एक संयुक्त भावी विधान तैयार करें। लीग ने अपने कलकत्ता वाले अधिवेशन में इस चुनौती को स्वीकार किया और एक "विधान निर्मात्री कमेटी" की नियुक्ति की गई, जो अन्य पार्टियों से मिलकर विधान का निर्माण करेगी। इसके अतिरिक्त दिल्ली में होने वाले नेशनल कान्वेशन में भी सम्मिलित होने का निश्चय किया।

लालाजी की मृत्यु का बदला

हिन्दुस्तान में साइमन कमीशन का पदार्पण हुआ। हर जगह भारतीय जनता ने काले झंडे से उसका स्वागत किया। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता था कि जनता की क्रान्तिकारी प्रवृत्ति कुचली नहीं जा सकी बल्कि और भी उग्रतर होती गई। अंग्रेजी सरकार इसे सहन नहीं कर सकी। भारतीय जनता को आतंकित करने के लिये दमन का आश्रय लिया। एक तरफ तो सुधार का भी दौर चल रहा था। सुधार और दमन दोनों का ध्येय एक है तथा दोनों का परछाई और शरीर का सा सम्बन्ध है। जनता पर कुछ अंश तक दमन का दबदबा बैठाया जा सका, पर उनकी क्रान्तिकारी प्रवृत्तियाँ सजीव थीं। इस दमन का श्री लाला लाजपतराय शिकार हुए। भारतीय जनता ने यह अनुभव किया कि साइमनकृत अपमान का बदला लेने में राष्ट्रीय कांग्रेस असमर्थ थी। भारतीय जनता आतंकित तथा हतोत्साह हो रही थी। यह परिस्थिति भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिये घातक थी। देश के मत्थे पर लगी कलंक-कालिमा को दूर करने के लिये वे आतुर दृष्टि से क्रान्तिकारियों की ओर देखने लगीं। भारतीय क्रान्तिकारी भी इस राष्ट्रीय अपमान को यों ही चुपचाप सहन नहीं कर सकते थे और सहन करना भावी क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिये घातक भी समझते थे। उन्होंने ईंट का जवाब पत्थर से दिया, अपमानित भारतीय जनता के शिर का कलंक शत्रु-रक्त से धो दिया। लालाजी का खूनी सैन्डर्स क्रान्तिकारियों के हाथों से न बच सका और अपने कुकृत्यों का फल भोगने के लिये जहन्नुम को भेज दिया गया। अपमानित और निरुत्साहित जनता में पुनः

गर्व और उत्साह का संचार हुआ। छिटपुट देश में होने वाली क्रान्तिकारी घटनायें इस बात की द्योतक थीं। क्रान्तिकारी देश की आजादी के लिये प्रयत्नशील थे। जनता ने भी क्रान्तिकारियों के प्रति अपनी सहानुभूति और आदर का प्रदर्शन किया, यही कारण था कि राष्ट्रीय कांग्रेस के सुधारवादी मध्यम वर्गीय नेतृत्व को जनता के दबाव से मजबूर होकर काकोरी षड्यन्त्र केस के शहीदों के प्रति सहानुभूति का प्रस्ताव पास करना पड़ा। आज भी भारतीय श्रमिक शोषित जनता की शोषण और गुलामी के खिलाफ मुक्ति की लड़ाई में शोषित पीड़ित जनता को सरदार भगतसिंह तथा यतीन्द्रनाथ दास प्रेरित करते हैं।

४

"राष्ट्रीय मुस्लिम-दल" की स्थापना

संसार व्यापी आर्थिक संकट क्रमशः विकसित हो रहा था और इस समय इसकी भयंकरता और भी बढ़ गई। भारतवर्ष इसकी लपट में आने से बचा न रह सका। यहाँ के भी सामाजिक तथा आर्थिक जीवन के ऊपर इसका प्रभाव पड़ते हुए दिखाई देने लगा। क्रान्तकारी-शक्तियों के लिये अनुकूल परिस्थिति विकसित हो रही थी। वह भारत की राजनीतिक तथा सामाजिक अवस्थाओं को प्रभावित करती हुई बड़ी तेजी से आगे बढ़ रही थी।

लाहौर के अपने वार्षिक अधिवेशन में "शफी लीग" ने मुसलमानों के सर्वदल सम्मेलन की आवाज उठाई। यह सन् १९२९ ई० में हुआ। इसमें अखिल भारतीय मुस्लिम लीग भी शामिल हुई थी। इस कान्फ्रेन्स ने "नेहरू रिपोर्ट" जिसे कांग्रेस ने कलकत्ता के अपने वार्षिक अधिवेशन में पास किया था, जो कांग्रेस की ओर से भारतवर्ष के भावी विधान के रूप में थी, को अस्वीकार कर दिया। मुस्लिम लीग के राष्ट्रीय विचार वाले मुसलमान कुछ संशोधन के साथ रिपोर्ट को स्वीकार करने के पक्ष में थे। किन्तु जिन्ना साहब ने बिना

किसी नतीजे पर पहुँचे अधिवेशन को भंग कर दिया। इससे राष्ट्रीय मुसलमानों को काफी दुःख और निराशा हुई तथा विवश होकर उन्हें मुस्लिम लीग से अलग एक संस्था की स्थापना करनी पड़ी। यह "राष्ट्रीय-मुस्लिम-दल" के नाम से विख्यात हुआ। किन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम लीग पूर्णतः प्रतिक्रियावादियों के हाथों में चली गई।

"सविनय अवज्ञा" आन्दोलन और "दिल्ली पैक्ट"

ऊपर हम इस बात का उल्लेख कर आये हैं कि सन् १६२२ ई० में असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के उपरान्त प्रतिक्रियावादी साम्प्रदायिकता जोर पकड़ रही थी, राष्ट्रीय शक्तियाँ काफी कमजोर होती जा रही थीं। सारे देश में आपसी फूट, वैमनस्य बढ़ता जा रहा था, परन्तु इस सबके बावजूद भी क्रान्तिकारी हतोत्साहित नहीं हुए, बड़ी लगन और उत्साह के साथ अपने पथ पर दृढ़ता के साथ अग्रसर होते गये। क्रमशः अपने अध्यवसाय और अनवरत परिश्रम से वे जनता की क्रान्तिकारी शक्ति के ऊपर छाये हुए साम्प्रदायिकता के मोहान्धकार को दूर करने में सफल हो सके। जनता के अपमान का सैण्डर्स को गोली का शिकार बनाकर बदला लेकर उन्होंने उनकी सच्ची सहानुभूति और समर्थन प्राप्त किया। इस समय भारतीय जनता क्रान्तिकारियों के प्रभाव में थी। यह बात राष्ट्रीय कांग्रेस के सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व से छिपी नहीं थी। अतः क्रान्तिकारियों के प्रभाव से भारतीय जनता को निकालकर भुलावे में डालने के लिये और क्रान्तिकारी शक्तियों के बढ़ते हुए

प्रभाव के दबाव के कारण लाचार होकर सन् १६२६ ई० ३१ दिसम्बर को लाहौर के वार्षिक अधिवेशन में कांग्रेस ने "पूर्ण स्वतंत्रता" का प्रस्ताव पास किया।

प्रस्ताव पास हो जाने ही से भारतीय जनता क्रान्तिकारी शक्तियों के प्रभाव से निकलकर राष्ट्रीय कांग्रेस के सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व के असर में नहीं आ जाती। अतः भारतीय जनता के अन्दर इसका (स्वतंत्रता के प्रस्ताव का) प्रचार करना इसने आवश्यक समझा। सर्वप्रथम सन् १६३० ई० के २६ जनवरी को हिन्दुस्तान भर में एक समय झंडा अभिवादन और स्वतंत्रता प्राप्ति की प्रतिज्ञा आम जलसा में ली गई। तब से २६ जनवरी भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता की लड़ाई के इतिहास में एक महत्वपूर्ण दिवस हो गया है और तब से स्वतंत्रता दिवस के नाम से यह दिवस स्वतंत्रता दिवस के नाम विख्यात हो रहा है।

राष्ट्रीय सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व यहीं पर नहीं रुक जाता। आगे बढ़कर वह "सविनय अवज्ञा" आन्दोलन चलाने लगता है। इसके प्रारम्भ करने के पूर्व गांधी जी ने कांग्रेस की ओर से भारतवर्ष के वाइसराय को, आन्दोलन चलाने का क्या उद्देश्य है, लिखा। उसके उपरान्त ता० १२-३-३० को साबरमती आश्रम से ७६ लोगों के साथ गांधी जी ने विख्यात "डांडी मार्च" के लिये प्रस्थान किया। प्रस्थान करने के समय उन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी, जब तक भारतवर्ष आजाद नहीं होगा, तब तक वे आश्रम में वापस नहीं आयेंगे। चाहे तो भारत स्वतंत्र होगा या उनकी लाश समुद्र में तैरेगी। २०० मील पैदल चलकर ता० ६-४-३० को समुद्र के किनारे से नमक बे

उठा लाये। यह सत्याग्रह धरराणा नमक सत्याग्रह नाम से मशहूर है। इसके साथ सारे देश में नमक बनाया जाने लगा। इस प्रकार सन् १६३० ई० में "सविनय अवज्ञा" आन्दोलन प्रारम्भ हुआ।

उधर ब्रिटिश सरकार ने भारतीय शासन विधान में सुधार करने के लिये "गोलमेज परिषद" आमन्त्रित किया, उसमें सम्मिलित होने का निमन्त्रण भारतवर्ष के दलों को दिया गया। कांग्रेस ने इसे अस्वीकार कर दिया और ब्रिटिश सरकार के खिलाफ 'सविनय अवज्ञा' आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। आन्दोलन का बिगुल बजते ही स्वतंत्रता की चिर-प्रेमी, शोषित पीड़ित भारतीय जनता लड़ाई के मैदान में कूद पड़ी। उसकी प्रेरक शक्ति स्वतंत्रता की चिर-अभिलाषा तथा दारुण आर्थिक बन्धन मोचन की पूर्ति, सत्य अहिंसा के रहस्यमय मन्त्रों से नहीं होने को थी, अतः आन्दोलन प्रारम्भ होने के बाद ही उसने क्रान्तिकारी पथ का अनुसरण किया और 'सविनय अवज्ञा' आन्दोलन जनक्रान्तिकारी आन्दोलन में तीव्र गति से विकसित होने लगा था। ज्योंही "सविनय अवज्ञा" आन्दोलन भारतीय शोषित पीड़ित जनता के आन्दोलन में रूपान्तरित होने लगा, त्योंही भारतीय राष्ट्रीय सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व तथा ब्रिटिश सरकार का ध्यान ऊधर गया और देखकर वे दहल उठे। उन्होंने समझा कि अगर तुरन्त इसे रोका नहीं गया तो यह जनक्रान्तिकारी आन्दोलन की अग्नि ब्रिटिश सरकार के साथ ही साथ भारतीय पूँजीवादी वर्ग और उसके समर्थकों को भी भस्म किये बगैर न छोड़ेगी। अतः वे रोक-थाम के उपायों में संलग्न हो गये।

ब्रिटिश सरकार और राष्ट्रीय सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व के बीच समझौते की बातचीत चलने लगी और अन्त में लार्ड इर्विन और गांधीजी के नेतृत्व में ब्रिटिश सरकार और राष्ट्रीय कांग्रेस के बीच समझौता हो गया जो भारतवर्ष के मौजूदा राजनीतिक इतिहास में "दिल्लीपैक्ट" के नाम से प्रसिद्ध है। राष्ट्रीय कांग्रेस के सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व ने सुलह तो की, परन्तु स्वतंत्रता के खूनी अभिनय का तब तक पटाक्षेप नहीं होता जब तक राजनीतिक रंग-मंच पर क्रान्तिकारी उपस्थित थे। अतः उन्हें भी शान्त करने के लिये सरकार ने उनसे सुलह करना चाहा—परन्तु क्रान्तिकारी "स्वतंत्रता" के उपासक थे। उनका ध्येय एक मात्र स्वतंत्रता थी। उसके नीचे कहाँ पर वे सुलह करते। क्रान्तिकारी अपने सिद्धान्त के विरुद्ध किसी प्रकार का समझौता नहीं करता है। भारतीय क्रान्तिकारी इस मोह-पाश में न बँध सके। वे पूर्ववत् क्रान्ति की अग्नि को प्रज्वलित करते रहे।

दिल्ली पैक्ट के अनुसार कांग्रेस ने दूसरी "गोलमेज परिषद्" में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया था। गांधीजी राष्ट्रीय कांग्रेस के एक मात्र प्रतिनिधि होकर लन्दन गये। एक ओर यह नाटक खेला जा रहा था और दूसरी तरफ इसके आड़ में वीर क्रान्तिकारी फाँसी के तख्तों पर तथा जेलों के सीकचों के भीतर स्वतंत्रता का मूल्य चुका रहे थे। भारतीय जनता गोलियों से भूनी जा रही थी। भारतीय जनता जिस क्रूर दमन का सामना कर रही थी, शायद किसी अन्य देश की जनता को इतना न करना पड़ा हो। एक तरफ यह दृश्य था और दूसरी तरफ राष्ट्रीय कांग्रेस गांधीजी के नेतृत्व में सुधार के लिये बेजान हो रही थी।

राष्ट्रीय मुसलमानों की लखनऊ कान्फ्रेन्स

इस समय लखनऊ में सर अली इमाम की अध्यक्षता में राष्ट्रीय मुसलमानों की एक कान्फ्रेन्स हुई। सन् १९०६ ई० में लार्ड मिन्टो से मिलने वाले मुस्लिम डेपुटेशन का सर अली इमाम एक सदस्य थे। किन्तु सन् १९०५ ई० से सन् १९२६ ई० के बीच के अवकाश में उन्हें इस प्रश्न पर गम्भीरता के साथ विचार करने का अवसर मिला और वे इस निश्चित परिणाम पर पहुँचे कि "पृथक् निर्वाचन" का अभावात्मक परिणाम केवल भारतीय राष्ट्रीयता के लिये ही घातक नहीं हुआ, अपितु उसका स्वीकार करना प्रत्यक्षरूप से मुसलमानों के लिये भी हानिकारक सिद्ध हुआ। आपने पुनः कहा—"यदि मुझसे यह प्रश्न किया जाय कि आपका भारतीय राष्ट्रीयता में क्यों दृढ़ विश्वास है, तो मैं यही उत्तर दूँगा कि बिना इसके भारत की स्वाधीनता एक असम्भावना है। पृथक् निर्वाचन राष्ट्रीयता का नाशक है।" मुस्लिम-पठित-वर्ग पृथक् निर्वाचन योजना से सहमत नहीं हैं। उनके पास कान्फ्रेन्स के निर्वाचित सभापति होने के कारण भारत के कोने-कोने से विभिन्न नेताओं के इस आशय के सन्देश आये हैं कि जिसमें सभी ने "संयुक्त निर्वाचन" के मूल सिद्धान्त पर जोर दिया है।

"दिल्ली पैक्ट" और किसान आन्दोलन

गांधीजी भारतीय विधान में राजनीतिक सुधार की आशा से विलायत गये हुए थे। सन् १९३१ ई० के प्रारम्भ में 'सविनय अवज्ञा' आन्दोलन बन्द कर दिया गया था। राष्ट्रीय कांग्रेस का सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व राजनीतिक सुधार के

लिये हाथ फैलाये प्रतीक्षा कर रहा था। पर शोषित-पीड़ित जनता हाथ पर हाथ रखकर चुपचाप बैठी हुई नहीं थी। भारतीय शोषित-पीड़ित किसान बगावत का झंडा लिये मैदान में डटी थी। बगावत की अग्नि की लहर देश के कोने-कोने में उठ रही थी। कांग्रेसजन बागी किसानों का, 'उनकी लड़ाई में साथ देने के लिये बाध्य हो रहे थे। लाचार होकर राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व ने भी ऐसे कांग्रेसजनों को किसानों का साथ देने की आज्ञा दे दी। साथ ही साथ किसानों की सरगर्मियाँ भी देश भर में उथल-पुथल मचा रही थी। अब तक भारतीय जनता पर कांग्रेस का प्रभाव कायम हो चुका था और वह उसे क्रान्ति-पथ से दूर रखने में बहुत अंश तक सफल भी होती रही थी। लेकिन ब्रिटिश सरकार कांग्रेस का भी प्रभाव जनता के ऊपर अपने अस्तित्व के लिये घातक समझने लगी और इसे कायम रहने देना नहीं चाहती थी। फलतः गांधी जी के दूसरे 'गोलमेज परिषद' से लौटते ही सरकार ने कांग्रेस पर हमला बोल दिया। सारे देश में आन्दोलन की लहर उठी और दमन का दौरा भी शुरू हो गया।

मुसलमानों द्वारा संयुक्त-निर्वाचन-प्रणाली की माँग

सन् १९३१ ई० में सर अली इमाम के नेतृत्व में राष्ट्रीय मुसलमानों की लखनऊ में एक कान्फ्रेन्स हुई जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। इस कान्फ्रेन्स में यह माँग की गई थी कि "विधान में मौलिक अधिकार के समावेश की घोषणा की जाय।" और दूसरे प्रस्ताव में "सभी प्रमुख प्रश्नों का निर्णय

संयुक्त-निर्वाचन-प्रणाली और बालिग-मताधिकार पर होना चाहिये। तथा जनसंख्या के आधार पर संघ-प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं में सदस्यों की जगहें निश्चित कर दी जायें। ३० फी सदी से कम अल्पमत वालों को अतिरिक्त स्थानों के लिये चुनाव लड़ने का अधिकार प्राप्त हो।"

कमजोरी की अवस्था में मुस्लिम लीग

उक्त उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सन् १९३१ ई० में तथा उसके बाद भारतीय विधान सम्बन्धी साधारण मुसलमानों के विचार क्या थे। इस समय राष्ट्रीय मुसलमानों की शक्ति प्रबल हो रही थी और प्रतिक्रियावादियों की शक्ति क्रमश: क्षीण होती जाती थी। मुस्लिम लीग के ऊपर पूर्णत: प्रतिक्रियावादियों का प्रभाव था। इस फलस्वरूप इसका महत्व तथा शक्ति दिन प्रतिदिन कम होती जा रही थी। आम मुस्लिम जनता के अन्दर उसका प्रभाव लुप्त होता जा रहा था। बुझती हुई दीपक की तरह यह भी टिमटिमा रही थी। राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के कारण राष्ट्रीय मुसलमान मुस्लिम जनता में प्रभावशाली होने लगे थे। इस परिस्थिति में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का वार्षिक अधिवेशन इलाहाबाद में बुलाया गया। पर सारे भारतवर्ष से केवल ७५ मुसलमान इसमें शामिल होने के लिये आये। यह संख्या किसी प्रकार की कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिये पर्याप्त नहीं थी इस अवसर पर मुहम्मद इकबाल इसके सभापति निर्वाचित हुए। इसके पश्चात् और भी अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के अधिवेशन हुए पर उनकी भी दशा दयनीय रही। दिल्ली में मि० जफरुल्ला खाँ के सभापतित्व में बुलाये गये मुस्लिम लीग के अधिवेशन की भी

पूरी दुर्गति हुई, सारे भारत से केवल १०० मुसलमान इसमें सम्मिलित होने के लिये आये और सारी कार्यवाही खुले मण्डप में न होकर, एक घर में सम्पन्न हुई।

प्रतिक्रियावादी साम्प्रदायिक शक्तियों का उत्थान

राष्ट्रीय मुसलमान अब तक शक्तिशाली और प्रभावपूर्ण होते जा रहे थे, पर राष्ट्रीय आन्दोलन के रुकने के साथ ही साथ उनकी शक्ति और प्रतिष्ठा की भी इतिश्री होने लगी। आजादी की लड़ाई ने जर्जर भारत की देह में नवीन तथा शुद्ध रक्त का संचार कर दिया था, जिसने साम्प्रदायिकता के विष-कीटाणुओं को बिल्कुल ही दबा अवश्य दिया था और भारतवर्ष एक सबल एवं संगठित राष्ट्र के रूप में विकसित बहुत अंश तक होने लगा था किन्तु इस उत्तेजक शक्ति के समाप्त होते ही पुन: विष-कीटाणु साम्प्रदायिकता के रूप में प्रबल होने लगे। 'सविनय अवज्ञा' आन्दोलन के वापस होते ही भारतवर्ष प्रतिक्रियावादी शक्तियों का क्रीड़ा-स्थान बन गया। हिन्दू-मुस्लिम दंगे अपनी विभीषिकाओं के साथ पुन: प्रबल-वेग से उमड़ पड़े। कंधे से कंधा मिलाकर डटे हुये भारतीय क्षणभर बाद ही किस जादू की शक्ति से एक दूसरे के प्राणों के ग्राहक बन गये। इस बात को जानने के लिये व्यथित पाठक आतुर होंगे। इसका उत्तर अत्यन्त सीधा और सरल है। "यह जादू की शक्ति ब्रिटिश हुकूमत है।" जनता की एकता को उसने सदैव शंका की दृष्टि से देखा है और सन् १८५७ ई० के बाद से ही हम देखते आ रहे हैं कि जब कभी भारतीय जनता संगठित हुई और ब्रिटिश सरकार के प्रति अपनी विरोधी भावनाओं को प्रदर्शित करने लगी तो ब्रिटिश

साम्राज्यशाही ने उसे अपने अस्तित्व के लिये हानिकर समझ-कर नष्ट करने का प्रयत्न किया है। अब तक का इतिहास इस पर यथेष्ट प्रकाश डाल चुका है कि उन्होंने समय-समय पर किन उपायों का प्रयोग किया, उन्हें फिर दुहराने की आव-श्यकता नहीं है। ब्रिटिश सरकार सर्वदा हिन्दू-मुसलमानों में गहरा मतभेद उत्पन्न करने का प्रयत्न करती रही है, पर राष्ट्रीय शक्तियों का उत्थान तथा राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर उस विषमता की नींव को सुदृढ़ नहीं होने देती थी। परन्तु जैसे ही राष्ट्रीय आन्दोलन शान्त होते थे, वैसे ही उसे अपनी दुष्काम-नाओं को पूरा करने का अवसर मिलता था। सन् १९३०-३२ ई० के आन्दोलन की शान्ति के बाद उसने कुछ किराये के टट्टुओं को फाँसकर अपना उल्लू सीधा करना शुरू किया। प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ भारतीय रंग-मंच पर प्रकट हुईं। उनके बढ़ावे के लिये अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी। राष्ट्रीय शक्तियों के अभिनय का पटाक्षेप हो गया था। मुस्लिम जनता की आँखों के सामने राष्ट्रीय मुस्लिम नेता ओझल हो गये थे। और उनकी आँखों के सामने मुस्लिम लीग तथा इसके नेता नजर आने लगे। फलतः मुस्लिम लीग की शक्ति क्रमशः बढ़ने लगी। इस प्रतिक्रियावादी रंग-मंच के प्रधान अभिनेता मि० जिन्ना थे।

हिन्दू-मुस्लिम एकता अधिवेशन

दमन और सुधार का चोली-दामन का सम्बन्ध है। दमन के साथ ही साथ सुधार की भी तैयारी होने लगी। कृत्रिम साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने के लिये ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने भारतीय विधान में सुधार के नाम पर राष्ट्रीय हित घातक

साम्प्रदायिक बँटवारा की घोषणा की, जो 'कम्युनल एवार्ड' के नाम से विख्यात है। सारे भारतवर्ष ने इसका घोर विरोध किया परन्तु मि० जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने इसका स्वागत किया। इस घोषणा के उपरान्त भारत सचिव सर सैमुअल होर बार-बार यह घोषणा करते रहे कि हिन्दू-मुस्लिम समझौता के द्वारा ही यह साम्प्रदायिक बँटवारा हस्तान्तरित किया जायगा।

इस विषय पर विचार करने के लिये तथा इस राष्ट्रीय हित घातक योजना को नष्ट करने के लिये पं० मदन मोहन मालवीय ने इलाहाबाद में हिन्दू-मुस्लिम समझौते के लिये 'एकता अधिवेशन' बुलाया। इस अधिवेशन में यह तय हुआ कि केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं में ३२% बत्तीस प्रतिशत प्रतिनिधित्व का अधिकार मुसलमानों को मिलना चाहिये और दूसरा सिन्ध, बाम्बे प्रेसिडेन्सी से अलग करके एक स्वतंत्र गवर्नर वाला प्रान्त बना देना चाहिये। यह 'एकता अधिवेशन' अभी चल ही रहा था कि सर सैमुअल होर ने यह घोषणा की कि "सम्राट् की सरकार ने ब्रिटिश भारत के मुसलमानों को केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं में ३३% तैंतीस प्रतिशत प्रतिनिधित्व का अधिकार देने का निर्णय किया है और सिन्ध को केवल एक अलग प्रान्त ही नहीं स्वीकार किया है बल्कि केन्द्रीय सरकार के कर की आय से उसे पर्याप्त आर्थिक सहायता भी देगी। इस घोषणा ने हिन्दू-मुस्लिम समझौते को सुरंग लगाकर उड़ा दिया। एकता अधिवेशन असफल रहा। भारतीय राजनीतिज्ञों ने इस सत्य का कटु अनुभव किया कि पराधीन भारतवर्ष कोई एकता स्थापित नहीं कर सकता है।

सन् १९३५ ई० के विधान की घोषणा

अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की काउन्सिल ने सन् १९३४ ई० के अप्रैल में 'कम्युनल एवार्ड' को स्वीकार कर लिया। भारतीय विधान में सुधार करने के लिये ब्रिटिश सरकार की ओर से एक सरकारी घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ, जो 'ह्वाइट पेपर' कहलाता है और सन् १९३५ ई० के विधान के नाम से प्रसिद्ध है। इस विधान का विरोध सारे देश ने किया। सर वजीर हसन ने मुस्लिम लीग के अध्यक्ष के पद से भाषण देते हुए इस प्रकाशित विधान के विषय में कहा था कि "यह लोकतंत्र और स्वतंत्रता की स्थापना करने वाली शक्तियों को बन्धन में जकड़ लेगा और कुचल डालेगा। मुस्लिम जनता को नये विधान से उतना ही दुःख उठाना पड़ेगा जितना कि भारत के अन्य किसी सम्प्रदाय को।" इस अधिवेशन का यही मुख्य प्रस्ताव था, जिसके द्वारा सन् १९३५ ई० का विधान स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार किया गया।

बाबू राजेन्द्र प्रसाद और मि० जिन्ना की समझौते की बात

इन दिनों अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सभापति बाबू राजेन्द्र प्रसाद थे। हिन्दू-मुस्लिम समझौते (अर्थात् कांग्रेस-लीग समझौते) के लिये उन्होंने मुस्लिम लीग के सभापति मि० जिन्ना से बातचीत की। समझौते की सभी शर्तें मान ली गईं। ऐसा प्रतीत होता था कि मानों समझौता सफल हो गया है। पर ऐन मौके पर मि० जिन्ना ने यह कहकर समझौते के मसविदे पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया कि कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था है, इसे साम्प्रदायिक प्रश्नों पर किसी

सम्प्रदाय विशेष की तरफ से आश्वासन देने का अधिकार नहीं है। हिन्दू महासभा ने इस पर हस्ताक्षर नहीं किया। अत: ये शर्तें हिन्दुओं के लिये मान्य नहीं हैं।

साम्प्रदायिकता के विष-वृक्ष को बढ़ाने वाले कानूनी मार्क्सवादी और पूँजीवादी सुधारवादी राष्ट्रीय नेतृत्व

भारतीय राजनीति क्षेत्र में दो धाराओं का उल्लेख हमने ऊपर किया है:—राष्ट्रीय कांग्रेस के पूँजीवादी सुधारवादी नेतृत्व के मातहत सुधारवादी आन्दोलन के रूप में और दूसरी पूर्ण स्वतंत्रता को प्राप्त और प्रजातंत्र की स्थापना के हेतु क्रान्तिकारी आन्दोलन। पाठकों के दिमाग में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब सुधारवादी आन्दोलन बन्द किया जाता रहा, उस समय क्रान्तिकारी आन्दोलन को संचालित करने वाली शक्तियाँ कहाँ थीं जो प्रतिक्रियावादी शक्तियों को मिटाने में असमर्थ रहीं? इस प्रश्न को समझने और उत्तर जानने के लिये वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलन पर एक विहंगम दृष्टि डालनी होगी। भारतीय जनता इस समय दोनों प्रमुख राजनीतिक धाराओं से प्रभावित होती रही थी। उन पर कभी गांधी जी के नेतृत्व का रंग जमता था तो कभी क्रान्तिकारियों का पक्ष प्रबल होता था। राष्ट्रीय कांग्रेस के पूँजीवादी सुधारवादी नेतृत्व द्वारा संचालित ब्रिटिश सरकार विरोधी सुधारवादी आन्दोलन में क्रान्तिकारियों ने सदैव सहयोग प्रदान किया पर सत्य और अहिंसा के नाम पर पूँजीवादी सुधारवादी नेतृत्व आजादी की लड़ाई के संचालन में संलग्न क्रान्तिकारी शक्तियों का गला घोटता रहा। गांधीवाद पूँजीवादी सुधारवाद के रूप में हाथ धोकर क्रान्तिकारी आन्दोलन के पीछे पड़ा हुआ था, हर

प्रकार से वह उसके विकास और प्रगति के मार्ग में बाधायें उपस्थित कर रहा था। क्रान्तिकारी ब्रिटिश सरकार के दमन और गांधीवाद की क्रान्ति-विरोधी नीति और विरोध के दोहरे पाटों के बीच पिट रहे थे। इसके अतिरिक्त, स्टैलिनवादियों के रूप में कानूनी मार्क्सवादियों का भी जन्म हो गया था। मार्क्सवाद के नाम पर वे भी क्रान्तिकारी शक्तियों का तथा क्रान्तिकारी आन्दोलन का सर्वनाश करने में लग गये। ऐसी परिस्थिति में जब विदेशी सरकार घोर दमन कर रही हो और देश के अन्दर संगठित रूप में क्रान्तिकारी आन्दोलन का विरोध होता हो, वैसी अवस्था में क्रान्तिकारी आन्दोलन का निर्बल हो जाना आश्चर्य नहीं है। क्रान्तिकारियों के ही रक्त से सींचित भूमि में उन्हीं का सहारा लेकर सुधारवादी आन्दोलन पनपने लगा था और अमर बेलि की तरह उन्हीं की शक्ति को चूसकर उन्हें निष्प्राण करने की चेष्टा करने लगा। सुधारवादी आन्दोलन तथा नव-जात कानूनी मार्क्सवादी क्रान्तिकारी संगठन तथा आन्दोलन को समाप्त तो नहीं कर सके, पर उसकी शक्ति को क्षीण करने में वे सफल अवश्य हुए। क्रान्तिकारी आन्दोलन और संगठन को निर्बलकर वास्तव में उन्होंने भारतीय राष्ट्र को ही निर्बल किया जिसके परिणामस्वरूप साम्प्रदायिकता के कीटाणु उसके शरीर में प्रवेश कर गये और प्रतिक्रियावादी संहारक शक्तियों के प्रकोप का भारतीय शोषित-पीड़ित जनता सफलतापूर्वक मुकाबला नहीं कर सकी, जो बाद के भारतीय इतिहास ने नग्न रूप में भारतीय श्रमिक-शोषित जनता के सामने रख दिया है। क्रमशः प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ बढ़ती ही गईं।

राष्ट्रीय कांग्रेस की पूँजीवादी सुधारवादी नेतृत्व ने प्रतिक्रियावादी साम्प्रदायिकता के विष-वृक्ष को बढ़ने, फूलने-फलने का पूरा अवसर दिया। परन्तु फिर भी सन् १९३५ ई० के भारतीय विधान के कार्यान्वित होने के पूर्व मुस्लिम आम जनता में इसकी जड़ अभी तक मजबूत नहीं हो पाई थी। यह सन् १९३७ ई० के साम्प्रदायिकता के आधार पर लड़ा हुआ मुस्लिम लीग के चुनाव के परिणाम से साबित होता है।

सन् १९३७ ई० के चुनाव के बाद मुस्लिम लीग का रूप

सन् १९३७ ई० के चुनाव के बाद मुस्लिम लीग के प्रतिक्रियावादी नेतृत्व ने यह भली-भाँति अनुभव कर लिया कि मुस्लिम आम जनता के ऊपर उसका कितना प्रभाव है। इसका अनुमान होते ही आम मुसलमानों को अपने प्रभाव में लाने के लिये इसने जी जान-से कोशिश की। फिर क्या था इस्लाम धर्म के नाम पर विकसित भारतीय राष्ट्र के गला पर प्रतिक्रियावादी साम्प्रदायिकता की कुल्हाड़ी चलाई जाने लगी। अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का अधिवेशन सन् १९३७ ई० के अक्टूबर में लखनऊ में हुआ। इस अधिवेशन का स्वागताध्यक्ष राजा महमूदाबाद थे। उन्होंने स्वागत करते हुए कहा, "हमारे देश में एक नाजुक राजनीतिक परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। बहुसंख्यक सम्प्रदाय मुस्लिम सम्प्रदाय के अस्तित्व को ही इन्कार करता है और राष्ट्र की उन्नति के लिये हमारे नेताओं के साथ सहयोग करने के लिये लेशमात्र भी तैयार नहीं है।"

उसी अधिवेशन के अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए मि०

जिन्ना ने कहा, "मुस्लिम लीग पूर्ण राष्ट्रीय सरकार की स्थापना चाहती है और कांग्रेस विधान तोड़ने वाली अपनी नीति का पालन न कर उल्टे विधान को कार्यान्वित करने की नीति की आलोचना करती है।"

सन् १९३७ ई० में सन् १९३५ ई० के भारतीय विधान के कार्यान्वित करने के सिलसिले के प्रारम्भ होने के बाद मुस्लिम लीग के अन्दर जो परिवर्तन हुआ है, उसे समझने के लिये हमें भारतीय राजनीतिक आन्दोलन की गति-विधि का सूक्ष्म निरीक्षण करना होगा। सन् १९३०-३२ ई० में गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस द्वारा संचालित "सविनय अवज्ञा आन्दोलन" में शामिल हो भारतीय शोषित-पीड़ित जनता ज्योंही उसे क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन में रूपान्तरित करने लगी कि त्यों-ही पूँजीवादी सुधारवादी नेतृत्व बेचैन हो उठा और तुरन्त ही पूँजीवादी सुधारवाद की स्वार्थ-वेदी पर आन्दोलन बलि चढ़ा दिया गया। इसके असफल होने के बाद कांग्रेस आन्दोलन के गर्भ में कांग्रेस विचारधारा में भी परिवर्तन आने लगा।

क्रान्तिकारी समाजवाद का विकास

सन् १९३० ई० से क्रान्तिकारी सङ्गठन तथा आन्दोलन को कुचलने के लिये ब्रिटिश सरकार का दमन-चक्र जोरों से आरम्भ हुआ। फाँसी और गोली से बचने पर, इसका शिकार हो हजारों की संख्या में क्रान्तिकारी नौजवान जेलों के सीकचों के अन्दर सड़ाये जाने लगे थे। वहाँ उन्हें अपने इतिहास पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डालने का अवसर मिला और आलोच-नात्मक दृष्टिकोण से अपने आन्दोलन के इतिहास का

अध्ययन उन्होंने किया। भौतिक परिस्थितियों के आधार पर अपने भूत, वर्तमान तथा भविष्य की नीति का विश्लेषण वे करने लगे। सन् १६२० ई० के उपरान्त भारतीय समाज की भौतिक परिस्थिति में काफी परिवर्तन आ चुका था। अतः उसकी छाप उनके विचारधारा पर अवश्य पड़ने लगी। भारतीय पूँजीवाद स्पष्ट स्वरूप में विकसित हो चुका था। अन्य पूँजीवादी देशों जैसा यह अभी परस्पर-विरोधी पूँजीवादी और श्रमजीवी वर्गों को साथ लेकर अपने विकास और प्रगति-पथ पर अग्रसर होता जा रहा था। यह विकास की ऐसी अवस्था तक पहुँच चुका था कि इसका रूप और प्रकृति भली-भाँति देखी तथा समझी जा सकती थी।

सामाजिक जीवन को प्रभावित करने के अतिरिक्त भारतीय पूँजीवाद के विकास तथा प्रगति ने क्रान्तिकारी आन्दोलन और सङ्गठन की विचारधारा को भी प्रभावित किया। सन् १६३७-३८ ई० तक भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन पूर्णरूप से क्रान्तिकारी समाजवादी विचारधारा से प्लावित हो चुका था, "जो क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी" के रूप में विकसित होने लगी थी। फिर क्या था, समाजवाद का नारा भारतवर्ष के कोने-कोने में गूँजने लगा। शोषित-पीड़ित श्रमिक जनता आशा, हर्ष और विस्मय के साथ क्रान्तिकारी आन्दोलन की प्रगति और विकास को देखने लगी। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप भी बदलने लगा। यह केवल विदेशी सरकार के ही विरुद्ध नहीं रहा, बल्कि शोषक वर्ग विरोध का रूप इसने धारण कर लिया। यह मुख्य कारण था कि गांधीजी ने सन् १६३७ ई० में राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा 'मन्त्रीपद ग्रहण' का

समर्थन करते हुए, एक स्थान पर कहा था कि 'कांग्रेस ने विधान को ध्वंस करने के लिये मन्त्रीपद ग्रहण नहीं किया है, बल्कि क्रान्ति तथा ऐसे जनआन्दोलन से भारत को बचाने के लिये उसने स्वीकार किया है जैसा कि भारतवर्ष में अभी तक नहीं हुआ है। मन्त्रीपद ग्रहण करने के उपरान्त कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता भी 'स्वराज्य प्राप्ति' के लिये वैधानिक उपायों को यथेष्ट समझने लगे।

५

स्लाव जातियों का पानस्लामिज्म का नारा

भारतवर्ष जैसा संसार के और देशों में भी समय-समय पर जातीय समस्या खड़ी हुई थी। १९वीं सदी में मध्य-युरोप में स्लाव जातियों का जातीय प्रश्न उठा हुआ था। मध्य युरोप के विभिन्न भागों की विभिन्न स्लाव जातियाँ एक अपना अलग स्वतन्त्र राष्ट्रीय राज की स्थापना करने का प्रयत्न कर रही थीं। रूस की जारशाही अपने स्वार्थ-सिद्धि के लिये उनके नारे का समर्थन कर रही थी। रूस की जारशाही की स्वार्थ-सिद्धि के लिये एक साधन हो रहा था। इस तरह बोहिनियाँ और क्रोशिया (Crotia) की स्लाव जातियाँ सभी स्लाव जातियों का अलग स्वतन्त्र संयुक्त राज का नारा दे रही थीं। यह "पानस्लामिज्म" के नाम से इतिहास में विख्यात है। इस नारे को देने वाले तथा समर्थन करने वाले कुछ जानकार तथा कुछ अनजान में रूस के प्रत्यक्ष हितसाधन में संलग्न थे। उन्होंने राष्ट्रीयता की कल्पित छाया के पीछे पड़कर क्रान्ति के साथ विश्वासघात किया।

जर्मनी का विभाजन और कार्ल मार्क्स

कार्ल मार्क्स और एंगिल्स के राजनीतिक जीवन के प्रारम्भ के कुछ वर्षों के बाद जर्मनी-विभाजन का आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। मार्क्स और एंगिल्स ने इसे क्रान्तिकारी शक्तियों के लिये घातक समझा और कम्युनिस्ट लीग की ओर से एक माँग उपस्थित की। इस पर इन दोनों के अतिरिक्त अन्य लोगों के भी हस्ताक्षर थे। इस माँग को घोषणा-पत्र के रूप में जर्मन जनता के सामने उन्होंने रखा। इसमें उन्होंने जर्मन-विभाजन का विरोध किया था और श्रमिक-शोषित जनता की पार्टी की इस सम्बन्ध में नीति निर्धारित की। घोषणा के आरम्भ में ही यह कहा गया कि "सम्पूर्ण जर्मनी एक और अविभाज्य प्रजातन्त्र घोषित किया जायेगा।"

सन् १८५२ ई० में कम्युनिस्ट लीग की केन्द्रीय कमेटी को सम्बोधन करते हुए मार्क्स ने कहा था कि···डेमोक्रैट लोग, या प्रजातन्त्रीय-संघ शासन के लिये प्रयत्न करेंगे या एक तथा अविभाज्य प्रजातन्त्र की स्थापना को विफल करने में असफल होने पर चालू केन्द्रीय शासन सत्ता को निर्बल करने के लिये प्रान्तों तथा लोक-सभाओं को स्वतन्त्र स्वायत्त शासन का अधिकार प्रदान करने की माँग उपस्थित करेंगे। इस अवसर पर जर्मनी की श्रमिक जनता को इस योजना के विरोध में केवल एक और अविभाज्य जर्मन प्रजातन्त्र की स्थापना के लिये ही नहीं, बल्कि सरकार के हाथों में सम्पूर्ण शक्तियों का पूर्ण रूप से केन्द्रीयकरण के लिये भी प्रयत्न करना होगा। उन्हें डेमोक्रैट लोगों की लोक-सभाओं एवं प्रान्तों तथा स्थानीय समुदायों की स्वतन्त्रता की माँग से अपने को भुलावे में डालना

नहीं चाहिये। जर्मनी ऐसे देश में जहाँ सामन्तवाद के अवशेष को नष्ट करना बाकी है, वहाँ प्रान्तीयता एवं स्थानीयता की भिन्नता समाप्त कर देनी चाहिये। यह असहनीय है कि हर एक नगर, गाँव, प्रान्त क्रान्ति की गति का अवरोध करें। क्रान्ति का विकास केवल एक केन्द्रीय स्थान से ही हो सकता है। यह कभी भी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता कि वर्तमान अवस्था पुनः स्थापित की जाय तथा प्रान्त, नगर और गाँवों में एक प्रकार की उन्नति के लिये अलग-अलग लड़ाई की जाय।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का पाकिस्तान को माँग का समर्थन

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कार्ल मार्क्स किसी भी देश की श्रमिक-शोषित पीड़ित जनता के विभाजन के कट्टर विरोधी थे। परन्तु भारतीय कानूनी मार्क्सवादी (स्टैलीनवादी) मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग का समर्थन करके भारतीय श्रमिक-शोषित जनता के साम्प्रदायिकता के आधार पर विभाजन में सहायक हुए। उनका इतिहास स्पष्ट कर देता है कि वे ऐसा करके क्रान्तिकारी मार्क्सवादी विचार-पथ से च्युत होकर शोषित जनता को भूल-भूलइया में डाल रहे हैं और अपने कुकृत्यों से मार्क्सवाद तथा लेनिनवाद को उन्होंने बदनाम कर दिया। एक ओर भारतीय शोषित जनता का सन् १९४२ ई० की अगस्त क्रान्ति से विकसित संयुक्त क्रान्तिकारी मोर्चा दृढ़ हो रहा था और दूसरी ओर इस मोर्चे को भंग करने के लिये प्रतिक्रियावादी शक्तियों के साथ गुट बनाकर ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार प्रयत्न कर रही थी।

मुस्लिम लोग काफी सहायक हो रही थी। भारतीय स्टैलिनवादी ब्रिटिश साम्राज्यवाद की साम्राज्यवादी युद्ध में हर प्रकार की सहायता करने में व्यस्त थे। पूर्ण सहायता प्रदान करने के लिये यह आवश्यक था कि हिन्दू और मुस्लिम पूँजीपतियों के बीच समझौता हो। अतः इस समझौता को सफल बनाने के हेतु मुस्लिम पूँजीपतियों की पाकिस्तान की प्रतिक्रियावादी माँग का समर्थन भारतीय स्टैलिनवादी करने लगे। साथ ही साथ ब्रिटिश साम्राज्यवाद की रक्षा की दृष्टिकोण से भारतीय शोषित-पीड़ित जनता को क्रान्ति-पथ से दूर रखने का भी प्रयत्न उन्होंने किया वे समाजवादी जामा पहनकर इसका समर्थन खुले आम करने लगे। इतना ही नहीं, बल्कि लेनिन के राष्ट्रों के आत्म निर्णय के क्रान्तिकारी सिद्धान्त को ढाल के रूप में आगे रखकर अपनी क्रान्ति-विरोधी तथा अवसरवादी नीति का समर्थन वे करने लगे। इस प्रकार ये भारतीय शोषित-पीड़ित जनता की क्रान्तिकारी शक्ति को निर्बल करके टुकड़ों-टुकड़ों में कर उन्हें प्रतिक्रियावादी शक्तियों का आहार बना रहे थे। यही था इनकी श्रमजीवी वर्ग के साथ सहानुभूति और बलिहारी थी इनके साहस को जो कि अपनी लज्जापूर्ण नीति का ढिंढोरा पीटते हुये भी शर्म नहीं आती थी। इतना ही नहीं, आश्चर्य तो होता है—नास्तिकों के मुख से श्री राम नाम का जप सुनकर, सदैव समाजवाद के नाम से कुड़कुड़ाने वाले श्री राजगोपालाचार्य भी आज पंचम स्वर से लेनिन के 'राष्ट्रों के आत्म-निर्णय' के अधिकार के सिद्धान्त की बाँग देने लगे थे। और 'सोते भारत' को 'जगा' रहे थे। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि हम पाठकों के सामने लेनिन के "राष्ट्रों के आत्म निर्णय के

अधिकार" के सिद्धान्त को, जिस पर इतनी तू-तू मैं-मैं हो रही थी स्पष्टरूप से रक्खें। सुधारवादियों तथा स्टैलिनवादी कानूनी मार्क्सवादियों के चिल्ल-पों से अनभिज्ञ समाज यह समझने लगा था कि "राष्ट्रों के आत्म-निर्णय के अधिकार का सिद्धान्त, इन पाखंडियों को एक आधार मिल गया था। अतः हम उनके पाखण्डपूर्ण एवं मिथ्या-प्रचार की पोल खोलकर यह स्पष्ट कर दें कि 'राष्ट्रों के आत्म निर्णय के अधिकार' का वास्तविक रूप क्या है तथा किस सामाजिक समस्या का हल है और किस प्रकार से उसे भारत में लागू करके गधे की फूहड़ और भद्दी शक्ल को छिपाने के लिए शेर की खाल ओढ़ी गई है। लेनिन के "राष्ट्रों के आत्म निर्णय के अधिकार" का सिद्धान्त, जिसकी ओट सभी सुधारवादी तथा कथित साम्यवादी ले रहे थे। सन् १९१२ ई० में यह लेनिन के निरीक्षण में स्टैलिन के द्वारा तैयार किया गया था। उसमें उपरोक्त सिद्धान्त की व्याख्या इस प्रकार की गई है :—

राष्ट्रों के आत्म निर्णय का अधिकार क्या है ?

"राष्ट्रों के आत्म निर्णय के अधिकार का अर्थ यह है कि स्वतः राष्ट्र को ही स्वभाग्य निर्णय का अधिकार प्राप्त है। आज किसी को बलपूर्वक किसी राष्ट्र के जीवन में हस्तक्षेप करने का, उनके विचारों तथा संस्थाओं को नष्ट करने का, उनकी परम्परा और संस्कृति को भ्रष्ट करने का, उनकी भाषा को दबाने का तथा उनके अधिकारों को काटने-छाटने का अधिकार नहीं प्राप्त है। आत्म-निर्णय का अधिकार यह है कि राष्ट्र-विशेष को अपनी इच्छानुसार अपना जीवन निश्चित करने का अधिकार है। यह अपना जीवन स्वायत्त-शासन के

आधार पर निश्चित कर सकता है तथा उसे 'अन्य राष्ट्रों के साथ संघ सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार है। उसे पूर्णतया सम्बन्ध विच्छेद करने का भी अधिकार है। सभी राष्ट्र समान तथा अपने स्वतंत्र राज्य सत्ता के अधिकारी हैं।

"किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सोशल डेमोक्रैट लोग किसी राष्ट्र की हरएक माँग का समर्थन करेंगे। एक राष्ट्र को प्राचीन सामाजिक व्यवस्था को पुनः स्थापित करने का अधिकार है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सोशल डेमोक्रैट्स किसी के उक्त निर्णय में सहयोग करेंगे।

"राष्ट्रों के आत्म निर्णय के अधिकार के लिये लड़ने में सोशल डेमोक्रैट लोगों का ध्येय केवल यह है कि वे राष्ट्रों के द्वारा राष्ट्रों पर प्रभुत्व स्थापित करने की नीति का अन्त कर दो राष्ट्रों के बीच की शत्रुता और द्वेष असम्भव बनाने के लिये इसके आधार को ही नष्ट कर दें। शत्रुता और विद्वेष की तीखी धार को कुंठित करके यथासम्भव कम कर दें।

ऊपर के उद्धरण यह संकेत करते हैं कि रूस के जार के शासन के अन्तर्गत कई राष्ट्र थे। यह बिल्कुल सत्य है कि उस समय रूसी जार के साम्राज्य के अन्तर्गत बहुत से राष्ट्र सम्मिलित कर लिये गये थे, जो भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से पृथक् राष्ट्र थे। इनको बलात् महान् रूस का अंग बनना पड़ा था। जिससे मुक्ति पाने के लिये वे सदैव चेष्टा करते थे और महान् रूस को शोषक और शासक के रूप में देखते थे। रूस इन्हीं विभिन्न राष्ट्रों की विशाल काया था जिसके सभी अंग पृथकत्व और स्वतन्त्र सत्ता का ज्ञान रखने के कारण अपने को उसका अभिन्न अंग नहीं मानते थे।

मुगल शासन युग में भारतीय राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता का उदय

यह ठीक है कि भारतवर्ष में पूँजीवाद का स्वाभाविक उदय तथा विकास न होने के कारण भारतीय राष्ट्र अन्य पूँजीवादी देशों के राष्ट्र के जैसा स्वाभाविक ढंग से पूर्ण राष्ट्रीयता के साथ पूर्ण राष्ट्र में विकसित नहीं हो सका। फिर भी भारतीय पूँजीवाद के विकास तथा प्रगति के साथ भारतीय राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता भी क्रमशः विकसित होने लगी थी। भारतवर्ष एक विशाल देश रहा। इसके इस विशाल काया के सभी अंग अपना पृथक् स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रखते रहे। इसका कोई भी अंग स्वतन्त्र पृथक् राष्ट्र के रूप में विकसित नहीं हुआ। इसकी तो विशाल संयुक्त काया रही। इनमें शासक एवं शोषित का सम्बन्ध नहीं है। यहाँ रूसी परिस्थिति का सर्वथा अभाव रहा। यहाँ यदि शोषक एवं शोषित तथा शासक एवं शासित का प्रश्न उठता रहा, तो इसका भारतीय राष्ट्र के अंग विशेष से कोई सम्बन्ध नहीं रहा, बल्कि विकसित भारत राष्ट्र और ब्रिटिश राष्ट्र के सम्बन्ध को स्पष्ट करता था। भारतीय राष्ट्र अभी तक सर्वाङ्गपूर्ण राष्ट्र का रूप धारण नहीं कर सका था, अभी तक वह विकास की प्रक्रिया में ही था। दिन प्रति दिन इसका रूप स्पष्टतर होता जाता था। राष्ट्रों की उत्पत्ति विकासोन्मुख समाज पूँजीवाद के युग में पदार्पण करते ही राष्ट्र के स्वरूप का दर्शन करता है, पूँजीवाद अपनी प्रगति एवं उन्नति के साथ राष्ट्रीयता को भी दृढ़ और संगठित बनाता जाता है। अतः भारतीय समाज ने मुगल शासन काल में जब संसार में सर्वप्रथम पूँजीवाद को गर्भ में धारण किया था, उसी समय भारतीय राष्ट्रीयता भी अंकुरित हुई थी। भारतीय पूँजीवाद की भ्रूण अवस्था

में ही अंग्रेजों के आगमन द्वारा हत्या कर दी गई थी। अतः भारतीय राष्ट्र उस समय तक सर्वाङ्गपूर्ण न हो सका, फिर भी उसने एक राष्ट्र का ढाँचा धारण कर लिया था। सांस्कृतिक, मौलिक, ऐतिहासिक एकता किसी भूखण्ड को राष्ट्र का आकार प्रदान करने लगती है। यह आकार मुगल शासक अकबर के युग में भारतीय समाज ग्रहण कर रहा था। इस आधार पर भारत को एक राष्ट्र सिद्ध करते हुए सर यदुनाथ सरकार सन् १९४२ ई० के नवम्बर के "माडर्न रिव्यु" में लिखते हैं कि "ऐतिहासिक एकता अच्छी तरह से समाज में लोगों द्वारा एक ही प्रकार की शासन-प्रणाली में कार्य करने तथा उसकी सफलताओं एवं असफलताओं में भाग लेने के लिए स्थापित होती है क्योंकि यह उनके संयुक्त प्रयत्नों का परिणाम होता है। ऐसी शासन सम्बन्धी एकता भारत के विभिन्न भागों को मुगल शाहन्शाहों द्वारा दी गई थी। जिनके उपहार (प्रसाद) ये हैं:—(१) साम्राज्य के सभी भागों तथा प्रान्तों में एक प्रकार की शासन व्यवस्था, (२) एक सरकारी भाषा, (३) एक प्रकार के सिक्के तथा समान तौल के बाँट, (४) अखिल भारतीय उच्च सरकारी नौकरियों के लिये कुशल व्यक्तियों का समुदाय जो तीसरे-चौथे साल एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को बदले जाते थे, (५) बड़ी-बड़ी सेनाओं का एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को समय-समय पर जाना तथा प्रान्तों के विभिन्न नगरों में राजधानी से निरीक्षकों की नियुक्ति।"

इस प्रकार की शासन सम्बन्धी एकता भारत के लगभग तीन-चौथाई प्रान्तों में थी। इससे विभिन्न प्रान्तों के बीच

व्यापार तथा यात्रियों के लिये काफी प्रोत्साहन मिला। दिल्ली के शाही दरबार ने सम्पूर्ण भारत में सांस्कृतिक तथा कला सम्बन्धी संयोग स्थापित करने की चेष्टा की। समाज के उच्च श्रेणी के लोग सरकारी पदाधिकारियों के समान आपस का पत्र व्यवहार फारसी में करते थे और साधारण लोगों को आम बोल-चाल के लिये एक नयी भाषा "जबाने हिन्दवी" जिसे हिन्दुस्तानी या उर्दू कहते हैं, जो राष्ट्र-भाषा के रूप में विकसित हो रही थी। कालान्तर में यही भाषा फारसी का स्थानान्तरित करके उत्तर भारत का प्रमुख सांस्कृतिक एवं सरकारी भाषा बन गई।

इस प्रकार से सारे भारत में ऐतिहासिक एकता स्थापित हो रही थी। अब हमें सांस्कृतिक एकता पर विचार करना है। जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध है, उर्दू भाषा साधारण बोल-चाल और राष्ट्रीय-भाषा के रूप में क्रमशः विकसित हो रही थी। विभिन्न धर्मों के बीच समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की जा रही थी। उस युग में बहुत से सन्त लोग मुख्यतः हिन्दू और मुस्लिम धर्म के बीच सामन्जस्य ढूँढ़ रहे थे, और वे जोर-शोर से अपने मत का प्रचार कर रहे थे, उनके अनुयायियों की संख्या भी क्रमशः बढ़ती जा रही थी। धार्मिक एकता स्थापित करने का आन्दोलन सूफी लोगों के द्वारा अकबर के पहले से ही चल रहा था। कबीर, नानक और चैतन्यदेव आदि इस प्रकार के ही धर्म की स्थापना के लिये उद्योग कर रहे थे। इन लोगों के प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ कि दोनों धर्मों के लोग इनके पन्थों को अपनाने लगे। इस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक एकता स्थापित करने में इन सन्तों की

भारी देन है। भारतवर्ष सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक आधार पर संयुक्त हो रहा था और एक राष्ट्र होने की सुदृढ़ नींव डाल चुका था। परन्तु कुकाल चक्र ने इसे ठीक समय पर सर्वाङ्गपूर्ण राष्ट्र बन जाने में बाधा उपस्थित की जिसकी क्रिया आज भी जारी है।

रूस का क्रान्तिकारी आन्दोलन और आत्म निर्णय के अधिकार का सिद्धान्त

हम ऊपर देख चुके हैं कि "राष्ट्रों के आत्म निर्णय का अधिकार" क्या है। कौन सी विशेष भौतिक परिस्थितियाँ इसे भारत में लागू करने का कहाँ तक समर्थन करती हैं, इसे भलीभाँति जानने के लिये हमें रूस की तत्कालीन सामाजिक तथा राजनैतिक अवस्था और वहाँ के क्रान्तिकारी आन्दोलन पर एक दृष्टि डालनी होगी। बिना उन परिस्थितियों का अध्ययन किये हम मन्त्रवत इसे भारतवर्ष में लागू करने का प्रयत्न करके भारी भूल करेंगे।

पहले हमें वहाँ के क्रान्तिकारी आन्दोलन को समझने का प्रयत्न करना चाहिये। रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन के रूप को समझने के पूर्व रूसी राष्ट्र के स्वरूप को समझना नितान्त आवश्यक है। जैसा कि पहले हम कह चुके हैं, कि राष्ट्र को चिर, सत्य और सनातन मानना भ्रान्तिपूर्ण है। इसके विपरीत यह परिवर्तनशील समाज के युग विशेष की एक विकसित परिवर्तित अवस्था है। पूँजीवाद के साथ इसका भी उदय तथा विकास होता है। पच्छिमी युरोप के सभी राष्ट्र, इंगलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, इटली आदि इस पूँजीवादी युग की ही उपज

हैं। किन्तु पूर्वी युरोप में वास्तविकता कुछ और है। पूँजीवाद का उदय पूर्वी युरोप के मुल्कों में पीछे आकर हुआ है। जिससे इन मुल्कों में राष्ट्र तथा राष्ट्रीय राज का रूप पच्छिमी युरोप में भिन्न रहा है और ये इंगलैण्ड, फ्रान्स, इटली जैसा विकसित न हो सके। इन देशों में बहुजातिक राज्यों की स्थापना हुई, जिनमें बहुत से राष्ट्र सम्मिलित थे। आस्ट्रिया और रूस में इसी प्रकार के राज्यों की स्थापना हुई थी। रूस में ग्रेट रसियन (महान् रूसी) विभिन्न राष्ट्रों को एक में मिलाने के लिये अगुआ बने, जिसका नेतृत्व प्रधानतः सैनिक नौकरशाही के हाथ में था, जा जार के अधीन थी।

राज के निर्माण का यह विचित्र उपाय उन्हीं स्थानों में लाया गया, जहाँ सामन्त समाज अभी तक जीवित था और पूँजावादी समाज स्वतंत्र रूप से विकसित नहीं हो रहा था, और जहाँ पीछे ढकेले हुए राष्ट्र अभी तक सर्वाङ्गपूर्ण अखण्ड राष्ट्र का रूप धारण नहीं कर सके थे। किन्तु पिछड़े हुए राष्ट्र भ अधिक समय तक एक ही अवस्था में नहीं रह सकते; अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये उन्हें भी उन्नतिशील राष्ट्रों की समता प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील होना पड़ता है। उन्नतिशील राष्ट्रों की विकसित अवस्था उन पर भी अपना प्रभाव डालती है और उनके विकास की पथ-प्रदर्शिका बनती है। यह समाज के विकास का ऐतिहासिक नियम है। इस नियम के अनुसार पूर्वी युरोप के राष्ट्रों में पूँजीवाद का विकास होने लगा, इसके साथ ही साथ व्यापार और यातायात के साधन भी विकसित होने लगे। और इसके कारण बड़े-बड़े शहरों का उदय होने लगा। अतः आर्थिक आधार पर राष्ट्र

क्रमशः संगठित होने लगे।

पूँजीवाद ने पिछड़े हुए राष्ट्रों के जीवन में स्फूर्ति और चेतना उत्पन्न कर दी। वे अपनी उन्नति के लिये व्यग्र और क्रियाशील हो उठे। इसके फलस्वरूप छापाखाने, समाचार-पत्र आदि की स्थापना तथा विस्तार द्रुतगति से होने लगा। राष्ट्रों में जीवन की लहर आई। साहित्य में उनके देश के गौरव की गीत गुंजित हुई। बुद्धिजीवी-वर्ग राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत हो उठा। यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि पूँजीवाद के विकास काल में बुद्धिजीवी राष्ट्रीय विचार के अग्रदूत होते हैं। पूँजीवाद के आविर्भाव के साथ गुलाम राष्ट्रों की राष्ट्रीयता की भावना जागती है और वे अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने के लिये प्रयत्नशील होते हैं, परन्तु ज्योंही उनकी क्रियायें स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये होने लगती हैं, उसी समय शासक राष्ट्र की तरफ से इनका घोर विरोध किया जाता है, सम्पूर्ण शक्ति लगाकर उनको कुचलने का प्रयत्न किया जाता है। राज-सत्ता जाग्रति को नष्ट करने के लिये तथा स्वतंत्रता के आन्दोलन को कुचलने को एड़ी-चोटी का पसीना एक कर देती है। इसी प्रकार आस्ट्रिया ने जेक (Zecks) और रूस ने पोलैण्ड, लेटन लिथुआनियाँ, यूक्रेन, जार्जिया को दबा रखा था, जो अपने को पृथक् राष्ट्र समझकर अपनी स्वतंत्रता के लिये जार के विरुद्ध लड़ रहे थे। बुद्धिजीवी वर्ग में राष्ट्रीय जाग्रति सबसे अधिक थी। अतः वही इस लड़ाई का नेतृत्व कर रहा था।

स्वतंत्रता की लड़ाई में नव-जात पूँजीवादी वर्ग भी सहयोग दे रहा था, क्योंकि संसार के सीमित बाजार में अल्प वयस्क

होने के कारण वह प्रौढ़ पूँजीवाद के सामने टिक न सकने के कारण अपने घर के बाजार को सुरक्षित चाहता है। उसे अपने अस्तित्व के लिये विदेशी पूँजीपतियों का अपने बाजार में घुसना खतरनाक मालूम पड़ता है। अतः संसार के बाजार में अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये राष्ट्रीयता का गीत गाता है और राष्ट्रभक्त बनकर स्वतंत्रता की लड़ाई में सहयोग देता है। किन्तु यह संघर्ष केवल आर्थिक क्षेत्र तक ही नहीं रहता, इसका निपटारा राजनीतिक मैदान में होता है। गुलामों की स्वतंत्रता की प्रवृत्ति के उभड़ने ही अर्ध्य सामन्त तथा अर्ध्य पूँजीवादी नौकरशाही दमन प्रारम्भ करती है और हर प्रकार से उनकी जाग्रति एवं भावना को नष्ट करने का प्रयत्न करता है। पूँजीपति और बुद्धिजीवी वर्ग उन्नति-पथ में राजनीतिक परतंत्रता को बाधक समझकर तुरन्त उसे हटा फेंकने के लिये कटिबद्ध हो जाते हैं। आजादी के आन्दोलन पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है, मातृभाषा दबाई जाती है, स्कूल-कालेजों पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं, जिससे आजादी की भावना कभी भी अंकुरित न हो सके। स्वतंत्रता आन्दोलन को रोकने के लिये जारशाही पोलैण्ड में अपने हथकंडे दिखला रही थी, वहाँ की भाषा पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था, स्कूल के लड़कों को पोलिश भाषा बोलने का अधिकार नहीं था। स्कूलों के बाहर भी यह प्रतिबन्ध रहता था। अतः पूँजीवादी पितृभूमि का नारा बुलन्द करके और अपने स्वार्थ को राष्ट्र-हित के साथ संयुक्त करके साधारण जनता को अपने झंडे के नीचे आजादी के नाम पर संगठित करने लगे थे। पीड़ित-शोषित जनता दमन तथा जुल्म की चक्की में पीसी जाने

के कारण शासन-सत्ता के विरुद्ध थी और तुरन्त पूँजीपतियों के साथ विद्रोह में शामिल हो गई। इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन का आविर्भाव हुआ और सभी जगह—पौलैण्ड; जार्जिया आदि—में ऐसा ही राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि महान् रूस (Great Russia) स्वतः ऐतिहासिक तथा भौगोलिक एकता के आधार पर निर्मित एक प्राकृतिक राष्ट्र नहीं था। बल्कि यह विभिन्न देशों, जो स्वतः पृथक् राष्ट्र की परिभाषा के अनुसार स्वतन्त्र राष्ट्र थे, को मिलाकर एक विशाल राष्ट्र बना हुआ था, जिसके गर्भस्थ राष्ट्र अपनी पृथकता के लिये निरन्तर संघर्ष कर रहे थे। जब तक इन राष्ट्रों में चेतना और जाग्रति नहीं आई थी, तब तक उन्होंने मौत को स्वीकार किया था, परन्तु जैसे ही इनमें उन्नतिशील राष्ट्रों के अनुगामी बनने की इच्छा जाग्रति हुई, वैसे ही इन्होंने अपनी-अपनी स्वतन्त्रता का नारा बुलन्द किया और अपने राष्ट्र को रूस का एक अंग बनाकर स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान करने की चेष्टा करने लगे।

इन्हीं कारणों से रूस के अधीनस्थ प्रान्तों में पोलैण्ड, आर्मिनिया तथा जार्जिया आदि में राष्ट्रीय आन्दोलन का आविर्भाव हुआ। "राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के अधिकार" सिद्धांत की पृष्ठिभूमि रूस की उपरोक्त सामाजिक एवं राजनीतिक अवस्था थी।

लेनिन को इन्हीं भौतिक परिस्थितियों के अन्दर शोषित-श्रमिक जनता की आजादी की लड़ाई को सबल एवं सफल बनाने के लिये उपरोक्त सिद्धान्त स्वीकार करना पड़ा था। देश

की शोषित-शासित जनता राष्ट्रीयता की छाया में पड़कर अपनी वास्तविक लड़ाई—शोषण-मुक्ति-के पथ से च्युत हो रही थी। राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति के साथ-साथ सर्वहारा वर्ग, शोषित-शासित श्रमिक जनता भी तेजी के साथ विभाजित हो रही थी। उनकी क्रान्तिकारी शक्ति संगठित होने के बजाय छिन्न-भिन्न हो रही थी; शासक राष्ट्र के दमन के कारण उनकी राष्ट्रीयता का रूप और भी उग्रतर तथा भयानक हो रहा था। शासक राष्ट्र के प्रति उनकी कटुता एवं घृणा दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी और शासक देश के निवासियों को वह सन्देह की दृष्टि से देखते थे। इस घृणा और अविश्वास का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अपना क्षेत्र अत्यन्त संकुचित कर दिया और व्यापक क्रान्तिकारी सिद्धांतों के स्थान पर उनके संगठन का आधार संकुचित, संकीर्ण जातीयता एवं धर्म बनने लगा। अलग-अलग होकर उन्होंने अपनी डफली और अपना राग छेड़ा, पोलैण्ड में राष्ट्रीयता के स्थान पर शोविनिज्म (Chovinism) यहूदियों में जीविनिज्म तथा तातार जातियों में संकीर्ण राष्ट्रीयता जड़ पकड़ने लगी। आर्मेनिया, जार्जिया तथा यूक्रेन सभी अलग-अलग होने के लिये अपना बन्धन तुड़ा रहे थे। इन झाड़-झंखाड़ों के उग आने के कारण स्वतन्त्रता-वृक्ष कमजोर पड़ने लगा। बन्द (Bund), जो पहले प्रजातन्त्र की स्थापना के उद्देश्य से सहमत होकर सोशल डेमाक्रेटिक पार्टी में सम्मिलित हो गये थे, ने सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और धर्म के नाम पर मजदूरों का अलग संगठन करने लगे। अपने इस कृत्य से वे जनता को क्रान्ति-पथ से दूर रखने लगे। ड्यूमा निर्वाचन में भी उन्होंने चुनाव के लिये धार्मिक नारों का ही

रूप लिया।

इन्हीं विकट परिस्थितियों, जो क्रान्ति के लिये घातक सिद्ध हो रही थीं, को हल करने के लिये लेनिन की सम्मति से स्टालिन ने निम्नांकित सुझाव सन् १९१३ ई० में सोशल डेमोक्रैट लोगों के सामने उपस्थित किया :—"इस कठिन घड़ी में सोशल डेमोक्रैटिक पार्टी के कन्धों पर गुरुतर कार्य का भार आ पड़ा है, यह है राष्ट्रीयता के विरुद्ध साम्प्रदायिकता के संघर्ष के इस व्यापक संक्रामक रोग से राष्ट्रीयता की रक्षा करना; क्यों कि केवल सोशल डेमोक्रैट लोग ही इस काम को करने के योग्य हैं। अत: उन्हें राष्ट्रीयता के विरुद्ध प्रमाणित तथा विश्वसनीय अस्त्र अन्तर्राष्ट्रीयता तथा वर्ग-संघर्ष की एकता एवं अखंडता को इसके सम्मुख लाना चाहिये। ज्यों-ज्यों राष्ट्रीयता की धारा का वेग प्रबल होता जाता है त्यों-त्यों उतने ही उच्च स्वर से सोशल डेमोक्रैट लोगों को रूस के सभी राष्ट्रों के सर्वहारा वर्ग के बीच एकता और बन्धुत्व के नारे को देना पड़ा।" उपरोक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए स्टालिन एक स्थान पर लिखते हैं, "तूफानी और झंझट-पूर्ण समय हमारे सामने उपस्थित है, इसीसे हमारे वर्तमान तथा भविष्य की लड़ाई जिसका ध्येय पूर्ण प्रजातंत्र स्थापित करना है, की उत्पत्ति और वृद्धि होगी।"

"इसी आन्दोलन के साथ-साथ हमें जातियों तथा राष्ट्रों के प्रश्न को भी सुलझाना होगा। जातियों तथा राष्ट्रों की समस्या केवल पूर्ण प्रजातंत्र की स्थापना के आधार पर सुलझाई जा सकती है।"

भारतवर्ष में साम्प्रदायिक राष्ट्र और अल्पसंख्यक जातियों का प्रश्न

ज्योंही भारतीय राष्ट्रीय आजादी का आन्दोलन उग्रतर तथा भयानक रूप अपनाते ही बन्द कर दिया गया और सुधारवादी रचनात्मक तथा वैधानिक कार्यक्रम का रूप इसने ग्रहण किया, त्योंही साम्प्रदायिक समस्या पेचीदा तथा भयानक रूप में प्रकट होती रही है। भारतीय पूँजीवाद के विकास तथा प्रगति के साथ साथ भारतीय पूँजीवादी वर्ग का आन्तरिक संघर्ष भी तीव्रतर होता गया। इसकी तीव्रता यहाँ तक बढ़ी कि पूँजीवादी वर्ग की दुष्कामना की सिद्धि के लिये साम्प्रदायिक आधार पर भारत-विभाजन की माँग की जाने लगी और अन्त में भारतवर्ष साम्प्रदायिक आधार पर हिन्दुस्तान में और पाकिस्तान में विभाजित हो गया। वास्तव में भारतीय शोषित-श्रमिक जनता विभाजित की गई है, जो श्रमिक-शोषित पीड़ित जनता की मुक्ति की लड़ाई—समाजवादी क्रान्ति—के लिये घातक है। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के साम्प्रदायिकता के आधार पर कायम हो जाने के उपरान्त आज हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में सब के सामने यह प्रश्न मुख्य है कि किस प्रकार हिन्दुस्तान में पाकिस्तान और पाकिस्तान हिन्दुस्तान को मिला लिया जाये। इसका भी प्रधान आधार साम्प्रदायिकता ही है, जो श्रमिक-शोषित जनता की मुक्ति की लड़ाई के विकास तथा प्रगति के मार्ग में बाधक है। ऐसे समय में क्रान्तिकारी समाजवादियों का यह कर्तव्य होता है कि वे जनशक्ति को प्रतिक्रियावादी साम्प्रदायिकता के हाथों में पड़कर नष्ट होने से बचायें और उसे संगठितकर समाजवादी क्रान्ति में परिवर्तित करें।

यह प्रश्न उठना भी स्वाभाविक है कि इसे किस प्रकार कार्यान्वित किया जाये ? इस प्रश्न का हल भी निकालना बाकी है। इसके लिये हमें इधर-उधर भटकना नहीं है। इस प्रकार की समस्याएँ बहुधा क्रान्तिकारी समाजवादी लेनिन के सामने उपस्थित होती थीं। उनकी रूसी भौतिक पृष्टिभूमि का विश्लेषण करके हम उन्हें अच्छी तरह समझकर भारतीय समाज की समस्या का हल सहज ही में निकाल सकेंगे और व्यर्थ की माथा-पच्ची तथा गलत उपायों के अवलम्बन से उत्पन्न भयानक कुपरिणामों से बच जायेंगे।

इसके पूर्व कि हम उनके हल की खोज करें हमें अपने प्रश्न को भली भाँति समझ लेना चाहिये। हमारा प्रश्न वास्तव में महान रूस में राष्ट्रों का प्रश्न जैसा नहीं है, बल्कि प्रतिक्रियावादी साम्प्रदायिक आधार पर भारतवर्ष के अस्वाभाविक विभाजन से निर्मित साम्प्रदायिक राष्ट्रों का और विभाजन से उत्पन्न अल्पसंख्यक जातियों का प्रश्न है। लेनिन ने राष्ट्रों के आत्म-निर्णय के अधिकार के सिद्धांत को स्वीकार करके विभिन्न राष्ट्रों की समस्या को सुलझा दिया था और जार के विरुद्ध लड़ाई में उन्हें संगठित करने में सफल हुआ था। परन्तु इतने ही से सब कठिनाइयों का निपटारा नहीं हो गया, अब भी अलग-अलग राष्ट्रों में विभिन्न जातीय-सम्प्रदाय थे, जो अपने धर्म तथा संस्कृति के आधार पर स्वतंत्र राष्ट्र बनाने का आन्दोलन कर रहे थे। पोलैण्ड में यहूदी, यूक्रेन में पोलिश, लिथुआनियाँ में लटावियन और काकेश में रूसियों ने इस प्रकार का बखेड़ा खड़ा कर दिया था, कोई भी प्रदेश एक-जातिक राष्ट्र नहीं था। राष्ट्रीयता के साथ इन अल्पसंख्यक जातियों का प्रश्न भी पेचीदा

होता जा रहा था। बिखरी हुई ये जातियाँ अपने को एक अलग राष्ट्र में संगठित करने का प्रयास कर रही थीं। परन्तु अल्प-संख्यक जातियों के अलग राष्ट्र की स्थापना के लिये आम जनता उतनी उत्सुक एवं व्यग्र नहीं थी, जितना स्वार्थी पूँजीवादी वर्ग था, क्योंकि साधारण जनता अपने निवास प्रदेशों में पूर्ण नागरिक अधिकार चाहती थी। उनके असंतोष का कारण यह था कि उनकी अपनी भाषा को प्रयोगकर स्कूल आदि खोलने के विचार-स्वातन्त्र्य आदि अधिकारों का जारशाही हुकूमत द्वारा अपहरण कर लिया गया था। इन प्रश्नों के हल हो जाने पर जातीय एकता (National Unity) उनके लिये कोई महत्व नहीं रखती थी। वे पृथक् राष्ट्र की स्थापना में अपनी इन्हीं खोई हुई आजादी को प्राप्त करना चाहते थे। अतः उनकी (अल्पसंख्यकों को) समस्या का हल केवल उनके अपने अधिकारों की सुरक्षा का विश्वास दिलाकर ही किया जा सकता है।

इस प्रश्न पर स्टालिन लिखते हैं "......... अतः ऐसा भय किया जा सकता है कि बहु-संख्यक जातियाँ, अल्पसंख्यक जातियों को दबायेंगी। किन्तु ऐसे भय का कारण तभी तक उपस्थित रहेगा, जब तक उसमें पुरानी व्यवस्था प्रचलित है। देश विशेष में पूर्ण प्रजातंत्र की स्थापना कर देखो, ऐसे कारण स्वयं आप से आप नष्ट हो जायँगे।" ठीक यह अवस्था सन् १९४७ ई० के १५ अगस्त के पूर्व भारतवर्ष की थी। कुछ अंश तक यह दशा पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में है। हिन्दुस्तान में अल्पसंख्यक मुसलमानों को इस बात का भय होता है कि बहुसंख्यक जाति के आगे उनको दबना पड़ेगा और पाकिस्तान

के भी अल्पसंख्यक जातियों को भी इससे कहीं ज्यादा भय हो रहा है। इन सब का प्रधान कारण है भारतवर्ष का साम्प्रदायिक आधार पर पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में विभाजन। इनके अतिरिक्त हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का प्रश्न पेचीदा तथा विकट होता जा रहा है। अगर समझौता न हुआ होता और जनक्रान्ति के द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार का ध्वंस होता और इसके अवशेष पर भारतीय स्वतंत्रता और पूर्ण प्रजातंत्र की स्थापना होती, तो आज ये सब प्रश्न भारत समाज के सिर में चक्कर नहीं पैदा करते। राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास यह बतलाता है कि जब-जब राष्ट्रीय आन्दोलन ने प्रत्यक्ष संघर्ष का उग्र रूप धारण किया, तब-तब किसी प्रकार के साम्प्रदायिक दंगे नहीं हुए और उसके विपरीत जब आन्दोलन को रोक दिया गया और सुधारवादी रचनात्मक कार्यक्रम और वैधानिक संघर्ष के द्वारा "स्वराज्य" की प्राप्ति का प्रयत्न होते, तब-तब साम्प्रदायिक दंगे जोर पकड़ने लगे।

रूस की अल्पसंख्यक जातियों के आन्दोलन के विषय में पुनः एक स्थान पर स्टालिन लिखते हैं, "बिखरी हुई अल्प-संख्यक जातियों को एक राष्ट्रीय सूत्र में बाँधना इस आंदोलन का मुख्य ध्येय है। किन्तु अल्पसंख्यक जातियों को जिस वस्तु की चाह है, वह कृत्रिम राष्ट्रीय एकता नहीं है, प्रत्युत जिन प्रदेशों में वे बसे हुये हैं, वहाँ उन्हें वास्तविक अधिकारों की प्राप्ति है। ये राष्ट्रीय संगठन पूर्ण प्रजातंत्र की स्थापना के बिना उन्हें क्या दे सकते हैं? और जब उन्हें पूर्ण प्रजातंत्र की प्राप्ति हो जाती है, तो फिर अलग राष्ट्रीय संघ की क्या आवश्यकता है।" ठीक यही अवस्था भारतवर्ष के विभाजन के पूर्व पाकिस्तान-

की माँग की थी। यह मुस्लिम शोषित-श्रमिक जनता की माँग नहीं थी। वह पाकिस्तान के रूप में नकली जातीय एकता नहीं चाहती थी, जो आज भारत के विभाजन के उपरान्त हिन्दुस्तान के मुसलमानों की अवस्था से स्पष्ट हो जाता है, बल्कि पूर्ण नागरिक अधिकार चाहती थी। अपनी रहन-सहन, धार्मिक आचरणों के किसी प्रकार के हस्तक्षेप के विरुद्ध आश्वासन चाहती थी। यह तभी सम्भव होता, जब भारत में पूर्ण प्रजातंत्र की स्थापना हो जाती। पाकिस्तान की माँग उन्हें भुलावे में डाले हुई थी। पाकिस्तान कायम होने तक और उसके बाद का इतिहास स्पष्ट कर देता है कि पाकिस्तान की स्थापना ने अल्प-संख्यक जातीय प्रश्न को हल नहीं किया और न कर सकती है।

अल्प-संख्यकों की समस्या को सुलझाने के सम्बन्ध में स्टालिन एक स्थान पर लिखते हैं, "हम देख चुके हैं कि जातीय सांस्कृतिक आधार पर जातीय-सांस्कृतिक स्वतंत्रता अनुचित है।"

"प्रथम, यह कृत्रिम और असाध्य है, क्योंकि यह कृत्रिम उपायों से उन जातियों में एकता स्थापित करना चाहती है, जिनको (इन) घटनाओं (इतिहास) की रीति ने देश के कोने-कोने में टुकड़े करके बिखेर दिया है।"

"दूसरे, यह राष्ट्रीयता को उभाड़ती है, क्योंकि यह उन विचारों की ओर झुकाव रखती है जो जनता का विभाजन राष्ट्रीय प्रजातंत्र के अनुसार चाहते हैं और जातियों का संगठन जातीय विशेषताओं की 'सुरक्षा' और 'वृद्धि' के अनुसार चाहते हैं जो समाजवादी प्रजातंत्र के सर्वथा विपरीत है।"

"इस प्रकार से जातीय सांस्कृतिक आधार पर जातियों की

'स्वतंत्रता' भी इस समस्या को हल नहीं कर सकती।"

भारतवर्ष की मौजूदा साम्प्रदायिक अवस्था

लेनिन के अनुसार "जातीय सांस्कृतिक" आधार पर जातियों की स्वतंत्रता "अल्प-संख्यकों की समस्या का ठीक हल न था, क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार जातियों में एकता स्थापितकर राष्ट्र रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया जा रहा था, जिन्हें ऐतिहासिक घटना-क्रम ने सारे देश को अलग-अलग बिखेर दिया था। यह उपाय बिल्कुल अप्राकृतिक, असाध्य एवं कृत्रिम था। ठीक इसी प्रकार भारत में भी दो राष्ट्र-सिद्धांत उठाया गया और इसके आधार पर पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में साम्प्रदायिक आधार पर भारतवर्ष विभाजित कर दिया गया। पाकिस्तान की स्थापना का उद्देश्य रहा भारतीय मुसलमानों को एक राष्ट्र रूप देकर विभिन्न मुस्लिम राज्यों में संगठित करना और इस्लामी राष्ट्रीय राज्य की स्थापना था। यह ऐतिहासिक सत्य के प्रतिकूल था। ऐतिहासिक घटना-क्रम ने भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में बिखरी हुई मुस्लिम जातियों को अन्य भारतीय जातियों के साथ घुलमिलकर भारतीय राष्ट्र की नींव तैयार की थी। भारतीय मुसलमान विकसित राष्ट्र के अविच्छेद अंग के रूप में विकसित हो रहे थे। अलग इस्लामी राष्ट्र और राष्ट्रीय राज्य पाकिस्तान के रूप में ऐतिहासिक सत्य के विपरीत है।

तथापि वास्तविकता से आँखें नहीं मूँदी जा सकतीं कि भारतीय मुस्लिम सम्प्रदाय बहुसंख्यक सम्प्रदाय को, किसी भी कारण से हो, सन्देह तथा अविश्वास की दृष्टि से अवश्य

देखने लगा तथा साम्प्रदायिक कटुता दिन प्रतिदिन बढ़ती गई, जिसका कारण ऊपर हम उल्लेख कर चुके हैं, जो राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के साथ ही साथ बड़ी वेग से गृह-युद्ध में रूपान्तरित हो गई। इस विषमता की जिम्मेदारी केवल ब्रिटिश सरकार और मुस्लिम लीग का प्रतिक्रियावादी नेतृत्व नहीं है, बल्कि राष्ट्रीय कांग्रेस का सुधारवादी, पूँजीवादी, क्रान्ति-विरोधी नेतृत्व भी सबसे ज्यादा है। यह राष्ट्रीय कांग्रेस की पूँजीवादी सुधारवादी नीति का ही कुपरिणाम था कि दिन प्रतिदिन साम्प्रदायिक मनोमालिन्य बढ़ता गया जिसे अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये मुस्लिम पूँजीपति बढ़ते गये और इस्लाम के आड़ में धर्म-भीरु मुस्लिम जनता को पाकिस्तान के रूप में अलगकर मनमाना उनका शोषण करने की चेष्टा की जा रही है। हिन्दू पूँजीपतियों के साथ पूँजीवादी होड़ में मुस्लिम पूँजीपति अपने को निर्बल पाता था और अपने विकास के लिये अवसर नहीं पाता था। अब अलग मुस्लिम राष्ट्र और इस्लामी राष्ट्रीय राज स्थापित हो जाने के बाद मुस्लिम पूँजीपतियों के लिये शोषित-श्रमिक जनता का मनमाना शोषण करने का और अपने को पूर्ण विकसित करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हो गया है। अपने विकास तथा प्रगति के लिये भारत के मौजूदा विभाजन का कायम रखना यह आवश्यक समझता है। भारत विभाजन के उपरान्त भी मुस्लिम जनता को फिरका-परस्ती पिलाई जा रही है।

भारतीय समाज के सामने महत्वपूर्ण समस्या

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में साम्प्रदायिक आधार पर

भारतवर्ष के विभाजन के उपरान्त भी अल्प-संख्यक सम्प्रदाय समस्या हल नहीं हो सकी, बल्कि साम्प्रदायिकता के आधार पर स्थापित पाकिस्तान राज्य और हिन्दुस्तान राज्य में यह और भी पेचीदी तथा जटिली हो गई है। इन राज्यों में पहले से कहीं ज्यादा भयावह साम्प्रदायिक परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तान और पाकिस्तान राज्य के स्वाभाविक आपसी सम्बन्ध के कारण सामाजिक जीवन में साम्प्रदायिक वैमनस्य और भी बढ़ता जा रहा है। हिन्दुस्तान में हिन्दू सम्प्रदाय के अधिकांश लोगों के दिमाग में यह बात भरी हुई है कि हिन्दू सम्प्रदाय एक पूर्ण स्वतंत्र राष्ट्र है और पूर्ण भारतवर्ष हिन्दू राष्ट्र का है। इस पर केवल इसी को राज्य करने का अधिकार है। यह प्राचीन काल से सर्वदा अखण्ड रहा और रहेगा। अतः तलवार के बल से पाकिस्तान के अस्तित्व को खत्मकर अखण्ड भारतवर्ष स्थापित करना है। उधर पाकिस्तान के मुस्लिम सम्प्रदाय में यह साम्प्रदायिक भावना जोर से काम कर रही है कि मुसलमानों ने सदियों तक हिन्दुस्तान पर हुकूमत करते रहे थे और उनसे ही अंग्रेजों ने राज्य छीना था। इसलिये अंग्रेजी हुकूमत के खत्म होने के बाद मुस्लिम राज्य कायम करना उनका हक है। अतः पाकिस्तान हिन्दुस्तान पर हमला करके पूर्ण भारतवर्ष पर इस्लामी राज्य की स्थापना मुस्लिम जाति का फर्ज है। आज भारतीय सामाजिक जीवन को अल्पसंख्यक-सम्प्रदाय-समस्या ही केवल दूषित नहीं कर रही है, बल्कि इसके अतिरिक्त अप्राकृतिक दो राष्ट्रों के आपसी सम्बन्ध का प्रश्न भी सामाजिक जीवन के विकास और प्रगति के मार्ग में रोड़ा बन गया है। आज पूर्ण

भारतीय समाज के सामने यह सबसे महत्वपूर्ण सवाल है कि किस प्रकार अल्पसंख्यक सम्प्रदायों और अप्राकृतिक राष्ट्रों के सवालों को हल करके सामाजिक जीवन के विकास तथा प्रगति के पथ के रोड़े को दूर करे, जिससे भारतीय समाज अपने सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को सफलतापूर्वक हल करके मानवता की ओर अग्रसर हो सके। इसके लिये यह आवश्यक हो जाता है कि अल्पसंख्यक-सम्प्रदाय-समस्याओं के हल करने के किये गये प्रयत्नों के इतिहास के ऊपर हम एक आलोचनात्मक दृष्टि डालें और इन सब प्रश्नों का वैज्ञानिक हल विकसित करें।

६

हिन्दू-मुस्लिम समझौते के प्रयत्न

हम देख चुके हैं कि भारतीय जनता की बगावत की प्रवृत्ति को सुधारवादी मार्ग में ले जाने के हेतु राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना सन् १८८५ ई० में की गई थी। परन्तु इससे भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के दृढ़ होने का खतरा था, जो ब्रिटिश सरकार के लिये घातक होता। अतः सन् १८८६ ई० में अलीगढ़ मुस्लिम कालेज के प्रिन्सपल मि० बेक के द्वारा दो राष्ट्र—हिन्दू और मुस्लिम पृथक् राष्ट्र हैं—के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया और मुस्लिम-पठित-भृत्य वर्ग के दिमाग में क्रमशः दो राष्ट्र के सिद्धान्त का इंजेक्सन वह देने लगा। आगे चलकर भारतीय आम जनता की एकता को भंग करने के हेतु सन् १९०६ ई० में प्रतिक्रियावादी नेतृत्व में मुस्लिम लीग की स्थापना की गई।

प्रथम साम्राज्यवादी युद्ध-काल में भारतीय पूँजीवाद का आविर्भाव स्पष्टतः स्वतन्त्र रूप में हो रहा था, पूँजीवादी वर्ग के अतिरिक्त भारतीय मध्यम वर्ग ने साम्राज्यवादी युद्ध-काल को आर्थिक उन्नति के लिये पर्याप्त प्रयोग और भारतीय पूँजी के

विकसित होने में काफी सहायता दी। युद्ध के उपरान्त प्राप्त राजनीतिक सुधार को अपने आर्थिक तथा सामाजिक विकास एवं उन्नति के लिये प्रयोग करने के हेतु हिन्दू-मुस्लिम पूँजीवादी तथा मध्यम वर्ग के बीच सन् १९१६ ई० में समझौता हुआ जो "लखनऊ पैक्ट" के नाम से विख्यात है। इस पैक्ट के द्वारा राष्ट्रीय कांग्रेस के सुधारवादी मध्यम वर्गीय नेतृत्व ने भारतवर्ष के सामाजिक जीवन में दो राष्ट्र के सिद्धान्त, जिसे मि० बेक ने सन् १८८९ ई० में बीजारोपण किया था, स्थापित कर दिया। इसके अनुसार "पृथक् निर्वाचन का सिद्धान्त" कार्यान्वित करने के लिये स्वीकार किया। बाद का इतिहास यह बतलाता है कि "लखनऊ पैक्ट" ने अल्पसंख्यक साम्प्रदायिक प्रश्नों को हल नहीं किया बल्कि इसे और भी कठिन तथा पेचीदा बना दिया।

जब सन् १९२५ ई० के बाद संसार-व्यापी आर्थिक संकट विकसित होने लगा, संसार के पूँजीवाद के लिये खतरा पैदा होने लगा। भारतीय समाज इससे अछूता नहीं रहा, यहाँ के भी पूँजीवाद तथा पूँजीवादी वर्ग का अस्तित्व डावाँडोल होने लगा। भारतीय जन-शक्ति के दबाव से ब्रिटिश सरकार कुछ राजनीतिक सुधार देने से बाध्य हुई। परन्तु, भारतीय तथा ब्रिटिश पूँजीवादी वर्ग सर्वदा इस बात की कोशिश करते रहे कि किसी भी तरह राजनीतिक सुधार क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिये प्रयोग न हो सके। अत: ब्रिटिश सरकार तथा भारतीय पूँजीवादी वर्ग का संयुक्त प्रयत्न हिन्दू-मुस्लिम एकता के नाम से हिन्दू-मुस्लिम पूँजीपतियों के बीच मेल कायम करने के लिये हुआ। विलायत में दो-तीन "गोलमेज परिषद्" बैठा। जब

किसी प्रकार हिन्दू-मुस्लिम पूँजीपतियों के बीच समझौते के लिये संयुक्त निर्णय पर यह "गोलमेज परिषद" नहीं पहुँच सका, तब ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार की ओर से ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री मैकडानल्ड ने "साम्राज्यवादी साम्प्रदायिक बँटवारा" की घोषणा की जिसने बजाय अल्पसंख्यक सम्प्रदाय-समस्या को हल करने के और भी उलझा दिया। इसके बाद भी भारतवर्ष के अन्दर सम्प्रदाय-समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया गया। श्री मदनमोहन मालवीय के द्वारा प्रयाग में हिन्दू-मुस्लिम एकता-सम्मेलन बुलाया गया। लेकिन ब्रिटिश सरकार की चालों के कारण यह भी असफल ही रहा।

इसके बाद जब सन् १९३४ ई० में राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष श्री राजेन्द्र प्रसाद हुए, एक बार फिर इसे हल करने का प्रयत्न किया गया। स्वयं राजेन्द्र बाबू मुस्लिम लीग के सभापति जिन्ना साहब से बातें की। यहाँ भी असफलता ही हुई। सन् १९३८ ई० में राष्ट्रीय कांग्रेस के सभापति नेता जी सुभाषचन्द्र बोस हुए, तब भी इन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के सवाल को हल करने का प्रयत्न किया। जिन्ना से काफी बातें इनसे हुईं। ज्ञात होता था कि सम्भवतः यह समस्या सुलझ जायेगी। लेकिन अन्त में इनका भी प्रयत्न व्यर्थ साबित हुआ। इन सब प्रयत्नों को देखते हुए यह स्वभावतः प्रश्न उठता है कि एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा प्रयत्न साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने का हुआ लेकिन सबों की एक ही गति क्यों हुई ? यह जान पड़ता है कि इन सब प्रयत्नों के भीतर एक ही प्रकार की मौलिक भूल होगी। इन प्रयत्नों के इतिहास का विश्लेषण करने से यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि ये सब प्रयत्न हिन्दू-

मुस्लिम आम जनता के बीच आजादी की लड़ाई के आधार पर एकता का प्रयत्न नहीं था बल्कि हिन्दू-मुस्लिम पूँजीपति और मध्यम वर्ग के बीच आम जनता को क्रान्तिकारी पथ पर अग्रसर होने से रोकने के लिये एकता का प्रयत्न था और किस प्रकार राजनीतिक सुधार को ब्रिटिश सरकार के साथ मिल-कर भारतीय पूँजीवादी वर्ग क्रान्ति की वेग की गति को थाम सकेगा। अतः इसी मौलिक भूल के कारण सभी प्रयत्न असफल रहे।

सन् १६३६ ई० के सितम्बर के प्रथम सप्ताह में दूसरा संसार-व्यापी साम्राज्यवादी युद्ध प्रारम्भ हुआ। युद्ध के प्रारम्भ होते ही भारतवर्ष की भी परिस्थिति एकदम बदल गई। भारतीय शोषित-श्रमिक जनता युद्ध-काल को अपनी आजादी हासिल करने का सुअवसर समझने लगी और बड़ी ही तेजी के साथ क्रान्तिकारी परिस्थिति विकसित होने लगी। उधर भारतीय पूँजीवादी वर्ग भी अपने विकास तथा उन्नति के लिये साम्राज्य-वादी युद्ध-काल को अच्छी तरह प्रयोग करना चाहता था। यह तभी सम्भव था कि किसी प्रकार के युद्ध-काल में भारत-वर्ष में अशान्ति न फैलने पाये। साथ ही साथ भारतीय पूँजीवाद के विकास के लिये राजनीतिक सुधार प्राप्त करना भी आवश्यक समझता था। यह तभी सम्भव हो सकता था जब हिन्दू-मुस्लिम पूँजीपतियों के बीच समझौता हो जाता और वे एक ही उक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयास करते। यहाँ पर हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि भारतीय पूँजीवाद के विकास तथा प्रगति के साथ-साथ भारतीय पूँजीवादी वर्ग का आन्तरिक संघर्ष भी तीव्र हो उठा था, जिसके कारण इनके बीच एकता

कायम नहीं हो सकी।

साम्राज्यवादी युद्ध की प्रगति के साथ युद्ध-परिस्थिति में परिवर्तन होता जा रहा था। मित्र-राष्ट्रों की हालत दिन प्रतिदिन खराब होती जा रही थी। धुरी राष्ट्र हर आक्रमण-क्षेत्र में विजयी होते जा रहे थे। यह ज्ञात होता था कि धुरी राष्ट्र के पक्ष में युद्ध का निर्णय होगा। युद्ध की ऐसी परिस्थिति में जापान भी युद्ध में कूद पड़ा। प्रारम्भ में ही अमेरिका के उपनिवेशों पर आक्रमणकर उसने अपने कब्जे में कर लिया। प्रत्येक युद्ध-क्षेत्र में उसने अमेरिका और ब्रिटेन को परास्त किया। भारतवर्ष की सीमा तक युद्ध पहुँच गया था। ब्रिटिश सरकार बेचैन हो उठी। केवल सैनिक शक्ति से आक्रमणकारियों का मुकाबिला नहीं किया जा सकता था, जबकि सारे देश में बगावत की प्रवृत्ति प्रबल हो उठी थी। अतः ब्रिटिश सरकार के लिये यह आवश्यक हो गया कि भारतीय पूँजीवादी वर्ग तथा राष्ट्रीय सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व का युद्ध के संचालन में सहयोग प्राप्त करे। इसके लिये यह भी आवश्यक था हिन्दू और मुस्लिम पूँजीपतियों के बीच किस प्रकार का मेल कायम किया जाय। इन उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु सन् १९४२ ई० के मार्च महीने में ब्रिटिश मन्त्रि-मंडल की ओर से एक प्रस्ताव लेकर सर स्टैफोर्ड क्रिप्स भारत पधारे। ब्रिटिश युद्ध परिषद ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। इस प्रस्ताव के प्रारम्भ में कहा गया था कि "सम्राट् की सरकार ने इस मुल्क तथा भारत में भविष्य की भारत सम्बन्धी की गई प्रतिज्ञाओं को पूरा करने के पक्ष में प्रकट की गई तमाम उत्सुकताओं पर विचार करके यह निर्णय किया है कि उन तमाम तरीकों को स्पष्ट शब्दों में कर

दे, जो, जहाँ तक सम्भव है, भारत को शीघ्रातिशीघ्र स्वायत्त-शासन प्रदान करने के लिये अमल में लाये जायेंगे। इस प्रस्ताव का मुख्य उद्देश्य एकनवीन भारत संघ (New Indian Union) की स्थापना करना है, जो अन्य उपनिवेशों की भाँति समान रूप से सम्राट् के प्रति उत्तरदायित्व रखते हुए, एक उपनिवेश होगा, किन्तु यह हर मानी में अन्य उपनिवेशों के समान रहेगा और किसी भी तरह अपने आंतरिक, घरेलू प्रबन्धों में परतंत्र नहीं रहेगा।"

इस प्रस्ताव में साम्प्रदायिक समस्या को भी सुलझाने के लिये इस प्रकार रखा गया था कि "यदि ब्रिटिश भारत का कोई प्रान्त अपनी वर्तमान वैधानिक अवस्था को बनाये रखने के लिये नवीन विधान को ही नहीं स्वीकार करता है, यदि यह निर्णय करे, तो उसे अलग होने का अधिकार होगा।

"इस प्रकार के अलग होने वाले प्रान्तों के साथ, यदि वे ऐसी इच्छा करें, सम्राट् की सरकार नया वैधानिक समझौता करने के लिये तैयार है, जिसके अनुसार इन प्रान्तों को भारतीय संघ के सभी अधिकार पूर्णरूपेण प्राप्त होंगे और यह वैधानिक स्थान उन उपायों का अवलम्बन करके प्राप्त किया जा सकता है, जो यहाँ पर अंकित उपायों के समान होंगे।"

लेकिन यह प्रस्ताव भी असफल रहा। किसी भी प्रकार साम्प्रदायिक समस्याओं को यह नहीं सुलझा सका। बल्कि इसने और भी उलझा दिया। सर स्टैफर्ड क्रिप्स विफल होकर इंगलैण्ड वापस चले गये। सन् १९४२ ई० के मई महीने में राष्ट्रीय कांग्रेस के अखिल भारतीय कमेटी की बैठक दिल्ली में हुई। इस

बैठक में श्री जगत नारायण लाल ने निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किया जो बहुमत से स्वीकृत हुआ:—"अखिल भारतीय कांग्रेस का यह दृढ़ मत है कि भारत के किसी अंगभूत राज्य अथवा प्रादेशिक इकाई को भारतीय संघ या फेडरेशन से सम्बन्ध-विच्छेद करने की स्वतंत्रता देना विभिन्न राज्यों, प्रान्तों तथा सम्पूर्ण देश की जनता के हित के लिये परम घातक होगा। अतः कांग्रेस ऐसे किसी भी प्रोग्राम पर सहमत नहीं हो सकती है।"

राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति से बाध्य होकर राष्ट्रीय सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व ने 'भारत छोड़ो का प्रस्ताव' सन् १९४२ ई० के ८ अगस्त को पास किया। उसके उपरान्त कांग्रेस के नेताओं के जेलों में बन्द हो जाने से स्वतंत्र हो भारतीय जनता ने स्वतः विख्यात अगस्त क्रान्ति को संगठित और संचालित किया। सन् १९४४ ई० के मई में गांधी जी जेल से बाहर आये। युद्ध की परिस्थिति में परिवर्तन हुआ। युद्ध के प्रत्येक आक्रमण-क्षेत्र में धुरी राष्ट्र पीछे हटने लगे। उनकी हार पर हार होने लगी। अब यह स्पष्ट ज्ञात होने लगा कि मित्र राष्ट्रों की विजय निश्चय होगी। इसके अतिरिक्त सन् १९४५ ई० की अगस्त क्रांति से भारतीय शोषित जनता के विकसित क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चे से ब्रिटिश साम्राज्यशाही के अलावे भारतीय पूँजीवादी वर्ग का भी अस्तित्व खतरा में पड़ा हुआ ज्ञात होने लगा। भारतीय पूँजीवादी वर्ग ब्रिटिश साम्राज्यवादी-पूँजीवादी वर्ग के साथ समझौता के लिये बेचैन हो उठा। लेकिन ब्रिटिश पूँजीवादी वर्ग के साथ समझौता तभी सम्भव हो सकेगा जब कि हिन्दू-मुस्लिम पूँजीपतियों के बीच किसी प्रकार का

समझौता हो। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये श्री राजगोपालाचार्य ने 'हिन्दू-मुस्लिम समझौते के लिये एक मसविदा (formula) तैयार किया, जो "सी० आर० फारमूला" के नाम से विख्यात हो गया है। इसमें पाकिस्तान का समर्थन किया गया। साम्प्रदायिक आधार पर भारत के विभाजन का भी समर्थन किया गया। यह फारमूला इस प्रकार का है :—

'भारतीय राष्ट्रीय तथा अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के बीच समझौते की शर्तें जिसमें गांधी जी तथा मि० जिन्ना सह-मत हों, कांग्रेस और लीग को स्वीकार कराने का यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे।

(१) "समझौते की शर्तों के अनुसार जहाँ तक स्वतंत्र भारत के विधान का सम्बन्ध है, मुस्लिम लीग भारतीयों की स्वतंत्रता की माँग को अंगीकार करती है। और परिवर्तन काल में अस्थायी सरकार की स्थापना में कांग्रेस के साथ सहयोग देगी।

(२) "युद्ध की समाप्ति पर उत्तरी, पश्चिमी तथा पूर्वी भारत के बहुसंख्यक तथा निकटवर्ती मुस्लिम जिलों की सीमा को निर्धारित करने के लिये एक कमीशन की नियुक्ति की जायगी। इन सीमित क्षेत्रों में भारत से पृथक् होने के प्रश्न के अंतिम निर्णय के लिये बालिग मताधिकार या मत प्राप्त करने की अन्य किसी सम्भव उपाय का अवलम्बन करके सारे निवासियों का मत संग्रह किया जायगा। यदि बहुमत भारत से पृथक् स्वतंत्र सब अधिकार सुरक्षित राज्य की स्थापना का समर्थन करेगा, तो इस निर्णय को तुरन्त अमल में लाया जायगा।

(३) "जनता के मत संग्रह के पूर्व सभी दलों के लोगों को जनता के बीच अपने विचारों के प्रचार की पूर्ण स्वतंत्रता रहेगी।

(४) "पृथक् होने के अवसर पर रक्षा, व्यापार, यातायात तथा अन्य महत्वपूर्ण विषयों पर एक आपसी समझौता होगा।

(५) "जनता का एक स्थान से दूसरे स्थान जाना उसकी स्वतंत्र इच्छा पर निर्भर रहेगा।

(६) "उपरोक्त शर्तों का बन्धन उसी दशा में होगा जब कि ब्रिटेन भारत सरकार को पूर्ण अधिकार एवं जिम्मेदारी सौंप देगा।"

स्टैलिनवादियों ने तहदिल से इसका समर्थन किया था। भारत के अन्य सुधारवादियों के साथ इन्होंने भारतीय स्वतंत्रता के लिये साम्प्रदायिक एकता को अत्यावश्यक सिद्ध करने की चेष्टा की और सी० आर० फार्मूला को उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये आवश्यक प्रमाणित करने का प्रयत्न किया। यदि हम स्वयं इस फार्मूला के रचयिता महोदय के तर्कों तथा फार्मूला का भी सूक्ष्म विश्लेषण करें तो हमें यह बात स्पष्ट रूप से दिखाई देगी कि इसके द्वारा किसी प्रकार से पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये जनक्रांति की आयोजना नहीं की जा रही थी, बल्कि वास्तविकता इसके विपरीत थी। उनके तर्कों के विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये जनक्रांति को वे (स्टैलिनवादी) आवश्यक नहीं समझते और उनके दिमाग में यह बात घर कर गई है कि बिना किसी प्रकार की लड़ाई के श्रमिक-शोषित जनता शोषण तथा गुलामी से मुक्त हो जायेगी। अतः इस फार्मूला की व्याख्या स्वतंत्रता की लड़ाई के पक्ष में करना उनके (स्टैलिनवादियों के) लिये स्वाभाविक था और

साथ ही साथ यह केवल आत्म प्रवञ्चना ही नहीं बल्कि शोषित श्रमिक जनता को गुमराह करने के भी वे अपराधी थे। स्टैलिनवादी जानबूझकर भारतीय श्रमिक जनता को गुमराह करने की धृष्टता कर रहे थे।

अब हम उक्त फार्मूला के अंग-प्रत्यंग का विश्लेषण करके देखें कि उनमें क्या रहस्य छिपा हुआ है। इस फार्मूला के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि "जहाँ तक भारत की स्वतंत्रता के विधान का प्रश्न है, मुस्लिम लीग भारतवासियों को स्वतंत्रता की माँग को अंगीकार करती है और परिवर्तन काल में अस्थायी सरकार की स्थापना में कांग्रेस के साथ सहयोग करेगी।" इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि मुस्लिम लीग से केवल भारतवर्ष को स्वतंत्रता की माँग का समर्थन और संक्रमण काल में अस्थायी सरकार की स्थापना में सहयोग प्रदान करने का अनुरोध किया गया था। इस फार्मूला के अनुसार आजादी की लड़ाई के समर्थन तथा उसमें सहयोग प्रदान करने के लिये मुस्लिम लीग के सामने कोई प्रश्न नहीं उठता था क्योंकि रचयिता महोदय स्वयं आजादी की लड़ाई को अनावश्यक समझते थे। इस फार्मूला की अन्तिम शर्त से स्पष्ट हो जाता है, जिसमें कहा गया है कि उपरोक्त शर्तों का सम्बन्ध तभी लागू होगा, जब ब्रिटेन भारत सरकार को पूर्ण अधिकार तथा जिम्मेदारी समर्पित कर देगी। इस 'फार्मूला' में यह मान लिया गया था कि ब्रिटिश सरकार स्वयं राज्यसत्ता सौंप देगी। उसके लिये भारतीय जनता को किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना होगा। अतः इसके अनुसार ब्रिटेन से सादर आत्म-राज्य व्यवस्था के संचालन का प्रश्न है, सशस्त्र जनक्रान्ति के

द्वारा राज्यसत्ता हस्तान्तरित करने का प्रश्न नहीं है। इसके (फार्मूला के) पीछे गांधी जी का केवल आशीर्वाद ही नहीं था, बल्कि इसे आधार बनाकर गांधी जी ने मि० जिन्ना के साथ हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने के लिये बातें कीं। यह प्रश्न उठाना स्वाभाविक है कि श्री जगतनारायण जी के प्रस्ताव—जिसे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने बहुमत से स्वीकार किया था—के रहते हुए गांधी जी ने ऐसा क्यों किया ? इसे समझने के लिये हमें बहुत सी घटनाओं को समझना पड़ेगा। उनसे अलगकर इसे ठीक-ठीक समझना सम्भव नहीं है।

यहाँ पर हम यह न भूलें कि राष्ट्र की राष्ट्रीय सुधारवादी नीति का संचालन प्रधानतः राष्ट्रीय कांग्रेस के सुधारवादी नेतृत्व के द्वारा होता रहा है, जिसकी बागडोर गांधी जी के हाथों में सन् १९२० ई० बाद रहता रहा। अर्थात् गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय कांग्रेस संचालित होती रही। कांग्रेस द्वारा संचालित सुधारवादी आन्दोलन के प्रतिबिम्ब गांधी जी सर्वदा रहे। सन् १९४० ई० में रामगढ़ कांग्रेस में गांधी जी भावी राष्ट्रीय आजादी के आन्दोलन का प्रधान सेनानायक बनाये गये और सन् १९४४ ई० में भी थे। राष्ट्रीय कांग्रेस के सर्वश्रेष्ठ स्थान पर होते हुए गांधी जी ने भारत-विभाजन के फार्मूले का स्वागत किया, जिसका स्पष्ट अर्थ था, भारतीय श्रमिक-शोषित-पीड़ित जनता को कई टुकड़ों में बाँटना। विरोध की अग्नि की तेज को बनाये रखने के लिये वर्षों से आजादी के आन्दोलन में प्राणों की आहुति देने तथा सन् १९४२ ई० के भीषण स्वतंत्रता संग्राम में अकथनीय बलिदान के पश्चात् भारतीय श्रमिक-

शोषित-पीड़ित जनता के विकसित क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चे को भंग करने के हेतु यह फार्मूला निर्मित किया गया था। इसे और स्पष्ट रूप से समझने के लिए राष्ट्रीय कांग्रेस के पिछले कुछ वर्षों के इतिहास पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

साम्राज्यवादी युद्ध की सम्भावना और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

सन् १९२५ ई० के उपरान्त संसार-व्यापी आर्थिक संकट विकसित होने लगा था और सन् १९२९ ई० में मानव समाज के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में विशाल रूप में यह खड़ा हो गया था। इसके साथ ही साथ संसार के राजनीतिक आकाश में युद्ध के बादल उड़ते हुये दृष्टिगोचर हो रहे थे। यह आशंका होने लगी थी कि किसी भी क्षण ये घटायें मूसलाधार वृष्टि से सारे संसार को प्लावित कर देंगी। ऐसे समय सभी राजनीतिक सजीव शक्तियाँ अकस्मात् फट पड़ने वाली उस विपत्ति के बादल का सामना करने के लिये तदानुकूल कार्य्यवाही कर रही थीं। राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस भावी साम्राज्यवादी युद्ध में ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार का फँसना अवश्यम्भावी समझकर सन् १९२७ ई० से ही—मद्रास कांग्रेस से ही—हर एक कांग्रेस अधिवेशन में युद्ध-विरोधी प्रस्ताव पास करना प्रारम्भ कर दिया। सन् १९३२ ई० के आन्दोलन के विफल होने के बाद भारत में सन् १९३५ ई० के विधान की घोषणा की गई। कांग्रेस ने अपनी बैठकों तथा अधिवेशनों में इसकी कड़ी आलोचना की और सर्वदा इसे ध्वंस करने की प्रवृत्ति का परिचय दिया। इस विधान के अनुसार सन् १९३७ ई० के प्रारम्भ

में प्रथम चुनाव भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में हुआ। राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से चुनाव घोषणा-पत्र प्रकाशित किया गया। इसमें यह स्पष्टतः कहा गया कि यह विधान भारतवर्ष के लिये घातक है, अतः इसे ध्वंस करने के लिये ही कांग्रेस चुनाव लड़ रही है। अतः सन् १६३५ ई० के भारतीय विधान को ध्वंस करने की नीति के आधार पर राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारतीय जनता से वोट लिया, जिसके परिणामस्वरूप ११ प्रान्तों में से ७ प्रान्तों में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ। विधान को ध्वंस करने की नीति को ताख पर रखकर भारतवर्ष के सात प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रि-मंडल स्थापित किया गया।

सन् १६३७ ई० के जुलाई महीने में ७ प्रान्तों में कांग्रेस की मंत्रिमंडल की स्थापना हुई। जनता के दबाव से फाँसी और गोली से बचे हुए मुद्दतों से जेलों में पड़े हुये क्रान्तिकारी बन्दी जेलों से मुक्त किये गये। हजारों की तादाद में वे जेलों के फाटक से बाहर आये। काकोरी षड्यन्त्र के प्रमुख नेता अमर शहीद सचीन्द्र नाथ सन्याल, साथी योगेशचन्द्र चटर्जी आदि भी बाहर आये। वर्षों तक वे जेलों के सींकचों के अन्दर बन्द रहे। दमन के सुधारवादी पूँजीवादी आन्दोलन के द्वारा भारतीय जनता को उनसे एकदम पृथक् करने का प्रयत्न किया गया था। परन्तु जनता के हृदय में अभी भी उनकी स्मृतियाँ शेष थीं, उनके प्रति चिरकाल संचित स्नेह और सहानुभूति उन्हें देखते ही बड़े वेग से उमड़ पड़ी। अपार जन-सागर उनके दर्शन के लिये उमड़ पड़ा, देशवासियों ने उन पर पुष्प-वृष्टि की, उनके चरणों की रज ली, उनकी प्रशंसा तथा गुणानुवाद करके वह आनन्द-विभोर हो उठी। क्रान्तिकारियों तथा जनता

के इस प्रेम-मिलन से राष्ट्रीय कांग्रेस के सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार दोनों ही सन्न हो गये। ब्रिटिश सरकार ने यह विश्वास कर लिया था कि वर्षों से अहिंसा और शान्ति का पाठ पढ़ाकर राष्ट्रीय कांग्रेस के सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व ने आम जनता को क्रान्ति-पथ से विमुख कर दिया था। राष्ट्रीय सुधारवादी नेतृत्व की भी यही भ्रान्तिपूर्ण धारणा थी, किन्तु इस घटना ने उनकी बुद्धि पर से इस भ्रम का पड़ा पर्दा उठा दिया और वास्तविकता को स्पष्ट कर दिया।

जनता द्वारा क्रान्तिकारियों के स्वागत को देखकर यू० पी० का गवर्नर परेशान हो उठा था और इसे बन्द कराने के लिये उसने यू० पी० प्रान्तीय कांग्रेसी मन्त्रिमंडल पर दबाव डाला। सर्वप्रथम कांग्रेस के बड़े-बड़े नेतागणों ने कांग्रेस-जनों को स्वागत आदि से अलग रखने की चेष्टा की, पर जनता के सामने वे सफल नहीं हो सके। इधर इसे देखकर गांधीजी भी बेचैन हो उठे, क्रान्तिकारियों का जनता द्वारा किया गया यह सम्मान उन्हें असह्य हो गया। तुरन्त ही उन्होंने इस आशय का एक वक्तव्य दिया कि "जनता का क्रान्तिकारियों का ऐसा स्वागत करने का अर्थ होता है, क्रान्तिकारी आन्दोलन का समर्थन करना, जिससे भारत को काफी हानि पहुँची है और देश की स्वतंत्रता की लड़ाई पीछे चली गई है।"

काकोरी षड्यन्त्र केस के प्रमुख बन्दी श्री विष्णुशरण दुबलिश वर्षों तक जेल-जीवन व्यतीत करने के बाद जब अन्य क्रान्तिकारियों के साथ बाहर आये तब यू० पी० प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों ने प्रान्तीय कार्यकारिणी कमेटी का

सदस्य उन्हें चुना। इससे भी यू० पी० गवर्नर के दिमाग में चक्कर आने लगा। उन्होंने स्पष्टत: कांग्रेस नेताओं से कहा कि कांग्रेस की प्रान्तीय कार्यकारिणी कमेटी के क्रान्तिकारी सदस्य होने का अर्थ, क्रान्तिकारियों का कांग्रेस के ऊपर प्रभाव है, जो भारत और ब्रिटेन के लिये घातक होगा। गवर्नर के दबाव डालने पर कांग्रेस के एक बड़े नेता ने भी विष्णुशरणजी से इस्तीफा देने को कहा। परन्तु उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि ऐसा नहीं हो सकता। जिन लोगों ने चुना है, वे ही वापस बुला सकते हैं। फिर कांग्रेसी सदस्यों से कहा गया। उन लोगों ने भी साफ-साफ कह दिया कि विष्णुशरणजी ही सदस्य रहेंगे।

सन् १९३५ ई० के भारतीय विधान को ध्वंस करने के नाम पर कांग्रेस के सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व ने आम जनता से वोट लिया था। भारतीय आम जनता में इसने भारतीय विधान को भारतीय जनता के लिये घातक बताया था और वास्तव में था भी। परन्तु चुनाव के उपरान्त कांग्रेस का सुधारवादी नेतृत्व इसे (विधान को) कार्यान्वित करने लगा। आम जनता अचका गई और सन्न होकर एकटकी लगाकर देखने लगी कि हो क्या रहा है। फिर क्रमश: कांग्रेस-विरोधी भावना पैदा होने लगी। कांग्रेस के सुधारवादी नेतृत्व को ये सन्देह और अविश्वास की दृष्टि से देखने लगे। कांग्रेसी मन्त्रिमंडल की स्थापना के बाद सन् १९३७ ई० में इलाहाबाद में एक आम जलसे में बोलते हुए श्रीपुरुषोत्तमदास टंडन ने श्रीजवाहरलाल नेहरू से यह प्रश्न किया था कि "क्या वे अपने सीने पर हाथ रखकर यह कह सकते हैं कि कांग्रेस, मन्त्रिमंडल बनाकर विधान-

भंग करने के अपने वादे को पूरी कर रही है ?" वहाँ पर श्री-नेहरूजी भी उपस्थित थे। श्रीटंडनजी के यह कहने का स्पष्ट अर्थ यह था कि कांग्रेस विधान को सफल बना रही थी। यह विचार केवल टंडनजी का ही नहीं था, बल्कि आम जनता भी इसी प्रकार समझने लगी थी। इससे परेशान होकर सन् १९३७ ई० में ही गांधीजी ने स्थिति को स्पष्ट करने के लिये एक वक्तव्य दिया, जिसमें उन्होंने कहा था कि 'कांग्रेस के द्वारा मन्त्रि-मंडल ग्रहण का उद्देश्य केवल सशस्त्र-क्रान्ति तथा भारतीय इतिहास में बेजोड़ भावी भयानक जन-आन्दोलन को रोकना है।' यहाँ पर गांधीजी ने परिस्थितियों से बाध्य होकर कांग्रेस की क्रान्ति-विरोधी नीति को जनता के सामने रख दिया था।

राष्ट्रीय कांग्रेस को पूँजीवादी वर्गीय पार्टी बनाने का प्रयास

अभी तक राष्ट्रीय कांग्रेस किसी वर्ग विशेष की संस्था नहीं हो सकी थी। यह किसी वर्ग विशेष के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली शुद्ध अर्थ में एक वर्ग विशेष की पार्टी नहीं हुई थी। इसमें जरा भी सन्देह नहीं था कि पूँजीवादी विचारधारा रखने वालों का ही इसमें बोल-बाला था और इन्हीं लोगों के द्वारा इसकी नीति भारतीय पूँजीवाद के विकास तथा प्रगति की दृष्टिकोण से निर्धारित होती थी। अर्थात् इसका नेतृत्व पूर्णतः सुधारवादी पूँजीवादी रहा। किन्तु साथ ही साथ अब तक यहाँ सभी विचार के लोगों का समावेश था—सभी अपने सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये कांग्रेस का प्रयोग करने का प्रयास कर रहे थे। लेकिन सन् १९३८ ई० में इसका सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व सतर्क हो गया और इसे शुद्ध पूँजीवादी वर्ग की पार्टी का रूप देना चाहा।

इसी ओर कांग्रेस के सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व ने एक कदम और उठाया। हरिपुरा कांग्रेस में रियासत-सम्बन्धी एक प्रस्ताव पास किया, जिसके द्वारा कांग्रेस-जनों को रियासतों में कांग्रेस के नाम पर संगठन करने से मना कर दिया गया। सन् १९३८ ई० के सितम्बर में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक दिल्ली में हुई। सुधारवादी नेतृत्व ने सत्य और अहिंसा को स्वीकार कराने के लिये इसके सामने एक प्रस्ताव पेश किया। इसके विरोध में वामपक्षी सभा भवन को छोड़कर चले गये। इसके बाद गांधीजी ने इस आशय का वक्तव्य दिया कि "कांग्रेस में दो परस्पर-विरोधी विचारधाराओं का रहना सम्भव नहीं है, या तो इसमें वामपक्षी ही रहेंगे या दक्षिण-पक्षी ही।" गांधीजी इस समय इतने ज्यादे आतुर हो उठे कि कांग्रेस के इतिहास का वास्तविक रूप उनकी आँखों से ओझल हो गया। वे इस बात को भूलते हुये दिखाई पड़ रहे थे कि कांग्रेस कभी भी एक विचार वालों की संस्था नहीं रही थी। जब हम यह समझ जायेंगे कि उस समय समाजवादी विचारधारा जोरों के साथ देश भर में फैल रही थी, तो हमें गांधीजी का इस प्रकार आतुर और भयभीत हो जाना अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होगा। राष्ट्रीय कांग्रेस तथा कांग्रेस आन्दोलन के गर्भ से कांग्रेस समाजवाद तथा कांग्रेस समाजवादी पार्टी का जन्म और राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन से क्रान्तिकारी समाजवाद तथा क्रान्तिकारी समाजवादी आन्दोलन विकसित हुआ। समाजवादी विचारधारा दिन दूने रात चौगुने वेग से बढ़ रही थी। यहाँ तक कि हरिपुरा कांग्रेस के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने समाजवादी

सिद्धान्त का समर्थन और प्रचार किया । भारतीय पूँजीवादी वर्ग का सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व के द्वारा राष्ट्रीय कांग्रेस के रूप में एक जन-संगठन के ऊपर प्रभुत्व कायम हो चुका था जिसका प्रभाव भारतीय जनता के ऊपर काफी था, वह इसे समाजवादियों के हाथों में जाने से रोकना चाहता था, इसके लिये इसे एक वर्ग विशेष की पार्टी में परिवर्तित करना चाहता था । गांधीजी का वक्तव्य इन्हीं परिस्थितियों का उपज था। सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व अपने को सुरक्षित रखने के लिये कांग्रेस को सुधारवादियों का एक सुदृढ़ दुर्ग बनाने का प्रयत्न करने लगा ।

त्रिपुरी कांग्रेस और वामपक्षी एकता

सन् १९३९ ई० त्रिपुरी कांग्रेस के लिये अध्यक्ष के चुनाव में अपने प्रतिद्वन्दी श्रीपट्टाभीसीतारमैया को हटाकर सुभाष बाबू बहुमत से पुनः कांग्रेस का अध्यक्ष निर्वाचित हुए । हरिपुरा कांग्रेस के अध्यक्ष के पद से नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने समाजवादी विचारधारा का प्रचार किया था । इससे वे सुधार-वादी पूँजीवादी दक्षिण-पक्षी नेताओं के दिल में खटकने लगे थे । अतः त्रिपुरी कांग्रेस के लिये अध्यक्ष के चुनाव में सुभाष बाबू के विरुद्ध में उन्होंने श्रीपट्टाभीसीतारमैया को सफल बनाने का काफी प्रयत्न किया । किन्तु उन्हें मुँह की खानी पड़ी; राष्ट्र ने पुनः सुभाष बाबू को राष्ट्रपति के पद पर सुशोभित किया । सुभाष बाबू की इस सफलता के रूप में वामपक्षी शक्तियों की विजय से गांधीजी तथा कांग्रेस के अन्य सुधार-वादी नेताओं की छाती पर साँप लोट गया, वे उनकी शक्तिवृद्धि को अपने अस्तित्व के लिये घातक समझने लगे । चुनाव के

परिणाम की घोषणा होते ही गांधी जी ने एक वक्तव्य दिया कि "यह पट्टाभीसीतारमैया की हार नहीं है, बल्कि मेरी हार है।" इसमें सन्देह नहीं कि यह गांधीजी की व्यक्तिगत हार न होते हुए भी वामपक्षियों के मुकाबले में सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व की गहरी हार अवश्य थी। इस वक्तव्य के पश्चात् राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्यकारिणी कमेटी से १५ सदस्यों में से ११ सुधारवादी सदस्यों ने त्याग-पत्र दे दिया। पूँजीवादी सुधारवादी नेतृत्व बदहवाश हो रहा था। यह एक प्रकार से पंगु होकर धराशायी हो गया था और अन्तिम साँस लेने की अवस्था को पहुँच रहा था। परन्तु वह शीघ्र ही होश में आया और तुरन्त अपने अस्तित्व को कायम करने के लिये जी-जान लगाकर प्रयत्न करने लगा। कांग्रेस की एकता के नाम से भारतीय समाजवाद की बेदी पर कांग्रेस समाजवादी पार्टी के द्वारा वामपक्षी एकता की बलि चढ़ाई गई और वामपक्षी आन्दोलन के साथ विश्वासघात कर सुधारवादी समाजवादी नेतृत्व ने मरणासन्न सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व को संजीवनी बूटी दे दी और वह पुनः सबल और सचेत हो उठ बैठा। अतः कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने कांग्रेस के सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व के लिये वामपक्षी किला-बन्दी का काम किया।

राष्ट्रीय कांग्रेस और वामपक्षी आन्दोलन

पुनः खोये हुए प्रभुत्व को सुधारवादी नेतृत्व ने प्राप्त किया। एक प्रकार के नये जीवन का संचय हुआ। पुनः जीवन पाकर भूखे शेर की भाँति यह (राष्ट्रीय कांग्रेस का सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व) खूँख्वार हो उठा और कांग्रेस के अन्दर सदैव के लिये वामपक्षी शक्तियों को समाप्त कर देने के लिये मुँह

फाड़कर वह दौड़ पड़ा। सबसे पहले उसने अध्यक्ष के ऊपर आक्रमण किया और निगल गया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की कलकत्ता की बैठक में लाचार होकर सुभाष बाबू को अध्यक्ष पद से त्याग-पत्र देना पड़ा और उस बैठक में कांग्रेस विधान में परिवर्तन करने के लिये विधान उपसमिति नियुक्त की गई। इस कमेटी की बैठक जून सन् १९३९ ई० में बम्बई में हुई और इसने बहुमत से यह सिफारिश की कि कांग्रेस किसी भी अन्य राजनीतिक पार्टी के सदस्य को 'अपना सदस्य न बनाने का अपने विधान में यह परिवर्तन स्वीकार करे।'

सन् १९३९ ई० के जून के अन्तिम सप्ताह में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई, लेकिन कमेटी की यह सिफारिस वहाँ उपस्थित न कर रामगढ़ कांग्रेस के लिये स्थगित कर दी गई। लेकिन इस बैठक में दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये गये। पहले प्रस्ताव के अनुसार कोई भी कांग्रेस-जन प्रान्तीय कांग्रेस की आज्ञा के बिना किसान और मजदूरों के संघर्ष में भाग नहीं ले सकेगा। दूसरे प्रस्ताव के अनुसार प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के नियन्त्रण से कांग्रेसी मंत्रिमंडल स्वतंत्र है, और कोई भी कांग्रेस-जन मन्त्रिमंडल की आलोचना नहीं कर सकेगा। जनता में इस प्रस्ताव के विरोध का नेतृत्व सुभाष बाबू ने किया, इस पर अनुशासन की कार्यवाही करके उन्हें तीन साल के लिये कांग्रेस से अलग कर दिया गया। त्रिपुरी कांग्रेस होने के कुछ समय पहले बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी से यह सिफारिश की थी कि "छः महीने का अल्टीमेटम देने के पश्चात् ब्रिटिश सरकार के

विरुद्ध आज़ादी की लड़ाई की घोषणा कर दी जाय।" लेकिन राष्ट्रीय कांग्रेस के सुधारवादी नेतृत्व ने इसे ठुकरा दिया।

दूसरे संसारव्यापी साम्राज्यवादी युद्ध का प्रारम्भ और भारतीय पूँजीवादी वर्ग

साम्राज्यवादी पूँजीवादी देशों के बीच का संघर्ष दिन प्रतिदिन तीव्र होता गया और अन्त में सन् १९३९ ई० के सितम्बर महीने के प्रथम सप्ताह के प्रारम्भ में यह संसारव्यापी साम्राज्यवादी युद्ध में परिवर्तित हो गया। जर्मनी ने पोलैण्ड पर आक्रमण किया। तुरन्त इसके ब्रिटिश और फ्रेंच साम्राज्यवादी सरकारों ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की और संसारव्यापी युद्ध का डंका गूँज उठा। ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार के युद्ध में फँसते ही भारतीय श्रमिक-शोषित-पीड़ित जनता में शत्रु की दु:परिस्थिति से लाभ उठाने की आशा जाग उठी। भारतीय पूँजीवादी वर्ग भी युद्ध-परिस्थिति से लाभ उठाने के लिये आतुर हो उठा, परन्तु पूँजीवादी वर्ग और शोषित जनता दोनों के लाभ उठाने के उपायों में आकाश-पाताल का अन्तर था। भारतीय शोषित जनता शत्रु को निर्बल तथा विवश देखकर सदैव के लिये अपनी गुलामी का बन्धन काट फेंकना चाहती थी, अर्थात् वह ब्रिटिश शासन सत्ता को समूल नष्ट कर देना चाहती थी। दूसरी ओर पूँजीपति इस युद्ध-जन्य परिस्थिति से अधिक लाभ उठाना चाहते थे। देशी बाजार विदेशी प्रतिद्वन्दियों से सुरक्षित हो गया था। इस समय वे बिना रोक-टोक एक का तीन बना सकते थे। अपनी पाँचों उँगुलियों को घी में देख वे मौजूदा अवस्था को कायम

रखने के पक्ष में थे। अर्थात् वे चाहते थे कि शोषित जनता इस समय चुपचाप बैठी रहे और ब्रिटिश हुकूमत को किसी प्रकार की आँच न आवे, जिससे शान्तिपूर्वक वे धन पैदा कर सकें। इसके अतिरिक्त, वे यह अवश्य चाहते थे कि भारतीय व्यापार और उद्योग-धन्धों की पूरी उन्नति के लिये ब्रिटिश सरकार कुछ भारतीय विधान में सुधार के रूप में कुछ विशेष सुविधायें प्रदान कर दे। इसके अतिरिक्त, वे किसी प्रकार की अन्य राजनीतिक हलचल को अवांछनीय समझते थे। अपने स्वार्थ-सिद्धि में उन्हें राष्ट्रीय कांग्रेस के सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व का पूर्ण सहयोग प्राप्त था।

यहाँ पर यह उल्लेख करना असंगत नहीं होगा कि भारतीय जनता राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रभाव में थी। वह इसकी (कांग्रेस की) ओर टकटकी लगाये देख रही थी कि उनके सब दुखों को अन्त करने वाली क्रान्ति का संचालन कब राष्ट्रीय कांग्रेस करती है। परन्तु इसके सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व का इष्ट तो अपने प्रिय पूँजीपतियों का ध्यान रखना था और साधारण जनता को भी अपने प्रभाव से बाहर यह जाने देना नहीं चाहता था। अतः उसने नये-नये स्वाँग भरना आरम्भ कर दिया। सन् १९२७ ई० से लगातार अब तक तो कांग्रेस के प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन में यह युद्ध-विरोधी प्रस्ताव पास करता रहा, किन्तु जब सचमुच युद्ध आ धमका और पूँजीपतियों की पौबारह पड़ी, तो उसने एकाएक अपनी नीति परिवर्तित कर दी, युद्ध-विरोधी प्रस्तावों के स्थान पर सरकार से उसके युद्ध उद्देश्यों के स्पष्टीकरण की माँग की और दूसरी तरफ जनता को भुलावे में डाल रखने के लिये तथा क्रान्ति से दूर रखने के

हेतु ब्रिटिश सरकार के तथा युद्ध के विरुद्ध आन्दोलन का स्वाँग भी रचा जाने लगा। वर्धा की अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में एक प्रस्ताव पास करके सरकार से युद्ध के उद्देश्यों के स्पष्टीकरण की माँग की गई और दूसरा प्रस्ताव पास किया जिसके अनुसार बिना भारत की सम्मति लिये उसे साम्राज्यवादी युद्ध में घसीटने के कारण केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों को इसमें उपस्थित होने से मना कर दिया गया। अत: आम जनता को अपने प्रभाव में भी रखा और साथ ही साथ सुधारवादी नेतृत्व जन-प्रभाव के दबाव से राजनीतिक सुधार प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा। हम ऊपर देख चुके हैं कि जनता की क्रान्तिकारी प्रवृत्ति को कुचल-कर सदैव उसे सुधारवाद मार्ग पर ले जाने का प्रयत्न कांग्रेस का सुधारवादी नेतृत्व करता रहा था। दूसरे साम्राज्यवादी युद्ध के प्रारम्भ काल से ही यही क्रिया जारी थी।

परन्तु ज्यादा समय तक जनता इस प्रकार नहीं रखी जा सकती थी। उसके अन्दर असन्तोष की अग्नि तीव्रता के साथ सुलगने लगी। दिन प्रतिदिन ब्रिटिश सरकार विरोधी प्रवृत्ति तीव्रतर होती गई तो अन्त में विवश होकर राष्ट्रीय कांग्रेस का सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन का नाटक रचने लगा। प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रीमण्डलों ने इस्तीफा दे दिया और रामगढ़ कांग्रेस में आन्दोलन संचालन करने के लिये गांधीजी प्रधान सेनापति के पद पर नियुक्त किये गये। इसके उपरान्त गांधीजी की आज्ञा के अनुसार सभी कांग्रेस कमेटियाँ सत्याग्रह कमेटी में परिवर्तित कर दी गईं। इसका प्रभाव यह हुआ कि भोली-भाली जनता यह अनुमान करने

लगी कि राष्ट्रीय कांग्रेस आन्दोलन प्रारम्भ करने जा रही थी। किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत थी, अभी कांग्रेस का सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व समझौते की आशा लगाये हुए था। यह तो केवल दिखावा था, भोले-भाले जनता को भूल-भूलइयाँ में डालने के लिये और सचमुच इसने भारतीय जनता का भुलावे में डाल दिया था।

ऐसी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में भारतीय जनता को माया-जाल में फँसाकर साम्राज्यवादी विरोधी लड़ाई छेड़ने की लम्बी-चौड़ी डींग मारकर सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व उसे (शोषित जनता) क्रान्ति-पथ से विमुख करने की चेष्टा में संलग्न था, वाम-पक्षी सुभाष बाबू के नेतृत्व में जनता को एक वास्तविक क्रान्तिकारी लड़ाई के लिये संगठित करने का प्रयत्न कर रहे थे। सुभाष बाबू की अध्यक्षता में रामगढ़ कांग्रेस के साथ ही "समझौता विरोधी" कान्फ्रेन्स भी हुई। इसके अतिरिक्त, स्वतंत्रता के महाअभियान की तैयारी के लिये "हालवेल मानुमेन्ट" आन्दोलन के रूप में पहला कदम उठाया गया। हम ऊपर देख चुके हैं कि कांग्रेस की सुधारवादी वैधानिक नीति के कार्यान्वित करने के प्रयत्न के परिणाम-स्वरूप साम्प्रदायिक कटुता लगातार बढ़ रही थी, कांग्रेसी मन्त्रि-मंडल की स्थापना के बाद वह (साम्प्रदायिक कटुता) चरम सीमा पर पहुँच गई। हिन्दू-मुस्लिम दंगा सामाजिक जीवन में नित्य प्रति की दैनिक क्रियाओं का एक अंग-सा हो गया था। परन्तु स्वतंत्रता के महाअभियान के पूर्व परस्पर विश्वास और सद्भावना आवश्यक थी, इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये और आजादी की लड़ाई की पृष्ठिभूमि तैयार करने के लिये सुभाष

बाबू के नेतृत्व में "हालवेल मानुमेन्ट" आन्दोलन संचालित किया गया। सिराजुद्दौला को भारतीय इतिहास में राष्ट्रीयता का प्रतीक प्रथम बार माना गया। उनके द्वारा अंग्रेजों के चंगुल से अपने देश को छुड़ाने के लिये किये गये उद्योगों का अभिनन्दन किया गया। सिराजुद्दौला के चरित्र को कलंकित करने के हेतु अंग्रेजों ने "हालवेल मानुमेन्ट" की स्थापना की थी, इसे तोड़ने के लिये आन्दोलन किया गया। हिन्दू-मुसलमान सभी इसमें शामिल हुए, आन्दोलन-कर्त्ताओं को विश्वास तथा सद्भावना उत्पन्न करने के प्रयत्न में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

राष्ट्रीय कांग्रेस का पूँजीवादी सुधारवादी नेतृत्व ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार के साथ समझौता करने और जनता की क्रान्तिकारी प्रवृत्ति को दबाने के लिये आतुर हो रहा था। इसकी व्यग्रता निम्नांकित उदाहरण से स्पष्ट होती है। सन् १९४० ई० में युद्ध प्रारम्भ होने के थोड़े समय में फ्रान्स का पतन हो गया और भारतीय आम जनता में यह विश्वास उत्पन्न हो गया कि युद्ध में मित्रराष्ट्रों की हार निश्चय होगी। इससे सशंकित हो भारतीय जनता ने नोट का बहिष्कार करना प्रारम्भ कर दिया था, इससे भारतीय पूँजीपतियों तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार के लिये भयानक परिस्थिति पैदा होने लगी थी, इसका स्पष्ट अर्थ था व्यापार कार्य और राज व्यवस्था का ठप हो जाना। पर राष्ट्रीय कांग्रेस के द्वारा प्रस्तावित भावी आन्दोलन का प्रधान सेनानायक गांधीजी इस संकट काल में भारतीय पूँजीवादी वर्ग और ब्रिटिश साम्राज्यशाही सरकार की

सहायता को दौड़ पड़े और भयावह भावी विपत्ति में उन्होंने (गांधीजी) उनकी रक्षा की। उन्होंने एक वक्तव्य दिया जिसमें भारतीय जनता से नोट लेने का अनुरोध किया था। इसके फलस्वरूप साधारण राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं के सभी किये-कराये पर पानी फिर गया।

सन् १६४० ई० के अगस्त में ब्रिटिश सरकार ने भारतीय विधान में कुछ राजनीतिक सुधार करने की घोषणा की, पर यह भारतीय पूँजीवादी वर्ग को भी सन्तुष्ट नहीं कर सकी, फलतः कांग्रेस के सुधारवादी नेतृत्व ने भी उस प्रस्ताव के आधार पर युद्ध में सहायता देने से इन्कार कर दिया। परन्तु इसकी ओर से समझौते का प्रयत्न होता रहा। लगातार वर्षों से पास हुए युद्ध-विरोधी प्रस्तावों को ताक पर रखकर ब्रिटिश सरकार से समझौता करने तथा युद्ध में सक्रिय सहयोग प्रदान करने के लिये अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की पूना की बैठक में एक प्रस्ताव पास किया गया, जो 'पूना आफर' के नाम से प्रसिद्ध है। इस समय गांधीजी अपने अनुयायी नेताओं को आशीर्वाद दे स्वयं कांग्रेस से अलग हो गये थे। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

भारतीय जनता में असन्तोष की मात्रा काफी बढ़ गयी। गांधीजी ने फिर कांग्रेस के नेतृत्व की बागडोर ग्रहण किया और फिर ब्रिटिश हुकूमत के साथ समझौते का प्रयत्न करने लगे। इस समय वह इतना ही चाहते थे कि वे यह कह सकें कि "युद्ध खराब है, इसमें सहायता देना अनुचित और पाप है।" ब्रिटिश सरकार इतने के लिये इजाजत देना खतरे से खाली नहीं समझती थी। अतः इसे भी उसने ठुकरा दिया। फलतः

लाचार होकर गांधीजी के नेतृत्व में व्यक्तिगत सत्याग्रह का नाटक शुरू हुआ। सत्याग्रह के स्वाभाविक नियम के अनुसार सत्याग्रह प्रारम्भ करने के पहले गांधी जी ने स्पष्ट शब्दों में सरकार को लिखा था कि "इसका उद्देश्य किसी तरह ब्रिटिश सरकार के युद्ध प्रयत्नों में बाधा पहुँचाना नहीं है।" अतः व्यक्तिगत गत सत्याग्रह के नियम भी इस आधार पर ही बनाये गये थे, जिससे ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार के युद्ध प्रयत्नों को जरा भी क्षति न पहुँचे। सन् १९४० ई० में यह सत्यागह आरम्भ किया गया था और सन् १९४१ ई० के अन्त तक स्वतः खत्म हो गया। हजारों की संख्या में कांगेस-जन जेल गये। आन्दोलन का हास्यास्पद अन्त देखकर चतुर और राजनीतिज्ञ व्यक्ति गांधीजी के इस नाटक का रहस्य समझने के लिये बेचैन हो उठे। हम भी इसका विश्लेषण करके देखें कि आखिर यह स्वाँग क्यों रचा गया था। काफी लिखा जा चुका है। अब यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कांग्रेस सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व में भारतीय पूँजीवादी वर्ग की अभीष्ट सिद्धि के लिये उनके हाथों की कठपुतली बनी हुई थी। किन्तु यह बात सदैव स्मरण रखनी चाहिये कि राष्ट्रीय कांग्रेस का सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व इसे (कांग्रेस को) पूँजीवादी वर्ग का हित-साधन जन-शक्ति के बल पर ही बनाता है। असन्तुष्ट जन-समूह को अपने साथ लेकर साम्राज्यवादी सरकार को जन-आन्दोलन के भय से त्रस्त करके वह पूँजी-वादी वर्ग के लाभार्थ राजनीतिक सुधार ऐंठता रहा। यदि जनता के ऊपर से उसका प्रभुत्व खत्म हो जाय तो वह शक्तिहीन पंगु हो जाता और फिर उसका चिल्ल-पों केवल

अरण्य रोदन ही रह जाता, और वह साम्राज्यवादी सरकार पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाल सकता था। अतः उसके लिये यह अनिवार्य होता था कि वह जनता को अपने प्रभाव से बाहर न जाने दे। अपनी गुलामी और शोषण से मुक्ति की लड़ाई का नेता समझकर भारतीय जनता सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व का साथ देती थी किन्तु जब उसका वर्गीय आचरण भारतीय शोषित जनता के सामने स्पष्ट होने लगा था कि वह अपने निर्दिष्ट श्रेणी की स्वार्थ सिद्धि में लीन हो जनहित की उपेक्षा करने लगे तो जनता की श्रद्धा भी उन पर कम होना स्वाभाविक था और भारतीय जनता सुभाष बाबू के नेतृत्व में जन-आन्दोलन का संगठन करने वाले वाम-पक्षियों की तरफ स्वभावतः झुकने लगी और आशा भरी निगाह से उनकी ओर बेचैनी के साथ देखने लगी। क्रमशः भावी जन-आन्दोलन के लिये उनके झण्डे के नीचे एकत्र होने लगी। भारतीय पूँजीवादी वर्ग कतई जन-आन्दोलन सहन करने को तैयार नहीं था और न वामपक्षियों के झंडे के नीचे जनता का एकत्र होना ही बर्दाश्त कर सकता था। अतः वामपक्षी झंडे के प्रभाव में जाती हुई भारतीय जनता को रोकने के लिए सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व ने व्यक्तिगत सत्याग्रह का स्वाँग रचा था। इसमें सन्देह नहीं कि सुधारवादी नेतृत्व ने ऐसा करके जनता को क्रान्ति-पथ से मोड़ने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की।

अब तक भारतीय पूँजीवादी वर्ग तथा उसके दलाल भारतीय शोषित-पीड़ित जनता को क्रान्ति-पथ से दूर रखने के उपायों का अवलम्बन कर रहे थे। पर सन् १९४१ ई० के

अन्त में और सन् १९४२ ई० के प्रारम्भ में उनके विचारों में परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। यह परिवर्तन अंतर्राष्ट्रीय जगत के भीषण परिवर्तनों का एक प्रतिबिम्ब था। सन् १९४१ ई० के अन्त में जापान बड़े भीषण वेग के साथ प्रशान्त महासागर के अमेरिका और ब्रिटिश अविकृत टापुओं पर चढ़ दौड़ा। देखते-देखते एक-एक करके टापुओं को जापान ने उदरस्थ कर लिया। दोनों विशाल आंग्ल भाषी सम्राज्यवादी शक्तियाँ हाथ पर हाथ रक्खे देखती रह गई थीं और उनसे कुछ करते-धरते न बना; इतना ही नहीं जापान ने सिंगापुर और मलाया से ब्रिटिश फौजों को भगा दिया था और ब्रह्मा भी अब तब हो रहा था। सिंगापुर तथा मलाया की विजय से ब्रिटिश साम्राज्यवाद की शक्ति, प्रतिष्ठा को काफी धक्का लगा था, उसकी अजेयता पर लोगों को संदेह होने लगा था। भारतीय पूँजीवादी वर्ग भी अति प्रशस्त ब्रिटिश शक्ति की ढाल में पोल देखकर भावी खतरे से सशंक हो उठा था। उसे विश्वास हो गया था कि ब्रिटिश सरकार अब बाह्य एवं आन्तरिक खतरों से उसकी रक्षा करने में असमर्थ है। इसकी प्रतिक्रियास्वरूप अपनी समृद्धि एवं सुख की रक्षा के लिये जापान की कृपा और सद्भावना प्राप्त करने के लिये वह विकल होने लगा था। उसकी यह धारणा सर्वप्रथम गांधीजी के मुख से प्रतिध्वनित हुई थी, जब कि उन्होंने अनायास ही काशी विश्वविद्यालय की रजतजयन्ती के अवसर पर भाषण देते हुए जापान की उन्नति तथा विकास की प्रशंसा की थी।

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस का भारत से बाहर चला जाना

भारतीय शोषित जनता के सामाजिक जीवन की भौतिक परिस्थिति ने शोषित-पीड़ित जनता को क्रान्ति-पथ से हटाने के सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व के प्रयत्नों को विफल बना दिया था। बल्कि आर्थिक कठिनाइयाँ तथा अन्य युद्ध-जन्य विपत्तियाँ बराबर ही उसे क्रान्ति की ओर घसीटे लिये जा रही थीं। इसके अलावा, क्रान्तिकारी शक्तियाँ भी इस अवसर पर मौन न थीं, क्रान्ति की सुलगती हुई अग्नि को वायु का झकोरा दे रही थीं। भारतीय क्रान्तिकारी, सार्वजनिक असन्तोष को एक संगठित जन-क्रान्ति में परिवर्तित करने के लिये प्रयत्नशील थे। जनक्रान्ति की सफलता के लिये सैनिक सहायता तथा सहयोग और बाहरी मदद आवश्यक होती है। सन् १६४१ ई० की जनवरी में सुभाष बाबू ब्रिटिश सरकार की आँखों में धूल झोंककर हिन्दुस्तान से निकल भागे और ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार के शत्रुओं से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे। वह हर प्रकार से भारतीय जन-क्रान्ति को सफल बनाने का प्रयत्न करने लगे। भारतीय शोषित-पीड़ित जनता शोषण और गुलामी से मुक्ति के लिये सुभाष बाबू की ओर देखने लगी। उसे यह विश्वास हो गया था कि नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में उसकी आजादी की लड़ाई शीघ्र ही सफल होगी।

उधर युद्ध-क्षेत्र में अंग्रेजी साम्राज्यवादी फौजों की बुरी दशा हो रही थी। ब्रिटिश फौजों की पराजय से भारतीय जनता का रोम-रोम पुलकित हो उठता था। ब्रिटिश सरकार

को भी अपनी स्थिति डाँवाडोल होती दिखाई देने लगी, आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनायें प्रतिक्षण उसके प्रतिकूल घट रही थीं। इस समय बढ़ती हुई जापानी शक्ति को रोकने के लिये उसे भारत की सहायता और सहयोग की आवश्यकता महसूस होने लगी। भारत की सहायता और सहयोग प्राप्त करने के हेतु उसने एक घोषणा की थी जिसमें भारतीय विधान में पर्याप्त सुधार करने का अश्वासन दिया गया था और इसके आधार पर भारतवर्ष के साथ समझौता करने के लिये सर स्टैफर्ड क्रिप्स सन् १९४२ ई० के मार्च में भारत पहुँचे। अगर यह प्रस्ताव सन् १९४१ ई० में, युद्ध में जापान के शामिल होने के पूर्व आया होता तो भारतीय पूँजीवादी वर्ग तथा सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व फूले न समाता। पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति में काफी परिवर्तन हो चुका था। भारत के निगाह में यह एक दिवालिये बैंक का चेक था, जिसे भुनाने के पहले ही बैंक के खत्म हो जाने की अधिक सम्भावना थी; अतः क्रिप्स को भारत के सभी प्रमुख दलों से दो-टूक जवाब मिला और बेचारे को अपना मुँह लेकर वापस जाना पड़ा।

भारत आने पर सर स्टैफर्ड क्रिप्स बहुत से प्रमुख दलों तथा व्यक्तियों से मिले, पर उन्होंने भारतीय व्यापारी मण्डल से मिलने से इन्कार कर दिया था, हालाँकि भारत-स्थित ब्रिटिश व्यापारी मण्डल से उन्होंने मिलना स्वीकार कर लिया था और वे मिले भी थे। भारतीय पूँजीपतियों की ओर से इसका घोर विरोध किया गया था। एक प्रमुख पूँजीपति, बाल चन्द्र का अप्रैल मास में इसके विरुद्ध में एक वक्तव्य

आया, जिसमें उन्होंने कहा था कि "सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने भारतीय व्यापारी वर्ग से मिलने से इन्कार करके ब्रिटिश व्यापारी वर्ग को जो मिलने का मौका दिया है, उसका मुझे कुछ भी दुःख नहीं है, क्योंकि हम अपने को राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रमुख अंग समझते हैं—जिस प्रकार राजनीतिक नेतागण भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के बिना आर्थिक स्वतंत्रता असम्भव समझते हैं।"

७

जापान और कांग्रेस का "भारत छोड़ो" प्रस्ताव

हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि युद्ध की अवस्था ने ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार के प्रभाव और शक्ति में भारतीय पूँजीवादी वर्ग का विश्वास खत्म कर दिया था। अब उसके (भारतीय पूँजीवादी वर्ग के) सामने ब्रिटिश सरकार से समझौता करने का या किसी प्रकार का सौदा करने का प्रश्न न था, बल्कि उसका वर्गीय स्वार्थ जापानियों के साथ जुट रहा था। उसे यह चिन्ता थी कि किसी प्रकार वह अपने भावी स्वामी के साथ अच्छे भावों में सौदा पटावे। अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारिणी की इलाहाबाद बैठक में गांधीजी द्वारा तैयार प्रस्ताव कुछ संशोधन के साथ बहुमत से स्वीकृत हुआ था। परन्तु पं० जवाहरलाल नेहरूजी के विरोध के कारण वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में पेश नहीं किया गया था। इस प्रस्ताव में यह कहा गया था कि "आजाद भारत का पहला काम जापान के साथ संधि करना होगा।" जापान के साथ भी अच्छे भावों में सौदा पटाने के लिये

जनता को अपने साथ रखना आवश्यक था, किन्तु जनता के ब्रिटिश विरोधी भाव क्षण क्षण उग्र होते जा रहे थे। राष्ट्रीय कांग्रेस के सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व के चुपचाप बैठे रहने की नीति से निराश होकर भारतीय शोषित जनता नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की ओर झुकती जा रही थी और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध बगावत करने के लिये व्याकुल हो रही थी। अत: जनता को अपने साथ रखने के हेतु सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व ने 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पास किया।

"क्रिप्स प्रस्ताव"

'ब्रिटिश साम्राज्यवादी हुकूमत का पिछला इतिहास यह सिद्ध करता है सुधार सदैव शोषित-पीड़ित जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों द्वारा जबर्दस्ती ब्रिटिश सरकार के हाथों से ऐंठा गया है। सुधार देते समय ब्रिटिश सरकार सदैव इस बात का ध्यान रखता था कि सुधार किसी प्रकार भी आम पीड़ित जनता की क्रांतिकारी शक्तियों की वृद्धि में सहायक न हो, बल्कि भरसक उसका प्रयोग साम्राज्यवाद-विरोधी शक्तियों को क्षीण करने के लिये हो। सन् १९४२ ई० में आन्तरिक और बाह्य परिस्थितियों से भारतीय विधान में सुधार करने के लिये विवश होने पर भी ब्रिटिश सरकार ने अपनी ऐतिहासिक परम्परा को कायम रखा और जहाँ तक सम्भव हो सका था उसने सुधार के सुवर्ण-घट में फूट का विष-बीज रखने की कोशिश की। सन् १९४२ ई० में सर स्टैफर्ड क्रिप्स जिस प्रस्ताव को लेकर भारतवर्ष आये थे, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं, वह ब्रिटिश-युद्ध-परिषद् के द्वारा स्वीकृत हुआ था।

हम ऊपर क्रिप्स प्रस्ताव देख चुके हैं। यही कहा जा चुक है कि ब्रिटिश युद्ध परिषद ने इसे पूर्ण रूप से स्वीकार किय था। युद्ध परिषद द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार भारतव को कई अंशों में बाँटने की आयोजना थी। यह पूर्णतः दो राष्ट्र सिद्धान्त का समर्थन था जिसका स्पष्ट उद्देश्य था—साम्प्र दायिक आधार पर भारत का विभाजन। ब्रिटेन के स्वतन्त्र मजदूर दल के प्रधान मन्त्री फेनर ब्राकवे ने युद्ध परिषद द्वार प्रेषित क्रिप्स प्रस्ताव पर अपना विचार प्रकट करते हुए लिख था कि "प्रस्ताव से यह भय है कि वह भेद को और बढ़ावेग और लगातार उसको व्यापक बनाता जायगा। भारत के विशाल शरीर पर अनेक अलस्टर का फैला रहना अत्यन्त भयावह है। सामाजिक उन्नति में इसका बाधक होना अवश्यम्भावी है और सामाजिक उन्नति बुरी तरह पीछे हट जायगी।" मि० ब्राकवे का कहना सर्वथा सत्य था, भारत विभाजन का अर्थ क्रान्तिकारी शक्तियों का छिन्न-भिन्न होना था। शोषित-पीड़ित जनता के संगठन को—जनक्रान्ति के आधार को—ही नष्ट कर देना था। इसका स्पष्ट अर्थ था श्रमिक शोषित जनता की शोषण और गुलामी से मुक्ति की लड़ाई की प्रगति को निश्चित काल के लिये अवरुद्ध कर देना था। इसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज के विकास तथा प्रगति का काफी समय के लिये शिथिल होना निश्चय था।

एक स्वर से सारे भारत में सभी प्रमुख राजनैतिक दलों तथा व्यक्तियों के द्वारा इस प्रस्ताव का विरोध किया गया था। सर स्टैफर्ड क्रिप्स विफल हो इंगलैण्ड वापस चले गये थे। क्रिप्स प्रस्ताव में दो राष्ट्र-सिद्धान्त का समर्थन किया गया था

और साम्प्रदायिक आधार पर भारत विभाजन का भी आयोजन था। इसके विपरीत, क्रिप्स के वापस होते ही कांग्रेस ने मई के महीने में श्री जगत नारायण लाल का अखण्ड भारत का प्रस्ताव पास किया था, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। इसके पहले सन् १९४० ई० में अपने लाहौर अधिवेशन में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान का प्रस्ताव पास किया। इसका विरोध कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष मौलाना आजाद ने रामगढ़ कांग्रेस में बोलते हुए विरोध किया था और कहा था कि "यह भारत का प्रारब्ध था कि बहुत सी मानव जातियाँ, संस्कृति तथा धर्म्म इसकी ओर प्रवाहित हुए और इसकी अतिथि-सेवी भूमि में बहुत से काफिलों ने चिरकाल के लिये अपना स्थान बना लिया। इन अनेक काफिलों में से अन्तिम काफिला जिसने अपने पूर्वगामी काफिलों के पद-चिन्हों का अनुसरण किया, इस्लाम धर्म के अनुयायियों का था। इस काफिले के आगमन से दो भिन्न जातियों की विभिन्न सांस्कृतिक धारा का संयोग स्थापित हुआ।··· गंगा और यमुना की भाँति कुछ काल तक अलग-अलग दो धारायें बहती रहीं, किन्तु प्रकृति के परिवर्तनशील नियमों ने उनका सानिध्य तथा तत्पश्चात् संगम स्थापित कर ही दिया। हमारे जीवन के हजारों वर्षों ने हमें एक राष्ट्रीयता में डाल दिया, यह कृत्रिम ढंग से नहीं किया जा सकता था, प्रकृति की रचना की प्रच्छन्न प्रक्रिया सदियों के विस्तृत काल में सम्पन्न होती है, लेकिन अब हम साँचे में ढाल दिये गये हैं और प्रारब्ध ने अपनी मुहर भी इस पर लगा दी है। अनिच्छा या इच्छापूर्वक हम एक अखंड एवं अविभाज्य भारतीय राष्ट्र के

रूप में बदल गये हैं। कोई भी काल्पनिक एवं कृत्रिम उपाय अब इस एकता को भंग नहीं कर सकता है।"

इसके अलावा, अन्य प्रभावशाली मुस्लिम संस्थाओं ने लीग द्वारा उपस्थित की गई पाकिस्तान की माँग का विरोध किया था। हमने इसी पुस्तक में अन्यत्र यथास्थान सन् १९४० ई० की अखिल भारतीय स्वतंत्र मुस्लिम लीग अधिवेशन के सभापति स्वर्गीय अल्लाबख्श तथा जमायतुल-उलेमा हिन्द के पाकिस्तान विरोधी प्रस्तावों तथा व्याख्यानों को उद्धृत किया है। उनकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं है। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि भारत के विभाजन के विरोध में केवल कांग्रेस तथा कांग्रेसजन ही नहीं थी, इनके अलावा मुसलमान भी इसके कट्टर विरोधी थे। गांधीजी ने तो यहाँ तक अपनी विरोध की भावना प्रकट की थी कि भारत विभाजन के पूर्व वे अपने शरीर के विभाजन तक के लिये प्रस्तुत थे। साम्प्रदायिक मनो-मालिन्य को वे कृत्रिम तथा तीसरे दल के कुकृत्यों की उपज मानते थे। सन् १९४२ ई० में उन्होंने (गांधीजी ने) पत्र प्रतिनिधियों द्वारा प्रश्न किये जाने पर स्पष्ट शब्दों में कहा था कि "ब्रिटिश सरकार के रहते हुए साम्प्रदायिक एकता असम्भव है और आन्दोलन शुरू करने के लिये कांग्रेस और मुस्लिम लीग समझौते की कोई आवश्यकता नहीं है। यह केवल ब्रिटिश साम्राज्यवाद की समाप्ति पर ही सम्भव है।"

राजनीतिक सुधार और साम्प्रदायिकता

भारतीय स्वतन्त्रता की लड़ाई का इतिहास यह बतलाता है कि आजादी की लड़ाई में भारतीय शोषित-पीड़ित जनता ने हमेशा एकता का परिचय दिया था। आजादी के जन-आन्दो-

लन के प्रारम्भ हो जाने पर साम्प्रदायिक विषमता और धार्मिक भिन्नता कभी भी बाधक नहीं बना था। स्वतंत्रता के संग्राम की तीव्र लहरों ने सदैव इन कृत्रिम भेद-भावों को दूर बहाकर भारतीय शोषित-पीड़ित जनता को एक धारा में मुक्ति की ओर प्रवाहित किया था। यह ऐतिहासिक वास्तविकता राष्ट्रीय कांग्रेस के सुधारवादी नेतृत्व से छिपी हुई नहीं थी, बल्कि कई बार नग्न रूप में उनके आँखों के सामने आई भी थी। इससे यह और प्रमाणित होता है कि सन् १६४२ ई० की अगस्त क्रान्ति के पूर्व गांधीजी ने स्पष्ट कहा था कि 'स्वतंत्रता संग्राम के पूर्व हिन्दू-मुसलमानों के समझौते की आवश्यकता नहीं है।' साधारण हिन्दू-मुस्लिम जनता समान रूप से शोषण-दोहन की भुक्तभोगी है। अतः जब कभी अवसर आता है, तो वह कन्धे से कन्धा मिलाकर अपनी ऐतिहासिक लड़ाई में संलग्न हो जाती है, और जामे-फिरकापरस्ती पिलाकर जो नशा पहले चढ़ाई गई है, वह काफूर हो जाती है।

जब तक स्वतंत्रता संग्राम में आम जनता व्यस्त रहती है, तब तक उसके सामाजिक जीवन में साम्प्रदायिकता की विषमता दूर रहती है। परन्तु जब स्वतंत्रता संग्राम शिथिल पड़ने लगता है और इसका नेतृत्व विधान की ओर झुकने लगता है, जनता की क्रान्तिकारी शक्तियाँ तथा संगठन क्रमशः क्षीण होने लगता है और धीरे-धीरे सुधारवादी तथा क्रान्ति-विरोधी शक्तियाँ प्रबल हो उठती हैं, राजनीतिक रंग-मंच पर क्रान्ति-विरोधी तथा प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ साम्प्रदायिकता तथा धर्म का कृत्रिम बाना धारण करके प्रगट होती हैं। भोली-भाली जनता धर्म तथा सम्प्रदाय के नाम प्रतिक्रियावादियों के हाथ की कठपुतली

बन अपना गला कटवाकर उनके स्वार्थ की सिद्धि में सहायक होती है। राष्ट्रीय सुधारवादी नेतृत्व स्वयं स्वतंत्रता के आन्दोलन को वास्तविक क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन में परिवर्तित न होने देने के हेतु रोक देता रहा और तथाकथित रचनात्मक कार्य-क्रम के द्वारा स्वतंत्रता की लड़ाई से जनता की उत्पन्न और विकसित क्रान्तिकारी एकता का गला घोंटकर साम्प्रदायिक वैषम्य पैदा करके फिर राजनीतिक संग्राम की सफलता के लिये साम्प्रदायिक एकता का नारा बुलन्द करता रहा। जब कभी आन्दोलन छेड़ने की आवश्यकता वे अनुभव करते, उस समय इस नारे का उनके लिये महत्व नहीं रहता था। वैधानिक सुधार रूपी रोटी के टुकड़े को बाँटने के समय वे साम्प्रदायिक एकता का नारा बुलन्द करते थे और साम्प्रदायिकता की विषमता प्रबल शक्ति के साथ सामाजिक जीवन पर आक्रमण करती थीं।

अगस्त-क्रान्ति की असफलता का कारण

सन् १९४२ ई० की अगस्त क्रान्ति का इतिहास यह बतलाता है कि इसके प्रारम्भ में तथा बीच में साम्प्रदायिक एकता कायम करने के लिये कृत्रिम प्रयत्नों की आवश्यकता नहीं पड़ी, भारतीय शोषित-पीड़ित जनता स्वतः भेदभाव भूलकर शत्रु का संगठित मुकाबला कर रही थी। क्रान्ति-पथ पर उतनी तीव्र गति से बढ़ने पर भी बागी जनता पर्याप्त क्रान्तिकारी नेतृत्व के अभाव के कारण अपने लक्ष्य तक न पहुँच सकी। संसार के क्रान्तिकारी आन्दोलनों के इतिहास में अपने अद्वितीय साहस तथा क्रान्तिकारी शक्ति का परिचय

देकर यह जन-आन्दोलन क्रान्ति-विरोधी, सुधारवादी-पूँजीवादी नेतृत्व के तथा कम्युनिस्टों के ब्रिटिश सरकार के साथ गठबन्धन के द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवाद की बेदी पर बलि कर दिया गया। इसका नेतृत्व एकमात्र क्रान्तिकारी ही कर सकते थे। परन्तु ब्रिटिश सरकार के साथ-साथ सत्य और अहिंसा के नाम पर सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व और साम्यवाद के नाम से स्टैलिनवादी क्रान्तिकारी संगठन आन्दोलन की जड़ खोद फेंक देने का प्रयत्न कर रहे थे। जिसके फलस्वरूप यह बहुत कुछ निर्बल हो गया था। क्रान्तिकारियों के श्रेष्ठ चरित्र तथा त्याग के प्रभाव से यह जीवित रहा। परन्तु इतनी विरोधी शक्तियों का सामना करते रहने के पश्चात् क्रान्तिकारी संगठन के लिये पूर्णरूप से जन-क्रान्ति का संचालन और नेतृत्व करना सम्भव न था। यही कारण था कि राजनीतिक चेतना के व्यापक प्रसार के बावजूद भी क्रान्तिकारी संगठन के निर्बल होने के कारण सन् १९४२ ई० की अगस्त क्रान्ति अपने लक्ष्य तक न पहुँच सकी और कांग्रेस के पूर्वकृत क्रान्ति-विरोधी सुधारवादी उपायों के फलस्वरूप इसकी असामयिक मृत्यु हो गई।

अगस्त क्रान्ति से विकसित क्रान्तिकारी जन-शक्ति और राष्ट्रीय सुधारवादी नेतृत्व

अब इस बात को समझने की चेष्टा हमें करनी है कि किस प्रकार भारतीय पूँजीवादी वर्ग तथा उसका स्वार्थ साधक राष्ट्रीय सुधारवादी नेतृत्व हवा के रुख के साथ अपनी पीठ फेरकर बाजा बजा रहा था। साम्राज्यवादी युद्ध के

प्रारम्भ काल से सन् १९४१ ई० तक जब भारतीय पूँजीपतियों की पाँचों अँगुलियाँ घी में थीं उस समय जनता को भुलावे में डालकर जन-आन्दोलन रोकने के लिये क्या-क्या स्वाँग रचा गया, यह हम देख चुके हैं। सन् १९४१ ई० के अन्त से साम्राज्यवादी युद्ध की भौतिक अवस्था में परिवर्तन होते ही इनकी नीति में भी मौलिक परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। युद्ध-क्षेत्र में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पैर उखड़ने लगे और उधर भारतीय पूँजीवाद ब्रिटिश साम्राज्यवाद-विरोधी मोर्चा खड़ा करने लगा, जिसका मौलिक आधार न था सन् १९४२ ई० का "भारत छोड़ो" का ऐतिहासिक प्रस्ताव। लेकिन समय ने फिर पलटा खाया और साथ ही साथ भारतीय पूँजीपतियों की ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी नीति में उथल-पुथल हुई। सन् १९४३-४४ ई० में यह निश्चित रूप से ज्ञात होने लगा कि विजय मित्रराष्ट्रों के पक्ष में होगी। भारत पर जापान के भावी हमले का भय भी दूर हो गया था और उसकी सफलता पर अविश्वास पैदा हो गया था। आन्तरिक परिस्थितियों में भी काफी परिवर्तन आ चुका था; सन् १९४२ ई० की क्रान्ति की भीषण अग्नि भी प्रत्यक्ष रूप में शान्ति में बदली हुई विदित होती थी, भारतीय पूँजीपतियों के स्वार्थ स्टर्लिंग क बकाया के रूप में इङ्गलैण्ड से नथ चुका था, इसकी अब किसी अन्य साम्राज्यवादी शक्ति से समझौता करके लाभ उठाने की आशा खत्म हो चुकी थी। उनके सामने दो महत्वपूर्ण प्रश्न थे, जिन्हें हल करने के लिये भारतीय पूँजीपति व्याकुल हो रहा था। (१) प्रश्न यह था कि वे किस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्यवादी-पूँजीवादियों के रहते हुए अपनी उन्नति और विकास कर

सकते थे और (२) प्रश्न यह था कि किस प्रकार सन् १६४२ ई० की क्रान्ति से विकसित क्रान्तिकारी संयुक्त जन मोर्चे को भंग कर सकते थे। भारतीय पूँजीवादी वर्ग यह समझता था कि जन-आन्दोलन केवल ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार के अस्तित्व को ही ध्वस नहीं करेगा, बल्कि उसके (भारतीय पूँजीवादी वर्ग के) लिये भी घातक होगा। गांधी-जी के "सत्य" और "अहिंसा" के मन्त्रों में उसे विश्वास न रहा। वह भली-भाँति समझने लगा था कि जनता के क्रान्तिकारी नशे को उतारने के लिये मन्त्र पर्याप्त नहीं रहा। क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन की शक्ति को अनुभव कर लेने के पश्चात् जनता फिर सुधारवादी क्रान्ति विरोधी संकुचित परिधि के अन्दर सीमित नहीं रह सकती थी। भारतीय पूँजीवाद तथा पूँजीवादी वर्ग के विकास और प्रगति के लिये यह आवश्यक हो गया था कि किसी भी प्रकार ब्रिटिश सरकार के साथ गठबन्धन करके क्रान्तिकारी जन-शक्तियों को कुचले। ब्रिटिश सरकार के साथ समझौता करने के लिये भारतीय पूँजीवादी सुधारवादी नेतृत्व ने सुधारवादी राष्ट्रीय आन्दोलन की नीति का पूर्ण परित्याग और सुधारवादी वैधानिक नीति का अवलम्बन अनिवार्य समझा। सन् १६४२ ई० की अगस्त क्रान्ति के अवसर पर ब्रिटिश सरकार ने भी भारतीय आम जनता के ऊपर कांग्रेस का प्रभाव और शोषित जनता की क्रान्तिकारी प्रवृत्ति का अनुभव भली भाँति किया था। अतः भारतीय शोषित-पीड़ित जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों को नष्ट करने के लिये तथा साम्राज्यवादी शोषण को कायम रखने के लिये ब्रिटिश साम्राज्यवादी पूँजीवादी

वग भारतीय पूँजीवादी वर्ग का सहयोग आवश्यक समझने लगा था। और गठबन्धन करने के लिये प्रयत्नशील हो उठा। प्रत्येक जन-आन्दोलन से विकसित क्रान्तिकारी जन-शक्तियों के दबाव से बाध्य होकर ब्रिटिश सरकार भारतीय विधान में सुधार करने आई थी। सन् १६४२ ई० की क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन के उपरान्त भारतीय विधान में मौलिक परिवर्तन करने के लिये वह बाध्य हो रही थी। इस मौलिक वैधानिक सुधार की प्राप्ति के बाद किसी भी प्रकार का ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन का संचालन करना भारतीय पूँजीवादी सुधारवादी नेतृत्व नहीं चाहता था, इसे परित्याग करने के लिये व्यग्र हो उठा था। ब्रिटिश सरकार से प्राप्त राजनीतिक शक्ति को अपने विकास तथा प्रगति के लिये पूर्ण प्रयोग करना भारतीय पूँजीवादी वर्ग चाहता था। अब भारतीय शोषित जनता के जन-आन्दोलन का नेतृत्व करके राष्ट्रीय कांग्रेस का सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व अग्नि के साथ खेल खेलना नहीं चाहता था। वह भारतीय जनता को क्रान्ति-विरोधी सुधारवादी पाठ पढ़ाकर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध में प्रयोग करता रहा था और जब तक जनता उसकी इच्छानुसार चलती रही थी, तब तक उसने उसका नेतृत्व किया था। पर जैसे ही इस भस्मासुर ने स्वयं वृषभनाथ के ऊपर ही हाथ रखकर उनके वरदान का उन्हीं पर प्रयोग करने की चेष्टा की, वे भाग खड़े हुए और उसके विनाश का उपाय ढूँढ़ने लगे।

भारतीय पूँजीवाद तथा पूँजीवादी वर्ग के विकास तथा प्रगति के लिये मौलिक वैधानिक सुधार प्राप्त करना अति

आवश्यक था—भारतीय भौतिक परिस्थिति की यह वास्तविकता थी जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता था। यह तो राष्ट्रीय पूँजीवादी सुधारवादी नेतृत्व के द्वारा ही ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार से प्राप्त होना था। लेकिन यह न जन-क्रान्ति के द्वारा शासन-सत्ता पर अधिकार करना चाहता था और न किसी प्रकार का जन-आन्दोलन का संचालन कर ही मौलिक वैधानिक सुधार की प्राप्ति ही करना चाहता था, बल्कि ब्रिटिश सरकार के साथ समझौता करके राजनीतिक सुधार प्राप्त करना चाहता था। यहाँ हम यह न भूलें कि ब्रिटिश सरकार ने बराबर इस बात की घोषणा की है कि यह "हिन्दू-मुसलमानों की सम्मिलित माँग पर भारत को राजनीतिक अधिकार देने को तैयार है।" अतः जिस समय सन् १६४४ ई० में महात्मा गांधी और मि० जिन्ना साहब समझौते की बातें कर रहे थे, भारतीय पूँजीपति धड़कते हुए हृदय से इसके फल की प्रतीक्षा कर रहे थे और सफलता के लिये अपने इष्टदेवों से रात-दिन प्रार्थना कर रहे थे।

गांधी-जिन्ना मिलन की ओर आशा भरी निगाह से भारतीय पूँजीपति देख रहे थे। इस मिलन में उनकी कितनी बड़ी आशा केन्द्रित थी, यह इण्डियन-चेम्बर्स आफ कामर्स के सभापति के भाषण से स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है। गांधी-जिन्ना मिलन के सम्बन्ध में 'चेम्बर' के सामने बोलते हुए उन्होंने कहा था, "इस समय जिनके हृदय में भारत का हित भरा हुआ है, वे गांधी-जिन्ना मिलन की सफलता की कामना कर रहे हैं, और यह इच्छा करते हैं कि वे एक ऐसे निर्णय पर पहुँचें, जो सभी लोगों के हित के लिये साफ और चिरस्थायी हो। हमें यह आशा

करनी चाहिये कि यह मिलन सरकार के साथ शीघ्र ही एक समझौता करने में भी सफल होगा।" भारतीय पूँजीवादी वर्ग अपनी उन्नति और विकास के लिये राष्ट्रीय सरकार के स्थापना को आवश्यक समझता था। वह यह भी समझता था कि हिन्दू-मुस्लिम मेल के आधार पर ब्रिटिश छत्रछाया में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना सम्भव हो सकता था। राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिये वह कितना आतुर हो रहा था, यह भी सभापति के आगे के भाषण से स्पष्ट हो जाता है। वे कहते हैं—"भारत के आर्थिक हित के लिये शीघ्र राष्ट्रीय सरकार की स्थापना नितान्त आवश्यक है, इसी लिये बम्बई-योजना के निर्माणकर्त्ताओं ने इस पर इतना अधिक जोर दिया है।

"जनता की उन्नति के लिये निर्मित कोई भी योजना जनता का लगन के साथ सहयोग नहीं प्राप्त कर सकती जब तक उसके पीछे वास्तविक राष्ट्रीय सरकार न हो। अतः अधिकारियों की यह भूल है कि वे वर्तमान राजनैतिक अवस्था को ज्यों का त्यों बनाये रखकर आर्थिक अवस्था का सुधार करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

"यह कहा जाता है कि आर्थिक उन्नति स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये मार्ग तैयार करेगी, पर क्या किसी ने कभी राजनैतिक पराधीनता के अन्तर्गत वांछित आर्थिक उन्नति की प्राप्ति के विषय में सुना है? भारतवर्ष में हम लोगों को इसका कटु-अनुभव प्राप्त है। हम यह जानते हैं कि भारत की ब्रिटिश की पराधीनता हमारे व्यापार, उद्योग-धन्धों और हमारी आर्थिक उन्नति के लिये क्या अर्थ रखती है।

"भारत के औद्योगीकरण में हम सुव्यवस्थित, बहु साधन-

युक्त सम्पन्न विदेशी कारपोरेशनों की प्रतियोगिता से बच नहीं सकते। यदि हमको वास्तव में इन विदेशी 'कारपोरेशनों' के सामने प्रतियोगिता में टिकना है तो हमारे उद्योग-धन्धों के पीछे एक ऐसी शक्ति का होना अनिवार्य है, जो हमें अपने पैरों पर खड़े होने के योग्य बना सके। प्रथम उनको अपनी ही सरकार का सामना करना है, जो उनके प्रति केवल उदासीन ही नहीं बल्कि विरोधी भाव रखे हुये हैं, और दूसरे उन्हें सुव्यवस्थित विदेशी कारपोरेशनों के सम्मुख बेजोड़ प्रतियोगिता में अड़ना होगा।" यह केवल चेम्बर आफ कामर्स के सभापति का व्यक्तिगत विचार नहीं था, बल्कि भारतीय पूँजीवादी वर्ग का भी यह हृदयोद्गार था। राष्ट्रीय सरकार के लिये इतनी उत्सुकता के कारण ही कांग्रेस, जिसने सन् १९४२ ई० के मई महीने में भारतवर्ष के विभाजन के विरोध में एक प्रस्ताव पास किया था, साम्प्रदायिकता के आधार पर भारत-विभाजन को एक प्रकार मुस्लिम लीग के साथ स्वीकार करने के लिये उत्सुक हो उठी थी।

उपरोक्त राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों की उपज सी० आर० फार्मूला थी। इसे केवल गांधीजी का आशीर्वाद ही नहीं प्राप्त था, बल्कि हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक एकता के नाम पर हिन्दू-मुस्लिम पूँजीपतियों की एकता स्थापित करने के लिये कांग्रेस तथा लीग के बीच समझौता का आधार इन्होंने (गांधी जी ने) मान लिया था और इसके आधार पर उन्होंने मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मि० जिन्ना से मिले और समझौते की बात-चीत की, लेकिन वे असफल रहे। हालाँकि गांधीजी अभी तक भारत को एक अविभाज्य राष्ट्र तथा मुसलमानों को उसका

अविभाज्य अंग स्वीकार करते रहे थे, किन्तु सी० आर० फार्मूला को स्वीकारकर इसके आधार पर लीग के साथ समझौते के लिये बात-चीतकर दो राष्ट्र के सिद्धान्त का उन्होंने समर्थन किया। सी० आर० फार्मूला को मानकर हिन्दू-मुस्लिम एकता के नाम पर भारत का विभाजन मानकर पूँजीपतियों के बीच एकता स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे। इधर हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम करने के लिये गांधी-जिन्ना मिलन हो रहा था, उधर ईद के अवसर पर मि० जिन्ना साहब ने भारतीय मुसलमानों को जो बधाई दी, उसमें वे अपने मनोभावों को न छिपा सके, और यह उनके वक्तव्य से स्पष्ट हो गया कि पाकिस्तान का अर्थ "पान इस्लाम" के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। हालाँकि गांधी जी के पूछने पर जिन्ना साहब ने पाकिस्तान का स्पष्ट अर्थ नहीं बताया था। जिन्ना साहब ने ईद के अवसर पर मुसलमानों को बधाई देते हुए कहा था कि "इस प्रकार के आनन्द तथा शुभ अवसर पर मैं भारत के प्रत्येक मुसलमान को बधाई देता हूँ और उनके लिये शान्ति प्रसन्नता और समृद्धि की कामना करता हूँ। रमजान का पवित्र महीना अभी-अभी समाप्त हुआ है, और रोजा की कठिन परीक्षा में आप लोग सफल हुए हैं, आप लोगों ने इसे पूरा करने में उदाहरणीय धैर्य और विश्वास का परिचय दिया है। चिर-प्रतीक्षित ईद के प्रातःकाल ने आज प्रत्येक मुसलमान के घर में प्रसन्नता की ज्वलयमान किरणें बिखेर दी हैं। आइये! आज हम सब मिलकर प्रार्थना करें कि यह किरणें हमको शान्ति और समृद्धि प्रदान करें। पिछले ईद के बाद से एक राष्ट्र की हैसियत से हमारी प्रगति स्थिर और ठोस रही है, हम क्षण प्रतिक्षण प्रबलतर होते गये हैं। आज

मुझे यह कहते हुए हर्ष हो रहा है कि भारत के मुसलमानों को मैं संगठित तथा राष्ट्र के हित के लिये बड़े से बड़े बलिदान के लिये प्रस्तुत पा रहा हूँ। हमने वास्तविक राष्ट्र की रचना एवं उन्नति का कार्य प्रारम्भ कर दिया है, जिसमें हमारे वास स्थान का जो पाकिस्तान की रचना करते हैं, सामाजिक, आर्थिक शिक्षा सम्बन्धी तथा औद्योगिक पुनर्निर्माण सम्मिलित है। हमें मुसलमानों के साथ विश्वासघात करने वाले पतितों का भी सामना करना है, जो हमारे वास स्थानों में ही हमारी उन्नति की क्रियाओं को कलंकित कर रहे हैं। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि मुसलमान अपने उत्तरदायित्व को समझने लग गये हैं और मुल्तान के चुनाव में अपना मत प्रदान करके उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि वे सरलता के साथ छले नहीं जा सकते। आज हम एक तथा ठोस राष्ट्र के रूप में खड़े हैं।

"आप जानते होंगे कि दुनिया विशेषत: इस्लामी दुनिया और भारतीय मुस्लिम राष्ट्र विषम परिस्थितियों से गुजर रहे हैं। हमारी परीक्षा का कठिन अवसर है। लेकिन उसी धैर्य और उत्साह के साथ, जिसका परिचय आपने रमजान के महीने में दिये हैं, हमें आज इस शुभ मुहूर्त में एक बार पुन: यह प्रतिज्ञा करना चाहिये कि जब तक हम इस स्वतंत्रता को नहीं प्राप्त कर लेते तथा अपने अन्तिम लक्ष्य पाकिस्तान तक सफलतापूर्वक नहीं पहुँच जाते हैं 'तब तक हम हर तरह का कष्ट और बलिदान करने के लिये सदैव प्रस्तुत हैं।"

एक ओर गांधी-जिन्ना मिलन हो रहा था और आम लोगों में यह ख्याल हो रहा था कि कांग्रेस और लीग के बीच कोई समझौता हो जायेगा, दूसरी ओर जिन्ना साहब उक्त उद्धृत जैसा वक्त-

व्य दे रहे थे, जिसमें भारतीय एकता और आजादी का जिक्र न था। अपने वक्तव्य में उन्होंने केवल मुस्लिम दुनिया तथा पाकिस्तान का राग अलापा था। उनका वक्तव्य पान-इस्लामिज्म की भावना से ओत-प्रोत था। इस वक्तव्य में जिन्ना साहब ने राष्ट्र निर्माण के सम्बन्ध में मुसलमानों के उद्योग-धन्धों का विशेष रूप से उल्लेख किया था, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि पाकिस्तान की माँग के पीछे मुस्लिम पूँजीपतियों का विशेष स्वार्थ रहा। साम्प्रदायिक आधार पर भारत-विभाजन की इस माँग को शोषित-पीड़ित मुस्लिम जनता की माँग कहना केवल सत्य के साथ आँख-मिचौनी करना था। भारत-विभाजन की यह माँग भारतीय श्रमिक शोषित-पीड़ित जनता के सामाजिक और आर्थिक जीवन के विकास तथा प्रगति के लिये कितनी घातक होगी, इस पर पीछे काफी प्रकाश डाला जा चुका है। गांधी-जिन्ना मिलन की असफलता के बाद अखिल भारतीय जमयेतुलउलमाया हिन्द के सभापति मौलाना सय्यद हुसेन अहमद मदनी ने कहा था कि "पाकिस्तान योजना केवल हानिकारक ही नहीं है, बल्कि असाध्य भी है।"

भारतीय पूँजीपतियों को आपसी मेल की आवश्यकता

उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत की शोषित-पीड़ित जनता साम्प्रदायिक आधार पर भारत-विभाजन की समर्थक नहीं थी। पाकिस्तान की माँग के विकास के इतिहास से यह स्पष्ट होता है कि यह भारतीय शोषित-पीड़ित जनता की आजादी के आन्दोलन की उपज नहीं थी, बल्कि भारतीय

पूँजीवादी वर्ग के आन्तरिक संघर्ष की उपज थी, जिसे न हम भारतीय आम जनता की माँग कह सकते हैं और न मुस्लिम शोषित-पीड़ित जनता की ही। यह स्पष्ट शब्दों तथा भावों में मुस्लिम पूँजीपतियों की माँग थी, जो अन्य भारतीय पूँजीपतियों के साथ पूँजीवादी होड़ में अपने को कमजोर पाने के कारण एक अलग स्वतंत्र क्षेत्र श्रमिक जनता का शोषण करने के लिये चाहते थे और पाकिस्तान के नाम से ये स्वार्थी धन-लोलुप पूँजीपति एक अलग क्रीड़ा-क्षेत्र की स्थापना करना चाहते थे। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिवर्तित परिस्थितियों से विवश होकर उनके प्रतिद्वन्द्वी दूसरे पूँजीपति साम्प्रदायिक आधार पर भारत के विभाजन के लिये तैयार हो गये थे। अपने विकास तथा प्रगति के लिये भारतीय पूँजीवादी वर्ग ब्रिटिश सरकार से मौलिक वैधानिक सुधार प्राप्त करना आवश्यक समझता था और इसके लिये आपसी समझौता भी जरूरी था। इसलिये अन्य पूँजीपति दूसरे प्रतिद्वन्द्वी मुस्लिम पूँजीपतियों के साथ मेल कायम करने के लिये आतुर हो उठे थे।

सी० आर० फार्मूला अल्पसंख्यक सम्प्रदाय की समस्या का हल नहीं

भारतीय पूँजीपति आपसी गँठबन्धन केवल वैधानिक सुविधाओं के लिये ही नहीं कर रहे थे, प्रत्युत भावी जन-क्रान्ति से अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिये भी सन् १९४२ ई० की अगस्त-क्रान्ति की शक्ति को अनुभवकर ब्रिटिश सरकार तथा भारतीय पूँजीवादी वर्ग समान रूप से भयभीत हो गये थे। राष्ट्रीय सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व ब्रिटिश विरोधी जन-

आन्दोलन का नेतृत्वकर शोषित जनता की क्रान्ति-उन्मुख शक्ति के विस्फोट का अवसर नहीं देना चाहता था। उसकी एक मात्र चेष्टा किसी प्रकार भयोत्पादक अवस्था का अन्त करने की थी। उसका यह स्वप्न तब तक सफल नहीं हो सकता था जब तक भारतीय पूँजीपति आपसी मेल न कायम कर लेते। इन सब प्रश्नों को हल करने के लिये उनकी आपसी एकता आवश्यक हो रही थी। इसकी पूर्ति के लिये हिन्दू-मुस्लिम एकता का चोंगा पहनाकर सी० आर० फार्मूला उपस्थित किया गया था। हिन्दू-मुस्लिम एकता की ओट में वे अपनी दुष्कामनाओं को पूरा करना चाहते थे। इस फार्मूला का एक मात्र ध्येय किसी प्रकार पूँजीपतियों में आपसी एकता स्थापित करना था। यह किसी प्रकार साम्प्रदायिक समस्या का हल नहीं था। इससे साम्प्रदायिक मनोमालिन्य किसी भी प्रकार कम नहीं हो सकता था, क्योंकि यह वैषम्य के आधार-भूत प्रश्न का स्पर्श तक नहीं करता, हल ढूँढना तो दूर रहा, वास्तविक प्रश्न अल्पसंख्यक समुदाय के अधिकारों का प्रश्न था, जिसे इस प्रस्ताव ने सरल बनाने के स्थान पर और जटिल बनाया। यह धर्म के आधार पर भारत का विभाजन करके कृत्रिम राष्ट्रों की रचना करना चाहता था, जिससे श्रमिक-शोषित जनता की क्रान्तिकारी संयुक्त शक्ति विभाजित हो निर्बल हो जायगी और पूँजीपति अधिक काल तक निर्बाध शोषण करने में सफल हो सकेगा; और भारती श्रमिक-शोषित जनता के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का विकास और उन्नति अनिश्चित काल के लिये धर्म और सम्प्रदाय के अन्धकार कूप में पड़कर उन्नति के पथ को भूली रहेगी।

८

देसाई-लियाकत पैक्ट

गांधी-जिन्ना मिलन कई दिनों तक चलने के बाद असफलता के साथ समाप्त हुआ। इससे साम्प्रदायिक समस्या सुलझने के बजाय और भी उलझ गई। भारतीय पूँजीवादी वर्ग निराशा के सागर में गोता खाने लगा। परन्तु इसकी यह अवस्था ज्यादा दिन तक नहीं रही; इसका क्षणिक जीवन रहा। वह चुपचाप नहीं बैठा रह सकता था। शीघ्र ही वह प्रयत्नशील हो उठा। सन् १९३९ ई० के सितम्बर के प्रथम सप्ताह के प्रारम्भ में साम्राज्यवादी युद्ध के आरम्भ होते ही भारत की ओर से ब्रिटिश भारतीय सरकार ने जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा की थी जिसके विरुद्ध में सेन्ट्रल एसेम्बली के कांग्रेसी सदस्यों को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की ओर से सेन्ट्रल एसेम्बली की बैठक में शामिल नहीं होने के लिये कहा गया था। तब से और सन् १९४५ ई० के प्रारम्भ तक वे शामिल नहीं हुए थे। सन् १९४५ ई० के प्रारम्भ में दिल्ली में केन्द्रीय एसेम्बली की बैठक होने जा रही थी। गांधीजी की राय

से श्री भुलाभाई देसाई—जो सेन्ट्रल एसेम्बली कांग्रेस पार्टी के नेता थे—ने कांग्रेसी सदस्यों को आगामी बैठक में सम्मिलित होने की हिदायत दी। श्री भुलाभाई देशाई और मि० लियाकत अली खाँ के नेतृत्व में कांग्रेस और लीग पार्टी ने ब्रिटिश सरकार का संयुक्त विरोध किया। एसेम्बली में संयुक्त मोर्चे के अतिरिक्त कांग्रेस-लीग समझौते की बातें हुईं, जिसके परिणामस्वरूप इनमें एक समझौता हुआ। यह समझौता आम तौर पर देसाई-लियाकत पैक्ट के नाम से विख्यात हुआ। श्री देसाई ने एक मसविदा तैयार किया, जिसे गांधीजी और जिन्ना साहब का आशीर्वाद प्राप्त था। कांग्रेस की ओर से श्री भुलाभाई देसाई और लीग की ओर से मियाँ लियाकत खाँ ने उस पर हस्ताक्षर किया था और श्री देसाई ने वायसराय को इसे दिया। यह प्रस्ताव इस प्रकार था कि केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना शीघ्र किया जाय जिसमें मुस्लिम लीग तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के बराबर-बराबर प्रतिनिधि होंगे और इसकी स्थापना के उपरान्त राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतागण जेलों से मुक्त किये जायँगे।

इसे पाते ही वायसराय ने लन्दन को इसे रवाना किया। इस पर विस्तृत रूप से बातें करने के लिये ब्रिटेन के युद्ध-परिषद् ने वायसराय को लन्दन बुलाया। वायसराय और युद्ध-परिषद् के सदस्यों के तथा ब्रिटिश मन्त्रिमंडल के सदस्यों के बीच काफी बातें हुईं। करीब छः-सात सप्ताह वहाँ रहने के बाद वायसराय भारत वापस आये। यहाँ वह एक नये प्रस्ताव के साथ वापस आये थे। भारत में पदार्पण करने के साथ-साथ उन्होंने राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्यकारिणी कमेटी के सदस्यों—जो

अहमदनगर फोर्ट में बन्द थे—को जेलों से छोड़ने की आज्ञा दी। तुरन्त कांग्रेस के नेतागण जेलों के बाहर आ गये।

अगस्त क्रान्ति और राष्ट्रीय सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व

इसी पुस्तक में अन्य स्थान में यह हम उल्लेख कर चुके हैं कि किस प्रकार की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में राष्ट्रीय कांग्रेस ने "भारत छोड़ो" का ऐतिहासिक प्रस्ताव पास किया था, उसे यहाँ फिर उल्लेख करना व्यर्थ ज्ञात होता है। इस ऐतिहासिक राष्ट्रीय प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि सम्भवतः जन-आन्दोलन का नेतृत्व करने में कांग्रेस समर्थ न होगी, इसके लिये नेतृत्व प्रदान करना सम्भव नहीं होगा। ऐसी हालत में प्रत्येक भारतवासी का अपनी बुद्धि, विचार तथा अवस्था के अनुसार इसे (प्रस्ताव को) कार्यान्वित करना कर्त्तव्य होगा। परन्तु अपने कार्यों के लिये वह स्वतः जिम्मेदार होगा।

इस ऐतिहासिक प्रस्ताव के पास होते ही राष्ट्रीय कांग्रेस के सभी नेतागण तथा सभी प्रान्तों के प्रमुख राजनीतिक कार्यकर्त्ता जेलों में ठूँस दिये गये। भारतीय शोषित-पीड़ित जनता अपनी आजादी की लड़ाई के संचालन करने के लिये स्वतंत्र हो गई। वह स्वतंत्र हो स्वतः अपने ढंग पर अगस्त क्रान्ति का संचालन करने लगी। जिसकी अग्नि की तेज को अनुभवकर केवल ब्रिटिश सरकार ही भयभीत नहीं हुई थी, बल्कि भारतीय पूँजीवादी वर्ग भी दहल उठा था और जन-आन्दोलन में अपने कब्र का स्वप्न देखने लगा था। संसार की जानकारी के लिये भारतीय अगस्त क्रान्ति के सम्बन्ध में

ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार ने "ह्वाइटपेपर" के नाम से एक घोषणा-पत्र प्रकाशित किया था, जो अन्य मुल्कों में बड़ी संख्या में बाँटा गया था। इसकी विशेषता यह थी कि भारतीय अगस्त क्रान्ति की जिम्मेदारी कांग्रेस के माथे पोता गया था।

पूँजीवादी संसार में कांग्रेस के नेताओं के जेलों में रखे जाने के खिलाफ आवाज उठने लगी थी। इधर भारतीय पूँजीवादी वर्ग तथा इसके अखबार राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ समझौता करने के हेतु आवाज उठाने लगे। इन सब के जवाब में ब्रिटिश सरकार ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि सन् १९४२ ई० को ९ अगस्त से जो कुछ हुआ और हो रहा है, सबों की जिम्मेदारी कांग्रेस नेताओं की है। सर्वप्रथम कांग्रेस नेताओं को अगस्त आन्दोलन की जिम्मेदारी को अस्वीकार करना इसके खिलाफ कहना होगा। ९ अगस्त के ऐतिहासिक राष्ट्रीय प्रस्ताव को वापस लेना होगा। उसके बाद ही सरकार उनकी रिहाई के ऊपर गौर करेगी।

गिरफ्तार करके गांधीजी आगा खाँ पैलेस में रखे गये थे। गिरफ्तारी के बाद आगा खाँ पैलेस से उन्होंने ने अंग्रेजी सरकार को कई पत्र लिखा था। उनमें से एक पत्र में स्पष्ट शब्दों में उन्होंने लिखा था कि अगस्त क्रान्ति की जिम्मेदारी कांग्रेस के ऊपर नहीं है। उन्होंने यह भी कहा था कि यह देश के लिये लाभदायक नहीं हुआ बल्कि घातक हुआ।

बम्बई में राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्यकारणी कमेटी के सदस्य गिरफ्तार करके सब के सब अहमदनगर फोर्ट में रखे गये थे। केवल बाबू राजेन्द्र प्रसाद वहाँ नहीं थे। वह पटना जिला जेल में रखे गये थे। अगस्त क्रान्ति की जिम्मेदारी

ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस के माथे मढ़ी। इसका जवाब अहमदनगर फोर्ट से कांग्रेस की कार्यकारणी कमेटी के सदस्यों की ओर से कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद ने दिया। वायसराय के पत्र में इन्होंने स्पष्टत: लिखा कि कांग्रेस ने न तो जन-आन्दोलन का प्रारम्भ ही किया और न इसका संचालन ही किया। अत: इसकी जिम्मेदारी किसी भी प्रकार कांग्रेस की नहीं है। जेल के बाहर आने के बाद भी कांग्रेस की कार्यकारिणी कमेटी ने इसी प्रकार का विचार प्रकट किया था, जिसके विरुद्ध में सन् १९४५ ई० के अन्त में श्रीमती अरुणा आसफ अली और श्री अच्युत पटवर्धन ने फरारी की हालत में ही एक संयुक्त वक्तव्य दिया था।

हम ऊपर देख चुके हैं कि किस प्रकार की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में गांधीजी जेल के बाहर आये थे। उसे फिर उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। हम यह भी देख चुके हैं कि भारतीय पूँजीवादी वर्ग अपने विकास तथा प्रगति के लिये ब्रिटिश सरकार के साथ समझौता करने के लिये आतुर हो उठा था। परन्तु इसके लिये अनुकूल अवस्था पैदा करना इसके (भारतीय पूँजीवादी वर्ग के) लिये सम्भव नहीं था। इसके इस प्रकार के कार्यों को तो बुद्धि-जीवी वर्ग सम्पन्न किया करता है। जेल से बाहर आते देर भी नहीं हुआ कि गांधीजी ब्रिटिश सरकार के साथ समझौते के लिये अनुकूल अवस्था तैयार करने में व्यस्त हो गये थे। हम देख चुके हैं कि अगस्त क्रान्ति से विकसित भारतीय शोषित-पीड़ित जनता के क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चे को फरारी जीवन व्यतीत करते हुए राजनीतिक कार्यकर्ता भावी क्रान्तिकारी जन-आन्दो-

लन के लिये संगठित कर रहे थे, जिसे भारतीय पूँजीवादी वर्ग तथा ब्रिटिश सरकार अपने अस्तित्व के लिये घातक समझती थी। इसे कायम रहते हुए भारतीय पूँजीवादी वर्ग के साथ समझौता करना ब्रिटिश सरकार व्यर्थ समझती थी। अतः सर्वप्रथम गांधीजी का आक्रमण भारतीय शोषित-पीड़ित जनता के क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चे के ऊपर हुआ। उन्होंने आदेश दिया कि जो लोग फरार थे, वे तुरन्त पुलिस को आत्म समर्पण कर दें। इसी जन-मोर्चे के ऊपर गांधीजी का दूसरा हमला यह हुआ था कि उन्होंने एक वक्तव्य में अगस्त क्रान्ति को देश के लिये घातक कहा था। इसके ऊपर इनका तीसरा आक्रमण यह था कि भारतवर्ष के साम्प्रदायिक विभाजन के आधार पर मुस्लिम लीग के साथ समझौते के लिये जिन्ना साहब से उन्होंने कई दिनों तक बातें की।

यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारतीय शोषित जनता अगस्त क्रान्ति को क्या समझती थी। जेलों के बाहर आने पर कांग्रेस के सुधारवादी नेतृत्व ने यह अनुभव किया कि ब्रिटिश सरकार का दमन भी भारतीय जनता की क्रान्तिकारी प्रवृत्ति को कुचल नहीं सका। इसने यह भाँप लिया कि अगस्त क्रान्ति के खिलाफ आवाज उठाकर जनता को अपने प्रभाव में रखना सम्भव नहीं हो सकता था। अतः इसे अपनाना ही इसने बुद्धिमानी समझा। सर्वप्रथम जेल के बाहर होते ही श्री जवाहरलाल नेहरूजी ने एक वक्तव्य में स्पष्टतः कहा कि सन् १९४२ ई० की अगस्त क्रान्ति की सारी जिम्मेदारी कांग्रेस के ऊपर है और यह कांग्रेस का ही आन्दोलन था। हम इसकी जिम्मेदारी लेते हैं। इसके बाद सभी कांग्रेसी

नेतागण ने अगस्त क्रान्ति के सम्बन्ध में करीब-करीब इसी प्रकार का कहना प्रारम्भ किया। देश के सारे के सारे अखबार पूँजीपतियों के हाथों में थे और हैं। फिर क्या था, इन सबों का यह प्रयत्न होने लगा कि इस प्रकार की अवस्था पैदा कर दें कि सभी भारतीय यही समझें कि अगस्त क्रान्ति कांग्रेस के द्वारा संचालित हुई और यह कांग्रेस का आन्दोलन था। इसमें इन्हें काफी सफलता प्राप्त हुई।

इस पुस्तक में अन्य स्थान में हम देख चुके हैं कि राष्ट्रीय पूँजीवादी-सुधारवादी नेतृत्व ने क्रान्ति विरोधी होते हुए क्यों "भारत छोड़ो" का प्रस्ताव पास करवाया। इसे यहाँ फिर उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। हम देख चुके हैं कि तीव्र गति के साथ भारतीय शोषित जनता क्रान्ति पथ पर अग्रसर होती जा रही थी। हजार प्रयत्नों के बावजूद भी राष्ट्रीय सुधारवादी नेतृत्व उसे नहीं रोक सका। यह संसार का इतिहास बतलाता है कि जब सुधारवादी नेतृत्व आम जनता को क्रान्ति-पथ पर अग्रसर होने से नहीं रोक पाता, उस समय बिना किसी प्रकार के क्रान्तिकारी संगठन और क्रान्तिकारी तैयारी के क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन का नारा बुलन्द करता है और बजाय जन-आन्दोलन को जन क्रान्ति में विकसित करने को आराजकता में परिवर्तित करने का प्रयास करता है। ठीक सन् १६४२ ई० में भारतीय सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व ने किया। यह कभी भी क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन को संचालितकर शासन सत्ता पर कब्जा करना नहीं चाहता था। अगर यह ऐसा चाहता, तो पहले जन-क्रान्ति के अनुकूल संगठन तथा तैयारी किये होता। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में हिन्दुस्तान

के बाहर संगठित आजाद हिन्द फौज के साथ सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न करता। आजाद हिन्द फौज के साथ सम्पर्क कायम होने के बाद बाहर से नेताजी बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज हिन्दुस्तान में कायम ब्रिटिश साम्राज्यवाद के ऊपर आक्रमण करती और अन्दर में कांग्रेस के नेतृत्व में शोषित जनता क्रान्ति का झंडा फहराती। अगर ऐसा हुआ होता, तो इसके परिणामस्वरूप भारतवर्ष का इतिहास कुछ और ही होता। साम्प्रदायिक तथा धार्मिक आधार पर पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में भारतवर्ष का विभाजन नहीं हुआ होता और न पूँजीवादी वर्गीय सरकार की स्थापना हुई होती, बल्कि आज किसान-मजदूरों की क्रान्तिकारी हुकूमत होती।

शिमला सम्मेलन

ऊपर हम यह उल्लेख कर चुके हैं कि ब्रिटेन से वापस आते ही वायसराय ने कांग्रेस के नेताओं को जेलों से छोड़ने की आज्ञा दे दी थी। वे जेलों के बाहर आये। उधर वायसराय ने भारत के विभिन्न दलों के नेताओं को शिमला में बातें करने के लिये निमन्त्रित किया। राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग की कार्यकारिणी कमेटी के सदस्यों के रहने वगैरह का प्रबन्ध भी किया। शिमला में जमघट जमा हुआ। गांधीजी भी वहाँ पहुँचे। लेकिन इस बार कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में नहीं, बल्कि कांग्रेस के साथ-साथ ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार के प्रतिनिधि वायसराय के सलाहकार और दार्शनिक के रूप में वहाँ पहुँचे। नेताओं के शिमला पहुँचने के बाद वायसराय की

अध्यक्षता में विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन प्रारम्भ हुआ और कई दिनों तक चलता रहा। इसकी प्रगति से यह ज्ञात होने लगा था कि केवल ब्रिटिश सरकार के साथ ही नहीं, बल्कि कांग्रेस और लीग के साथ भी समझौता हो जायेगा। यही कारण था कि प्रेस-प्रतिनिधियों के बीच वक्तव्य देते हुए राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद ने कहा था कि शीघ्र ही राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के बाद हम (भारतीय) अपनी लड़ाई लड़ेंगे।

कांग्रेस और लीग ने कुछ काल के लिए ब्रिटिश वायसराय का नेतृत्व स्वीकारकर उसकी अध्यक्षता में आपस में समझौता का प्रयास किया था। सम्मेलन के प्रारम्भ में अध्यक्ष के पद से वायसराय ने भूलने और क्षमा करने 'forget and forgive' के लिए सबों से अनुरोध किया था। इसके बाद कुछ परिवर्तित रूप में सन् १९४२ ई० के मार्च के क्रिप्स प्रस्ताव को सम्मेलन के सामने रखा था। यह नया प्रस्ताव इस प्रकार का था कि तात्कालिक राष्ट्रीयसरकार की स्थापना के हेतु वायसराय की कौन्सिल फिर से गठित होगी, जिसमें पांच सदस्य राष्ट्रीय कांग्रेसी, ५ सदस्य मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि और तीन अन्य अल्प-संख्यक जातियों के प्रतिनिधि होंगे। इसमें मुस्लिम सदस्य ही केवल मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि होंगे।

साथ ही साथ इस तथाकथित राष्ट्रीय सरकार को सक्रिय हो युद्ध के प्रयत्न में भाग लेना होगा। युद्ध के उपरान्त आजादी भारतवर्ष को प्रदान की जायगी।

करीब-करीब राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग इसे स्वीकार कर चुकी थी। लेकिन अन्त में इस सम्मेलन की भी वही हालत

हुई जो पहले किये गये प्रयत्नों की हुई थी। केन्द्र में ब्रिटिश साम्राज्यवादी यूनियन जैक के नीचे वायसराय की राष्ट्रीय कौन्सिल में कांग्रेस और लीग के बराबर-बराबर सदस्य होंगे, इसे दोनों ने स्वीकार कर लिया था; लेकिन मुस्लिम लीग यह नहीं चाहती थी कि कांग्रेस किसी मुसलमान को नामजद करे, और कांग्रेस अपने राष्ट्रीय रूप को बनाये रखने के लिए इस बात पर अड़ी थी। अतः अन्त में असफलता के साथ शिमला-सम्मेलन भी खत्म हुआ।

दुःख के साथ सम्मेलन को खत्म करते हुए ब्रिटिश वायसराय ने सबों से इस बात का अनुरोध किया था कि इसकी असफलता के लिए एक दूसरे पर दोषारोपण न करें। सबों ने ईमानदारी के साथ समझौता के लिए प्रयत्न किया, लेकिन हम विफल रहे। फैली हुई मौजूदा विषमता को बढ़ने न देने का हम सब प्रयत्न करते रहें। समझौते का प्रयत्न यहीं पर खत्म नहीं हो गया। आगे भी हम सब करते रहेंगे।

सम्मेलन की असफलता के उपरान्त गांधीजी ने साफ-साफ कहा—"हम विफल क्यों हुए? इसलिए नहीं कि अंग्रेज बदमाश हैं, बल्कि इसलिए हम असफल रहे कि हम मूर्ख और बदमाश हैं।"

राजनीतिक अवस्था

यह ठीक है कि सन् १९४२ ई० की अगस्त-क्रांति असफल हुई। यह भी ठीक है कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी दमन के कारण क्षणिक काल के लिए भारतीय जनता में आतंक अवश्य फैल गया था। भारतीय जनता की बगावत की प्रवृत्ति कुछ ठंडी अवश्य हो गयी थी; लेकिन यह कुचली नहीं जा सकी थी।

अगस्त-क्रांति की अग्नि में भारतीय शोषित जनता का त्याग व्यर्थ नहीं गया। इससे (अगस्त-क्रान्ति से) भारतीय शोषित जनता का क्रान्तिकारी जन-मोर्चा विकसित हुआ। अगस्त के क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन से काफी क्रान्तिकारी जन-शक्ति उत्पन्न हुई, जिसे फरारी की अवस्था में रहकर राजनीतिक कार्यकर्त्ता भावी क्रान्ति के लिए संगठित कर रहे थे और इन्हीं के नेतृत्व में इन जन-शक्तियों के आधार पर शोषित श्रमिक जनता के क्रातिकारी मोर्चे का निर्माण तथा विकास हो रहा था। सन् १९४४ ई० के प्रारम्भ में नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज के आक्रमण ने इसे और भी दृढ़ और मजबूत बना दिया था। इसके परिणाम-स्वरूप भारतीय जनता का क्रान्ति की प्रवृत्ति क्रमशः उग्र रूप धारण करने लगा था।

अपने जीवन की सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था से परेशान होकर भारतीय नौजवान भारतीय ब्रिटिश फौज में आर्थिक अवस्था को सुधारने के हेतु शामिल हुए थे। वे हिन्दुस्तान से बाहर साम्राज्यवादी युद्ध के विभिन्न मोर्चे पर भेजे गये थे। अन्य आजाद मुल्कों की फौज के सम्पर्क में आने का उन्हें अवसर प्राप्त हुआ था। उनकी और अपनी अवस्था का ज्ञान उन्हें हुआ। उन्हें यह अनुभव होने लगा कि आजाद मुल्कों की फौजों के सामने गुलाम देश की फौज का विशेष महत्व नहीं रहता है, भले ही वे अधिक बहादुरी युद्ध-क्षेत्र में दिखायें। इसके कारण उनके अन्दर राष्ट्रीयता की उग्र भावना विकसित होने लगी और देश-भक्ति कूट-कूट-कर अन्दर भरी जाने लगी। इतना ही नहीं, श्रमिक-शोषित

पीड़ित जनता की गुलामी और शोषण से आजादी की लड़ाई का प्रभाव उनके ऊपर पड़ने लगा। हम सब जानते हैं कि यूनान की शोषित जनता की क्रान्तिकारी फौजों ने यूनान से जर्मन फौजों को मार भगाया था। जर्मन फौजों के यूनान से बाहर होते ही यूनानी शोषित-श्रमिक जनता शासन की बागडोर अपने हाथों में लेने का प्रयत्न करने लगी और कामयाबी के साथ राजसत्ता पर कब्जा भी कर लिया था। लेकिन वहाँ की प्रतिक्रियावादी शक्तियों के साथ गठबन्धनकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद यूनानी शोषित-पीड़ित जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों को कुचलकर यूनानी प्रतिक्रियावादियों के हाथों में शासनसत्ता सौंपने का प्रयास करने लगा। यूनानी शोषित जनता की क्रान्तिकारी शक्ति को कुचलने के हेतु भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यवादी फौजें भी भेजी गयीं। परन्तु बहुत से भारतीय सिपाहियों ने केवल लड़ने से ही इन्कार नहीं किया बल्कि यूनानी जनता की क्रांतिकारी फौजों के साथ होकर यूनानी प्रतिक्रिया-वादी और ब्रिटिश साम्राज्यवादी फौजों के खिलाफ लड़ने लगी थीं। इस प्रकार की क्रान्तिकारी भावनाओं से भारतीय सेना ओत-प्रोत हो रही थी।

आटम् बम्ब के प्रयोग के परिणामस्वरूप पराजय स्वीकार-कर मित्र-राष्ट्रों के सामने जापान साम्राज्यवाद ने भी घुटने टेक दिये। इसके पहले ही पंचायती रूस की लाल फौज के आक्रमण को नाजी जर्मनी सहन नहीं कर सका था और मित्र-राष्ट्रों की सेनाओं के सामने जर्मनी आत्म-समर्पण कर चुका था। जापान के घुटना टेकने के साथ-साथ दूसरे संसारव्यापी युद्ध का अन्त हुआ। आजाद हिन्द फौज के बहुत से सिपाही

और सेनानायक गिरफ्तार करके भारतवर्ष को लाये गये। उन्हें कड़ी से कड़ी सजा देकर सरकार भारतीय ब्रिटिश फौज के अन्य सिपाहियों को आतंकित करना चाहती थी। सर्वप्रथम आजाद हिन्द फौज के तीन प्रमुख आफिसर–शाहनेवाज, धिल्लन और सहगल के ऊपर दिल्ली के लाल किला में मुकद्मा चलाया गया। आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों को छुड़ाने के लिए देश भर में स्वतः जन-आन्दोलन होने लगा। दिन प्रतिदिन यह शक्तिशाली ही होता गया। सन् १९४२ ई० में भारतीय शोषित जनता ने क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन को स्थगित किया था, सन् १९४५ ई० में आजाद हिन्द फोज के वीरों को छुड़ाने के लिए उसने वहीं से आरम्भ किया था। इस समय भारतीय जनता जिस प्रकार की क्रान्तिकारी शक्ति और दृढ़ता का परिचय दे रही थी, वैसी दृढ़ता और शक्ति सन् १९४२ ई० की अगस्त-क्रान्ति में भी नहीं दिखाई दी थी। सन् १९४५ ई० के नवम्बर महीने के चौथे सप्ताह में कलकत्ता के विद्यार्थियों और आम जनता ने क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी के नेतृत्व में जिस क्रान्तिकारी दृढ़ता तथा शक्ति का परिचय दिया, उसे देखकर राष्ट्रीय पूँजीवादी सुधारवादी नेतृत्व तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार अवाक् रह गयी। स्वप्न में भी उन्हें ऐसी आशा नहीं थी। तीन दिनों तक लाखों की तादाद में सड़कों पर गोलियों के बीच आम जनता डटी रही। इस समय कलकत्ता की आम जनता साम्प्रदायिक भेद-भाव को कतई भूल गयी थी। हिन्दू-मुसलमान का खून एक ही धारा में बह रहा था। क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी के प्रमुख विद्यार्थी कार्यकर्त्ता अमर शहीद साथी रामेश्वर बनर्जी सर्वप्रथम ब्रिटिश सरकार की गोली के शिकार

हुए। इनके बाद ही साथी आलम भी ब्रिटिश गोली के शिकार हुए। इस प्रकार एक के बाद एक बहुत से नौजवान गोलियों के शिकार तीन दिनों तक होते रहे। अन्त में जनता की दृढ़ता और शक्ति के सामने ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा। यह थी भारतीय जनता की क्रान्तिकारी शक्ति।

यहाँ पर यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि सन् १६४५ ई० के नवम्बर के क्रान्तिकारी जन-प्रदर्शन का नेतृत्व प्रधानतः क्रान्तिकारी समाजवादी विद्यार्थी कार्यकर्त्ताओं का था। इसका संचालन मुख्यतः बंगाल प्रान्तीय स्टुडेन्ट फेडेरेशन (१८ मिर्जापुर स्ट्रीट) के द्वारा होता था, जिसमें बहुमत क्रान्तिकारी समाजवादी कार्यकर्त्ताओं का था। कलकत्ता के इस जन-प्रदर्शन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि राष्ट्रीय कांग्रेस के सुधारवादी नेताओं के विरोध के बावजूद भी जनता दृढ़ता के साथ डटी रही और यह प्रमाणित कर दिया कि राष्ट्रीय कांग्रेस के सुधारवादी नेतृत्व के बिना भी जनता का आन्दोलन संचालित हो सकता है। इसके अतिरिक्त, इससे स्पष्टतः यह भी ज्ञात होने लगा कि शोषित-पीड़ित जनता के अन्दर स्वतन्त्र क्रान्तिकारी नेतृत्व विकसित होने लगा था। कलकत्ता की तरह ही सारे देश में जन-आन्दोलन स्वतः संचालित हो रहा था।

देश भर में और विशेषतः कलकत्ता के जन-आन्दोलन में दृढ़ता और शक्ति तथा इसके स्वतंत्र क्रान्तिकारी नेतृत्व को विकसित होते देखकर ब्रिटिश सरकार के साथ भारतीय पूँजीवादी वर्ग तथा राष्ट्रीय सुधारवादी नेतृत्व भी भयभीत हो उठे। कलकत्ता की घटना के बाद तुरन्त ही ब्रिटिशसरकार ने यह घोषणा की कि किसी प्रकार का हिंसात्मक कार्य सहन नहीं किया

जायगा। तुरन्त सैनिक शक्ति प्रयोग द्वारा कुचल दिया जायेगा। ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार की इस घोषणा के तीन-चार दिनों बाद कलकत्ता में राष्ट्रीय कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटी की बैठक हुई। गांधीजी भी बैठक में शामिल होते रहे। एक प्रस्ताव द्वारा कलकत्ता की घटना की निन्दा की गयी और कहा गया कि इस प्रकार का आन्दोलन देश के लिए घातक होगा और भारतीय जनता को अहिंसा के मन्त्र का पाठ फिर से सुनाया गया। इस प्रस्ताव का मुख्य उद्देश्य था ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार की घोषणा का समर्थन करना, जिससे समझौते का मार्ग साफ रहे।

भारतीय जनता ने इस प्रस्ताव की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। देता भी क्यों? देना ही तो देश के लिए घातक होता। अपनी आजादी के वीर सिपाहियों को छुड़ाने के लिए उसने (भारतीय जनता ने) कमर कस ली थी। दिन-प्रतिदिन उसका आन्दोलन उग्रतर तथा शक्तिशाली होता गया। उधर दिल्ली के लाल किले में नाटक खेला जा रहा था। कांग्रेस के बड़े-बड़े नेतागण भी उसमें हाथ बटा रहे थे। अन्त में भारतीय शोषित-पीड़ित जनता की संयुक्त क्रान्तिकारी शक्तियों के सामने ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा और आजाद हिन्द फौज के सेनानायकों को मुक्त कर दिया। यही तो है जनता की क्रान्तिकारी शक्ति।

आजाद हिन्द फौज की क्रान्तिकारी भावनाओं का प्रभाव भारतीय आम जनता तक ही सीमित नहीं रह सकी। इसका प्रभाव ब्रिटिश भारतीय फौज के ऊपर भी हुआ। अभी आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों को छुड़ने का जन-आन्दोलन खत्म

भी होने नहीं पाया था कि कराँची, बम्बई वगैरह कई स्थानों में आर० आई० एन० ने बगावत कर दी। गोली का जवाब गोली से देना इन्होंने प्रारम्भ कर दिया। इसकी आग अन्य छावनियों में भी भभक उठने ही वाली थी कि कांग्रेस के सुधारवादी नेताओं ने प्रयत्न करके आत्म-समर्पण करवा दिया। राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के बाद भी वे वीर सिपाही जेलों के सींकचों के भीतर सड़ रहे हैं। फौज के अतिरिक्त, पुलिस, विशेषत: आर्मड पुलिस, में बगावत की भावना क्रमश: उग्रतर होती जा रही थी। रेलवे मजदूर हिन्दुस्तान में आम हड़ताल करने के लिए कमर कसे हुए थे। डाकखाने में काम करने वालों की हड़ताल हुई थी। स्कूलों के मास्टर सब आर्थिक अवस्था से परेशान थे। हर सरकारी महकमा में परेशानी और बेचैनी बढ़ती जा रही थी। यह कहना यहाँ पर अनुचित नहीं होगा कि देश भर में जन-क्रान्ति के लिए अनुकुल भौतिक परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी।

ऐसी विकसित भौतिक परिस्थिति में भारतीय केन्द्रीय और प्रान्तीय एसेम्बली का चुनाव प्रारम्भ हुआ। गैर मुस्लिम स्थानों से कांग्रेस सदस्य बहुमत में चुने गये। वह चुने भी जाते तो क्यों नहीं? सभी राजनीतिक संस्थाएँ। आज तक इसका समर्थन करती रही थीं। परन्तु मुस्लिम स्थानों से कांग्रेस सदस्य नाम-मात्र के चुने गये। बहुमत में मुस्लिम लीग के सदस्य चुने गये। इसी पुस्तक में यह देख चुके हैं कि सन् १९३७ ई० के प्रान्तीय एसेम्बली के चुनाव में मुस्लिम लीग के सदस्यों को कम वोट मिला था। लेकिन सन् १९४६ ई० में जबकि भारतीय जनता में राजनीतिक जागृति अधिक थी, तब मुस्लिम लीग

ऐसी प्रतिक्रियावादी संस्था को क्यों अधिक मुस्लिम वोट प्राप्त हुआ ? यह स्वाभाविक प्रश्न है।

हम उल्लेख कर चुके हैं कि सन् १६४० ई० में अपने लाहौर वार्षिक अधिवेशन में लीग ने पाकिस्तान की माँग का प्रस्ताव पास किया था। उस समय मुसलमान भी बड़ी तादाद में इसके विरोधी थे और इसके विरुद्ध प्रचार करते थे। उसके उपरान्त समझौते के प्रत्येक प्रयत्न में ब्रिटिश सरकार ने विशेषतः इसकी ओर ध्यान दिया है। सन् १६४२ ई० के क्रिप्स प्रस्ताव द्वारा सर्वप्रथम ब्रिटिश सरकार ने इसका समर्थन किया था। उसके बाद सी० आर० फार्मूला के आधार पर गांधी-जिन्ना मिलन ने भी इसका समर्थन किया था। शिमला-सम्मेलन के सामने ब्रिटिश साम्राज्यवादी प्रस्ताव द्वारा भी इसका समर्थन हुआ। इस प्रकार भारतीय मुसलमान को यह जान पड़ने लगा कि मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग सही है। इस प्रकार के ख्याल का होना मुसलमान जनता के लिए स्वभाविक ही था। पाकिस्तान के आधार पर मुस्लिम लीग चुनाव लड़ने लगी थी।

कांग्रेस जन-आन्दोलन की नीति की तिलांजलि दे चुकी थी। क्रान्तिविरोधी सुधारवादी वैधानिक नीति का अवलम्बन इसने किया था। इसका असर मुसलमान जनता के ऊपर और भी बुरा पड़ा।

तीसरी बात यह थी कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद के नाम पर भारतीय स्टेलिनवादी लीग की पाकिस्तान की माँग का समर्थन कर रहे थे। सन् १६४२ ई० की अगस्त-क्रान्ति में भारतीय जनता के विरुद्ध ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार

के साथ देने के कारण तथाकथित कम्युनिस्ट कांग्रेस से अलग कर दिये गये थे। उसके उपरान्त उनका नारा कांग्रेस-लीग-कम्युनिस्ट एकता का था। 'गाधीजी राष्ट्रीय पिता और जिन्ना साहेब राष्ट्रीय चाचा हैं' के आधार पर इस एकता के नारे को देश भर में स्टालिनवादी बुलन्द कर रहे थे। राष्ट्रीय मुसलमानों के खिलाफ पाकिस्तान के आधार पर चुनाव में लागी सदस्यों का समर्थन तथा सहायता वे कर रहे थे। इसका भी असर भारतीय आम मुसलमानों के ऊपर मुस्लिम लीग के पक्ष में ही पड़ा। अतः इन सब बातों से प्रभावित होकर अधिक बहुमत में मुसलमानों ने मुस्लिम लीग के सदस्यों को चुना और चुनना भी तो स्वाभाविक ही था।

ब्रिटिश कैबिनेट मिशन

युद्ध के प्रारम्भ होते ही कुछ महीने के अन्दर फ्रांस का पतन हो गया था। फ्रांस से बुरी तरह जान बचाकर ब्रिटिश फौजें भाग सकीं। यह ज्ञात हो रहा था कि थोड़े दिन के अन्दर ब्रिटेन भी नात्सी जर्मनी की फौजों के सामने घुटना टेक देगा। युद्ध की ऐसी अवस्था में ब्रिटेन के शासन की बागडोर मि० चर्चिल ने अपने हाथों में ली और सन् १९४५ ई० तक ब्रिटेन के प्रधान-मन्त्री के पद पर विद्यमान रहे। इसके नेतृत्व में युद्ध-अवस्था अन्त में ब्रिटेन के पक्ष में परिवर्तित हो गयी थी। इसके सफल नेतृत्व में ब्रिटेन पराजय होने से ही नहीं बचा, नात्सी जर्मनी को परास्त करके हिटलर की फौज को एक दम ध्वंस कर डाला। इसके कारण ब्रिटेन के राष्ट्रीय वीर थे। परन्तु वहाँ (ब्रिटेन) की श्रमिक जनता युद्ध से परेशान हो रही थी, युद्ध के संचालन के बोझ से दबी जा

रही थी। वह अनुभव करने लगी थी कि यह युद्ध प्रधानतः ब्रिटेन के साम्राज्यवादी-पूँजीवादी वर्ग के स्वार्थ में ही संचालित हो रहा है यही कारण था कि मि० चर्चिल "राष्ट्रीय वीर" होने के बावजूद भी ब्रिटेन की श्रमिक जनता उसकी साम्राज्यवादी-पूँजीवादी वर्गीय पार्टी—"कन्जर्वेटिव पार्टी"—के खिलाफ हो रही थी। अभी संसारव्यापी साम्राज्यवादी युद्ध खत्म नहीं हुआ था। पंचायती रूस की लाल सेना की चोट से नात्सी जर्मनी की फौज चकनाचूर हो गयी थी और मित्र-राष्ट्रों की फौजों के सामने जर्मनी आत्म-समर्पण कर चुका था। लेकिन संसार के अन्य क्षेत्रों में युद्ध चल रहा था। ऐसी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में ब्रिटेन ने नये चुनाव की घोषणा की। वहाँ की जनता ने मजदूर पार्टी के सदस्यों को बहुमत में चुना। ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में लेबर पार्टी का बहुमत हुआ। अभी तक मि० चर्चिल के नेतृत्व में "संयुक्त सरकार" थी। चुनाव के परिणाम-स्वरूप सन् १९४५ ई० में चर्चिल कैबिनेट खत्म हुआ और मि० एटली के नेतृत्व में ब्रिटिश लेबर पार्टी ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ली।

ब्रिटेन में लेबर पार्टी की हुकूमत होने के उपरान्त भारत के साथ समझौते का प्रयत्न होने लगा था। सर्व-प्रथम यह प्रयत्न शिमला-सम्मेलन के रूप में सामने आया। इसमें असफल होने पर भारतीय पूँजीवादी वर्ग और ब्रिटिश साम्राज्य-वादी-पूँजीवादी वर्ग हताश होकर बैठ नहीं गये। इनका प्रयत्न जारी रहा। शिमला-सम्मेलन की असफलता के बाद भारतवर्ष की केन्द्रीय और प्रान्तीय एसेम्बलियों के शीघ्र चुनाव की घोषणा की गयी। कुछ महीनों के अन्दर चुनाव हुआ, जिसमें

हिन्दुओं ने बहुमत में कांग्रेस सदस्यों को और मुसलमानों ने मुस्लिम लीग के सदस्यों को बहुमत में चुना इससे स्पष्ट हो गया कि किसी भी कारण से भारतीय मुसलमान अधिकांश मुस्लिम लीग के साथ हैं। बंगाल और सिन्ध में मुस्लिम लीग मन्त्रि-मण्डल, पंजाब में युनियनिस्ट-कांग्रेस संयुक्त मन्त्रि-मंडल और बाकी प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रिमंडल की स्थापना हुई।

चुनाव का नतीजा प्रकाशित होते ही ब्रिटेन के ब्रिटिश कैबिनेट मिशन के भारत में पदार्पण की घोषणा की गयी। कुछ दिनों के अन्दर यह मिशन दिल्ली में पहुँच गया। हफ्तों तक विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों तथा व्यक्ति विशेष के साथ यह बातें करता रहा। राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच किसी प्रकार का समझौता कराने का प्रयत्न उसने किया। यहाँ यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि भारतीय पूँजीवादी वर्ग का आंतरिक संघर्ष ब्रिटिश और भारतीय पूँजीवादी वर्ग के बीच के संघर्ष से कहीं ज्यादा तीव्र हो रहा था जिसके कारण ब्रिटिश सरकार के खिलाफ भारतीय पूँजीवादी वर्ग किसी भी प्रकार का आन्दोलन चलाने को तैयार नहीं था। यहाँ पर हम यह न भूलें कि भारतीय पूँजीवाद का विकास अन्य पूँजीवादी देशों के जैसा स्वाभाविक रूप से नहीं हुआ था, और दूसरी बात यह है कि दूसरे संसारव्यापी युद्ध-काल में इसका अधिक विकास हुआ था। इसके साथ ही साथ भारतीय पूँजीवादी वर्ग का आन्तरिक संघर्ष तीव्र गति से भयानक रूप धारण करता गया। पूँजीवादी होड़ में मुस्लिम पूँजीपति हिन्दू-पूँजीपतियों के सामने अपने को खड़े होने में कमजोर अनुभव करते रहे; अतः अपने विकास तथा प्रगति

के लिए साम्प्रदायिक आधार पर भारतवर्ष का विभाजन आवश्यक समझने लगे थे। परन्तु हिन्दू पूँजीपति अपने पूँजीवादी शोषण के क्षेत्र के कम होने के भय से इसे स्वीकार करने में हिचक रहे थे। अतः हफ्तों तक बातचीत होने के उपरान्त इसकी भी वही हालत हुई जो और प्रयत्नों की पहले हो चुकी थी। इसके विफल होते ही ब्रिटिश कैबिनेट मिशन भारत से प्रस्थान करने की तैयारी करने लगा।

ब्रिटिश कैबिनेट मिशन और भारतीय वामपक्षीय पार्टियाँ

आज भारतवर्ष में बहुत-सी वामपक्षी पार्टियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। यहाँ पर हम सबों की कैबिनेट मिशन के प्रति नीति का उल्लेख नहीं कर सकेंगे। केवल क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी (स्टालिन-वादी) और फारवर्ड ब्लाक की नीति का हम उल्लेख करेंगे।

हम ऊपर देख चुके हैं कि किस प्रकार की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में ब्रिटिश कैबिनेट मिशन का भारतवर्ष में आगमन हुआ। उसे उल्लेख करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। एक ओर भारतीय श्रमिक-शोषित-पीड़ित जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों के खिलाफ ब्रिटिश साम्राज्य-वादी सरकार भारतीय सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व के सहयोग से ब्रिटिश साम्राज्यवादी-पूँजीवादी वर्ग और भारतीय पूँजीवादी वर्ग के प्रतिक्रियावादी गुट का निर्माण करने के लिए आतुर हो रही थी। इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु ब्रिटिश कैबिनेट मिशन का हिन्दुस्तान में आगमन हुआ था। दूसरी ओर लीग और कांग्रेस के नेतृत्व से अलग हो अपने आन्दोलन से क्रान्तिकारी नेतृत्व का निर्माण तथा विकास करने में भारतीय शोषित-

पीड़ित जनता व्यस्त थी। ऐसी परिस्थिति में "भारतीय समाजवाद" के कांग्रेस सोशलिस्ट नेतागण जेलों के बाहर आये और तुरन्त श्रमिक-शोषित जनता को गुमराह करने का प्रयास करने लगे। कांग्रेस के सुधारवादी-पूँजीवादी नेतृत्व के प्रभाव से निकलकर भारतीय शोषित जनता स्वतंत्र नेतृत्व की स्थापना कर रही थी, जो भावी क्रान्ति के लिए आवश्यक था। कांग्रेस सोशलिस्ट नेतागण क्रान्ति की बातें तो ऊँची आवाज में करते थे लेकिन उनकी क्रान्ति की बड़ी-बड़ी बातों में तलवार छिपी थी, जिसे भारतीय समाजवाद की बलि-वेदी पर भारतीय शोषित जनता के विकसित क्रान्तिकारी नेतृत्व की हत्या करने के हेतु तेज किया जा रहा था। क्रान्ति की बड़ी-बड़ी बातें करते हुए कांग्रेस सोशलिस्ट नेतागण यह कहा करते थे कि भावी क्रान्ति में प्रान्तों के हमारे प्रधान-मन्त्री लोग स्वयं गिरफ्तार नहीं होंगे, बल्कि गवर्नर की गिरफ्तारी की आज्ञा देंगे। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कांग्रेस के नेतृत्व में भावी क्रान्ति होगी। अर्थात् भावी क्रान्ति का संचालन कांग्रेस का सुधारवादी-पूँजीवादी नेतृत्व करेगा, जिसके प्रभाव से जनता अलग हो रही थी। कैबिनेट मिशन के विषय में वे मौन थे। कई स्थानों में श्री जयप्रकाश नारायण-जी ने यह स्पष्ट कर दिया था कि हमें समझौते के विषय में चिन्ता नहीं करनी है। हमारे राष्ट्रीय नेता काफी योग्य हैं। वे देश को नहीं बेचेंगे। वे जो कुछ करेंगे देश के लाभ की दृष्टि से ही करेंगे। इस प्रकार सुधारवादी-पूँजीवादी नेतृत्व को दृढ़ करने में कांग्रेस सोशलिस्ट नेतागण लगे हुए थे।

अभी भी कांग्रेस-लीग-कम्युनिस्ट-संयुक्त मोर्चे का नारा

कम्युनिस्ट बुलन्द कर रहे थे। ब्रिटिश कैबिनेट मिशन के प्रति पंचायती रूस की क्या नीति है, कम्युनिस्टों को ज्ञात नहीं हुई थी। अतः यह भी इसके सम्बन्ध में उदास थे अर्थात् इसके सम्बन्ध में मौन रहकर इसका समर्थन कर रहे थे। फार्वर्ड ब्लाक अपने उदय-काल से ही ब्रिटिश सरकार के साथ किसी भी प्रकार के समझौता के खिलाफ रहा और हमेशा ब्रिटिश सरकार के साथ समझौते का विरोधी था। अतः ब्रिटिश कैबिनेट मिशन का भी यह विरोधी था।

यहाँ पर यह कहना अनुचित नहीं होगा कि केवल क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी ने कैबिनेट मिशन के उद्देश्य को समझा और इसके वर्गीय आचरण का विश्लेषण करके भारतीय शोषित जनता के सामने रखा। सर्व प्रथम क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी के यू० पी० प्रान्त के प्रथम अधिवेशन में ब्रिटिश कैबिनेट मिशन के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया गया था, जो मास्को से रेडियो पर ब्राडकास्ट किया गया था :—"क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी" (R.S.P.I) का यह प्रान्तीय सम्मेलन ब्रिटिश आमात्य-मंडल के भारत-आगमन और उसके द्वारा चलाये जानेवाले समझौते के स्वाँग को बड़ी गंभीरता के साथ देखता है। सर्वहारा वर्ग की पार्टी के नाते क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी भारतीय श्रमिक वर्ग को आगाह करती है कि यह समझौता उसके और 'ब्रिटिश जनों', के बीच न होकर देशी (हिन्दुस्तानी) पूँजीपतियों और ब्रिटिश पूँजीपतियों के बीच होने जा रहा है। दीर्घकालीन विश्वव्यापी महायुद्ध के फलस्वरूप दुनिया में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं, उससे ब्रिटिश पूँजीवाद की हालत बहुत ही चिन्ताजनक हो गयी है। विश्व

की प्रगतिशील शक्तियों के विरुद्ध, जिनमें सोवियट रूस सबसे प्रमुख शक्ति है, आज ब्रिटिश बंक पूँजीशाह अपने एक विश्वव्यापी गुट का निर्माण करने में व्यस्त हैं। हिन्दुस्तान के क्रान्तिकारी आन्दोलन की प्रगति ने, जिसमें बढ़ते हुए आर्थिक संकट और बेकारी ने और तेजी ला दी है, उन्हें इस काम के लिए और भी मजबूर कर दिया है।

"भारतीय पूँजीवाद भी दुनिया के बाजारों में हिस्सा बँटाने के लिए ब्रिटिश बंकशाहों से साँठ-गाँठ करने को उतावला हो रहा है। इसलिए इस समझौते की सफलता भी भारतीय श्रमिक शोषित वर्गों के हित में न होकर देशी पूँजीपतियों के हित में है। पार्टी यह भी घोषित कर देना आवश्यक समझती है कि श्रमिक वर्ग की आजादी केवल एक श्रमिक जन-क्रान्ति के द्वारा ही सम्भव नहीं हो सकती है। इसलिए भारतीय सर्वहारा वर्ग का यह कर्तव्य है कि वह इन थोथे समझौतों के जाल में न पड़कर सत्ता को अपने हाथों में लेने के लिए 'कृषक-मजदूर-जन-मोर्चा' को दृढ़ बनाये और अपने क्रान्तिकारी संघर्ष को तब तक अविराम गति से चालू रखे, जब तक कि वर्त्तमान पूँजीवादी-साम्राज्यवादी ढाँचे का विध्वंस नहीं हो जाता।" यू० पी० पार्टी के प्रान्तीय सम्मेलन के इस प्रस्ताव को पार्टी के प्रथम दिल्ली कान्वेसन ने भी स्वीकार किया।

१६ मई की ब्रिटिश सरकार की घोषणा

इसी पुस्तक में ऊपर अन्य स्थानों में हम देख चुके हैं कि सन् १९३५ ई० के भारतीय विधान की घोषणा के पूर्व सन् १९३१ ई० में लन्दन में गोलमेज परिषद भारतीय विधान में

मौलिक परिवर्तन करने के लिए बैठा। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मि० मैकडोनल्ड की अध्यक्षता में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक समस्याओं का हल करने के लिए नाटकीय प्रयत्न किया गया। इसे सुलझाने के प्रयत्न के साथ-साथ उलझाने का भी प्रयत्न हुआ। जब यह संयुक्त प्रयत्नों से नहीं सुलझाया जा सका, तब ब्रिटिश प्रधान मन्त्री ने भी साम्प्रदायिक बँटवारा (कम्यूनल एवार्ड) की घोषणा की, जिसने बजाय हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक समस्याओं को सुलझाने के और भी उलझा दिया। इस घोषणा ने नये-नये मसले खड़े कर दिये हैं।

सन् १९४६ ई० की १६ मई को अपने साम्राज्यवादी स्वार्थ तथा स्वभाव से मजबूर होकर निम्नलिखित घोषणा एक साथ दिल्ली और लन्दन से की गई। इसके विश्लेषण से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह ब्रिटिश साम्राज्यवादी स्वार्थ की भावना से ओत-प्रोत थी। यहाँ पर हम यह न भूलें कि दूसरे साम्राज्य-वादी युद्ध के खत्म होते देर भी नहीं हुई कि साम्राज्यवादी-पूँजीवादी देशों के बीच गुटबन्दी प्रारम्भ हो गयी। संसार के पूँजीवादी होड़ में अपने अस्तित्व की रक्षा के हेतु विभिन्न साम्राज्यवादी पूँजीवादी देश प्रतिक्रियावादी गुट के निर्माण में व्यस्त हो रहे थे। ब्रिटेन भारत को अपने गुट में शामिल करना चाहता था। इसके लिए यह आवश्यक था कि संयुक्त भारतवर्ष में किसी न किसी प्रकार का केन्द्रीय शासन अवश्य हो। दूसरी बात यह थी कि भारतीयों के हाथों में शासन-सत्ता के हस्तांतरित हो जाने के उपरान्त भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अस्तित्व भारतवर्ष में कायम रहे। इसका साम्राज्यवादी आर्थिक स्वार्थ भारतीय बाजार में कायम रहेगा। साम्प्रदायिक

आधार पर भारत के विभाजन से यह काफी दिनों तक कायम रह सकेगा। उक्त साम्राज्यवादी स्वार्थ की भावनाओं से ओत-प्रोत होकर ब्रिटिश कैबिनेट मिशन ने "भारतवर्ष की राजनीतिक समस्याओं को हल करने के लिए एक योजना पेश की, जो लन्दन तथा दिल्ली से एक साथ ता० १६-५-४६ को घोषित की गयी।

हम सब देख चुके हैं कि संसार-व्यापी युद्ध अभी चल ही रहा था कि ब्रिटेन में आम चुनाव हुआ और ब्रिटिश मजदूर दल की सरकार कायम हुई। इसके फलस्वरूप परिस्थिति बदली। ता० १६-२-४६ को हिन्दुस्तान के वास्ते राज्यमन्त्री मि० पैथिक लारेन्स ने भारत की राजनीतिक समस्या को हल करने की दृढ़ता की घोषणा की और साथ ही साथ उन्होंने यह भी घोषित किया कि इसके लिए ब्रिटिश मन्त्रिमंडल के तीन सदस्यों का एक मिशन शीघ्र ही भारतवर्ष जायगा।

ता० १५-३-४६ को ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री एटली ने ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में भारत के आजादी के अधिकार को स्वीकार करते हुए और भारतीयों को आजादी हासिल करने में सहायता करने की अपनी सरकार की दृढ़ता को भी व्यक्त करते हुए ऐतिहासिक घोषणा की और कहा कि अल्पसंख्यक को बहुसंख्यक की प्रगति के मार्ग में ब्रिटिश सरकार अड़चन नहीं डालने देगी। हिन्दुस्तान के वास्ते राज्यमन्त्री मि० पैथिक लारेन्स के नेतृत्व में ब्रिटिश कैबिनेट मिशन ने—जिसके सदस्य सर स्टेफोर्ड क्रिप्स और मि० ए० वी० एलैक्जेण्डर थे—भारतवर्ष में पधारा। इसके पधारने के उपरान्त शिमला में एक सम्मेलन हुआ, जिसमें राष्ट्रीय कांग्रेस मुस्लिम लीग तथा ब्रिटिश

सरकार के प्रतिनिधि शामिल हुए। यह सफल हुआ, लेकिन इसमें जो विचार-विनिमय हुआ था, उसने १६ मई की ऐतिहासिक घोषणा के लिए अनुकूल मार्ग तैयार किया।

राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौता कराने के प्रयत्न में असफल होने पर ता० १६-५-४६ को भारतवर्ष की वैधानिक समस्याओं के समाधान के सम्बन्ध में ऐतिहासिक घोषणा कैबिनेट मिशन ने की। यह प्रधानतः तीन हिस्सों में विभाजित की जा सकती है :—

(१) भारतीय विधान का आधारित रूप,
(२) विधान निर्माण की मशीन की आयोजना,
(३) अन्तःकालीन सरकार की स्थापना।

१५ पैराग्राफ के अन्तर्गत भारतीय विधान का निम्नलिखित आधारित रूप होगा :—

(१) भारतवर्ष का एक संघ (यूनियन) होगा, जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतें शामिल रहेंगी और इसे निम्नलिखित विषयों पर अधिकार प्राप्त रहेगा :— वैदेशिक कार्य, रक्षा और यातायात और इनकी पूर्ति के लिए अर्थ प्राप्त करने का भी अधिकार होगा।

(२) संघ (यूनियन) की एक केन्द्रीय कार्यकारिणी और धारा सभा होगी, जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों के प्रतिनिधि शामिल होंगे। अगर धारा सभा में साम्प्रदायिक प्रश्न उठता है, तो इसके निर्णय के लिए इसके बहुमत की तथा इन मुख्य दोनों सम्प्रदायों में प्रत्येक के प्रतिनिधि को वोट देने तथा उपस्थित सदस्यों को वोट करने की आवश्यता होगी।

(३) संघ (यूनियन) के मातहत विषयों के अतिरिक्त सभी विषय तथा सभी अधिकार प्रान्तों के हाथों में होंगे।

(४) संघ (यूनियन) के सौंपे गये अधिकारों के अतिरिक्त सभी अधिकार तथा विषय रियासतों के हाथों में रहेंगे।

(५) प्रान्तीय कार्यकारिणी तथा धारा-सभा में से प्रत्येक गुट बनाने के लिए स्वतंत्र है और इस प्रकार बने हुए प्रत्येक गुट प्रान्तीय विषयों को सामूहिक रूप में लाने के लिए निर्णय कर सकता है।

(६) संघ (यूनियन) तथा गुट के विधान में ऐसा नियम होना चाहिए कि प्रारम्भिक १० वर्ष के उपरान्त कोई भी प्रान्त अपनी धारा-सभा के बहुमत के द्वारा अपने विधान के नियमों के ऊपर फिर से विचार करने की माँग कर सके।

II विधान-निर्माण की मशीन की योजना निम्न प्रकार रखी है :—

(अ) आबादी के आधार पर प्रत्येक प्रान्त को प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होगा।

(ब) प्रान्त के हिस्सों को प्रमुख सम्प्रदाय—मुस्लिम, सिख तथा आम अन्य लोगों—के बीच विभाजित किया जायगा।

(स) प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रतिनिधियों का चुनाव वहाँ की धारा-सभा में उस सम्प्रदाय के प्रतिनिधियों के द्वारा होगा।

इस आधार पर कैबिनेट मिशन ने विधान-निर्माण के हेतु संस्था का निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत किया :—

(i) ब्रिटिश भारत के लिए भारतीय विधान-परिषद् में कुल २९६ स्थान होंगे।

(अ) सेक्सन ए :—

प्रान्त	आम	मुस्लिम	कुल
मद्रास	४४	५	४९
बम्बई	१९	२	२१
यू० पी०	४८	७	५५
बिहार	३१	५	३६
सी० पी०	१६	१	१७
उड़ीसा	९	०	९
	१६७	२०	१८७

नोट :— कमिश्नर-प्रान्तों—दिल्ली, अजमेर-मारावाड़ तथा कुर्ग के तीन प्रतिनिधि इसमें और होंगे, जिससे कुल १९० होंगे।

(ब) सेक्सन बी :—

प्रान्त	आम	मुस्लिम	सिख	कुल
पंजाब	८	१६	४	२८
उत्तर पश्चिम सरहद्दी प्रान्त	०	३	०	३
सिन्ध	१	३	०	४
	९	२२	४	३५

नोट :—इसमें बेलूचिस्तान का एक प्रतिनिधि और होगा जिससे कुल ३६ होंगे।

(स) सेक्सन सी :—

प्रान्त	आम	मुस्लिम	कुल
बंगाल	२७	३३	६०
आसाम	७	३	१०
	३४	३६	७०

(ii) विधान-परिषद में रियासतों के प्रतिनिधियों की संख्या ६३ से अधिक नहीं होनी चाहिए।·········

(iii) अन्त:कालीन सरकार की स्थापना :—

"शीघ्र से शीघ्र ही अन्त:कालीन सरकार की, जिसे प्रमुख राजनीतिक पार्टियों का समर्थन प्राप्त हो, स्थापना का बहुत अधिक महत्व देता है। इस सम्बन्ध में वाइसराय प्रयत्न कर रहे हैं, और शीघ्र ही इसे स्थापित करने की आशा करते हैं; जिसमें युद्ध-विभाग से लेकर सभी विभाग हिन्दुस्तान के नेताओं के हाथों में होगा—जिसे आम जनता का विश्वास प्राप्त होगा।

९

भारतीय विधान-परिषद और अन्तःकालीन सरकार की स्थापना

१६ मई की ब्रिटिश घोषणा के प्रकाशित होते ही भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में नयी चहल-पहल दिखायी देने लगी। देश भर में समझौते की नयी आशा की लहरें उठने लगीं। यह प्रतीत होने लगा कि केवल ब्रिटिश सरकार के साथ ही समझौता नहीं होगा, बल्कि शीघ्र ही हिन्दू-मुस्लिम समस्या भी सुलझ जायगी। इसमें ऐसी कौन-सी विशेषता थी जिससे लोगों में उक्त धारणा बनी थी। वास्तव में पहले के और प्रस्तावों से यह अवश्य कुछ भिन्न रहा। इसकी विशेषता यह थी कि इसने न तो हिन्दुस्तान को विभाजित ही किया और न अविभाजित ही रखा। कांग्रेस और लीग दोनों को इसमें खुश करने का प्रयत्न किया गया था। अपने-अपने ख्याल के अनुसार इसकी व्याख्या करके इसे कार्यान्वित करके अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए प्रयोग करने की कल्पना करने लगे थे, दोनों ने वायसराय तथा ब्रिटिश सरकार से बहुत-सी बातों का स्पष्टीकरण करवाया। इसके उपरान्त ता० ६-६-४६ को सर्व-प्रथम अखिल

भारतीय मुस्लिम लीग की कौन्सिल ने १६ मई की कैबिनेट मिशन की घोषणा के ऊपर एक प्रस्ताव पास किया और मिशन की इस बात—"पाकिस्तान का न बड़ा और न छोटा स्वतंत्र राज्य साम्प्रदायिक समस्याओं का हल कर सकता है"—का कड़ा विरोध करते हुए मिशन के इस विचार को "अनावश्यक, अन्यायपूर्ण तथा तर्कहीन" कहा, और साथ ही साथ "स्वतंत्र पाकिस्तान की स्थापना हिन्दुस्तान के मुसलमानों के अपरिवर्तित ध्येय हैं" की माँग को दोहराया, और "इसकी प्राप्ति के लिए आवश्यकता पड़ने पर, हर प्रकार के उपाय को प्रयोग करेंगे और किसी प्रकार के त्याग तथा तकलीफ को बहुत बड़ा नहीं समझेंगे।" साथ ही साथ इसमें इसने यह भी कहा कि "कैबिनेट मिशन की आयोजना के अन्दर विधान-निर्माण के मशीन के साथ विधान-निर्माण में पूर्ण सहयोग मुस्लिम लीग करेगी, क्योंकि इससे यह आशा है कि अन्त में इससे पूर्ण स्वतंत्र पाकिस्तान की स्थापना होगी।"

बहुत-सी बातों का स्पष्टीकरण होने के उपरान्त अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में अपनी व्याख्या के साथ राष्ट्रीय कांग्रेस ने प्रस्तावित विधान-परिषद में स्वतंत्र संयुक्त प्रजातान्त्रिक भारतवर्ष का विधान निर्माण करने के हेतु शामिल होना स्वीकार किया। साथ ही साथ १६ मई की घोषणा के बहुत से अंशों, विशेषतः केन्द्रीय सरकार के अधिकारों की सीमा तथा प्रान्तों के गुटबन्दी के ऊपर गहरा मतभेद प्रकट किया। यहाँ यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि इस ऐतिहासिक घोषणा के अनुसार मजबूत केन्द्रीय संघ-शासन की स्थापना की सम्भावना नहीं थी। इसके अनुसार प्रत्येक प्रान्त

में स्वायत्त शासन कायम करने की आयोजना थी। रक्षा, वैदेशिक नीति, यातायत के साधन, वगैरह चन्द चीजों को छोड़-कर प्रत्येक प्रान्त अपनी आन्तरिक व्यवस्था का प्रबन्ध करने के लिए स्वतंत्र होता। इसके अतिरिक्त अगर कोई प्रान्त अथवा कई प्रान्त भारतीय यूनियन से अलग होकर स्वतंत्र राज्य की स्थापना करना चाहते, तो इसका उन्हें पूर्ण अधिकार प्राप्त था, बशर्ते कि वहाँ के रहनेवालों का बहुमत अलग होने के पक्ष में हो। राष्ट्रीय कांग्रेस ने पूर्णत: इस घोषणा को स्वीकार किया था। कांग्रेस के इस प्रस्ताव में जो भाव दृष्टिगोचर होता था, उससे भिन्न भाव इसके अध्यक्ष के भाषण से प्रकट होता था। राष्ट्रीय कांग्रेस के मूल प्रस्ताव और इसके अध्यक्ष के भाषण के बीच इस प्रकार की भिन्नता क्यों हुई? यह कांग्रेस के लिए स्वाभाविक ही था। इसके वर्गीय आचरण का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अभी तक यह किसी वर्ग विशेष की वर्गीय पार्टी का रूप धारण नहीं कर सकी थी। अभी तक इसके प्रधानत: तीन वर्गीय रूप थे। जहाँ तक यह ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन का संचालन करता रही थी, वहाँ तक भारतीय जनता की ब्रिटिश विरोधी भावनाओं का प्रतिनिधित्व यह करती रही थी। जहाँ इसकी सदस्यता का प्रश्न था, वहाँ निम्न मध्यम वर्ग के सदस्यों का अधिक बहुमत था और इस दृष्टिकोण से यह निम्न मध्यम वर्ग का संगठन थी, और जहाँ इसके नेतृत्व का सवाल था, यह (इसका नेतृत्व) पूर्णत: पूँजीवादी सुधारवादी नेतृत्व था और इस दृष्टिकोण से यह पूँजीवादी संस्था थी। अत: यह किसी वर्ग-विशेष की संस्था नहीं थी, बल्कि राष्ट्रीय संगठन के रूप में अभी तक विद्यमान

थी। हम यह न भूलें कि परिवर्तित राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय भौतिक परिस्थिति में इसने आन्दोलन की नीति को कतई छोड़ दिया था और पूर्ण रूप से यह सुधारवादी वैधानिक नीति को अपना चुकी थी। अतः भारतीय शोषित जनता की भावनाओं का प्रतिनिधित्व यह नहीं कर सकती थी और न करती ही थी। हम ऊपर देख चुके हैं कि इसका पूँजीवादी-सुधारवादी नेतृत्व भारतवर्ष के साम्प्रदायिक विभाजन के आधार पर भी भारतीय पूँजीवादी वर्ग के आपसी मेल और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ समझौते के लिए व्याकुल हो रहा था। अतः ब्रिटिश साम्राज्यवादी ऐतिहासिक घोषणा को पूर्णतः स्वीकार करना इसके लिए स्वाभाविक ही था। परन्तु भारतीय निम्न मध्यम वर्ग साम्प्रदायिक आधार पर भारत के विभाजन के पक्ष में नहीं था। अतः उसे सन्तुष्ट करके सुधारवादी नेतृत्व के प्रभाव में रखने के लिए कांग्रेस के अध्यक्ष का उस प्रकार का भाषण होना स्वाभाविक ही था।

उधर वायसराय अन्तःकालीन सरकार की स्थापना के हेतु राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौता कराने का प्रयत्न कर रहे थे। कुछ महत्वपूर्ण बातों के सम्बन्ध में लार्ड वेवल ने जिन्ना साहब को आश्वासन दे दिया था। ता० १६-६-४६ को अपने प्रयत्नों के अनुभव के आधार पर वायसराय ने अन्तःकालीन राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की एक आयोजना घोषित की कि उच्च जातीय हिन्दू और मुसलमानों को बराबर जगह सरकार में होगी, जिसमें राष्ट्रीय मुसलमान सम्मिलित नहीं हो सकेंगे। सम्पूर्ण मुस्लिम जगहें मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों को प्रदान होंगी। इसे राष्ट्रीय कांग्रेस ने

अस्वीकार किया। परन्तु मुस्लिम लीग ने इसे इस आशा से स्वीकार किया था कि बिना कांग्रेस के भी अन्त:कालीन राष्ट्रीय सरकार की स्थापना होगी।

परन्तु, कैबिनेट मिशन, जिसने लम्बे अरसे की आयोजना को प्रस्तुत किया था, बिना कांग्रेस के अन्त:कालीन सरकार की स्थापना के पक्ष में नहीं था। ता० २६-६-४६ को इसने यह घोषित किया कि कुछ समय बाद फिर अन्त:कालीन संयुक्त सरकार की स्थापना का प्रयत्न किया जायगा, तब तक के लिए सात सरकारी अधिकारियों की प्रबन्ध करनेवाली सरकार की नियुक्ति वायसराय करेंगे। इस घोषणा के उपरान्त १६ मई की घोषणा के ऊपर मुस्लिम लीग की स्वीकृति जिन्ना साहब ने वापस लेने का निश्चय कर लिया। अत: ता० २६-७-४६ को अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की कौन्सिल ने कैबिनेट मिशन की १६ मई की घोषणा के ऊपर अपनी स्वीकृति वापस ले ली। और "पाकिस्तान हासिल करने, अपने अधिकार को कायम रखने, सम्मान को स्थापित करने, वर्तमान गुलामी से छुटकारा पाने और हिन्दू राष्ट्र की भावी गुलामी से बचने के हेतु "डाइरेक्ट एक्शन" (सीधी कार्यवाही) का प्रस्ताव पास किया।"। "सीधी कारवाई" प्रारम्भ करने की तिथि भी १६ अगस्त सन् १९४६ निश्चय की गयी। बंगाल की मुस्लिम लीगी सरकार ने १६ अगस्त को सरकारी छुट्टी दिवस एलान किया।

यहाँ पर यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रस्ताव और इसके अध्यक्ष के भाषण की जैसी प्रति-क्रिया मुस्लिम लीग के राजनीतिक क्षेत्र में हुई, वह अस्वाभाविक

नहीं थी। कांग्रेस के प्रति मुस्लिम लीग का सन्देह और भी बढ़ता गया। मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मि० जिन्ना ने इस ब्रिटिश घोषणा को स्वीकार करने से साफ इन्कार कर दिया था। उसने यह साफ-साफ एलान कर दिया कि १६ मई की ब्रिटिश घोषणा में जो ब्रिटिश भाव निहित हैं, उसे कांग्रेस ने स्वीकार नहीं किया है, बल्कि अपने ख्याली व्याख्या के साथ उसने स्वीकार किया था। अतः मुस्लिम लीग इसे स्वीकार नहीं कर सकती।

इसके बाद वायसराय ने इसका और भी स्पष्टीकरण किया। इसके उपरान्त कांग्रेस की कार्यकारिणी कमेटी ने १६ मई की ऐतिहासिक घोषणा को वायसराय की व्याख्या के साथ स्वीकार किया। मि० जिन्ना और वायसराय के बीच काफी पत्र-व्यवहार तथा मुलाकातें हुई थीं। परन्तु अन्त तक मुस्लिम लीग ने घोषणा को स्वीकार करने से इन्कार किया था। ब्रिटिश सरकार की ओर से पहले यह एलान किया जा चुका था कि जितनी पार्टियाँ इसे स्वीकार करेंगी, उन्हें लेकर इसे कार्यान्वित करने का प्रयास किया जायगा। ता० २०-८-४८ को पंडित नेहरू जी के नेतृत्व में बिना लीग के भी अन्तःकालीन सरकार की स्थापना की घोषणा वायसराय ने की और साथ ही साथ यह भी एलान किया कि जब १६ मई की घोषणा मुस्लिम लीग स्वीकार करेगी, तब उसे पाँच जगहें प्राप्त होंगी।

इस घोषणा के अनुसार अन्तःकालीन राष्ट्रीय सरकार की स्थापना और स्वतंत्र भारत के भावी विधान के निर्माण के हेतु भारतीय विधान परिषद कायम होने वाला था। यहाँ हम यह न भूलें कि भारतीय आम जनता को भारतीय विधान-परिषद

के सदस्यों को चुनने का अधिकार नहीं था अर्थात् आम भारतीय जनता द्वारा निर्वाचित विधान-परिषद् की स्थापना नहीं हो रही थी, बल्कि १० फी सदी मुख्यतः पूँजीपति मध्यम वर्ग, जमींनदार और तालुकेदार, धनी किसान वगैरह द्वारा चुने हुए प्रान्तीय एसेम्बली के सदस्यों द्वारा निर्वाचित हुए प्रतिनिधियों और देशी रियासतों के नुमाइन्दों को लेकर भारतीय विधान-परिषद् की स्थापना होने जा रही थी। विधान-परिषद् के सदस्यों के प्रान्तीय एसेम्बलियों द्वारा निर्वाचन में मुस्लिम लीग ने भाग लिया था। परन्तु जब इसकी कार्यवाही प्रारम्भ की गयी थी, तब मुस्लिम लीग ने शामिल होने से इन्कार कर दिया था।

इस ऐतिहासिक घोषणा के अनुसार केन्द्र में अन्तःकालीन राष्ट्रीय सरकार की स्थापना होना आवश्यक था। इसमें भी शामिल होने से मुस्लिम लीग ने साफ-साफ इन्कार कर दिया था। कांग्रेस के अध्यक्ष श्री पं० जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में सन् १९४६ ई० में दूसरी सितम्बर को प्रथम अन्तःकालीन अर्द्ध राष्ट्रीय पूँजीवादी सरकार की स्थापना हुई। मुस्लिम लीग द्वारा बहिष्कृत होने के कारण कांग्रेस ने गैर मुस्लिम लीगी मुसलमानों को इसमें शामिलकर इसकी स्थापना की। इसकी खुशी में और भोली-भाली भारतीय जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए कांग्रेस ने हिन्दुस्तान भर में पहली दिसम्बर को घर-घर दीपावली मनाने का आदेश दिया था। बहुत हद तक इसे पालन भी किया गया था। दूसरी ओर सारे देश में घरों पर दूसरी सितम्बर को काला झंडा फहराने का आदेश अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की ओर से दिया गया था।

हिन्दुस्तान के अधिकांश मुसलमानों ने अपने-अपने घरों पर काले झंडे फहराये थे। एक ओर खुशी मनायी गयी और दूसरी ओर मातम। ऐसी परिस्थिति में दूसरी सितम्बर को गैर मुस्लिम लीगी सदस्यों को लेकर कांग्रेस ने प्रथम अन्तःकालीन राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की, जिसके साथ-साथ भारतीयों के हाथों में शासन-सत्ता सौंपने का सिलसिला प्रारम्भ किया गया था। अन्तःकालीन सरकार की स्थापना के उपरान्त भी हमेशा वायसराय तथा पंडित नेहरू जी मुस्लिम लीग को इसमें शामिल होने के लिए आमन्त्रित करते रहे।

हम देख चुके हैं कि प्रथम तो १६ मई की ब्रिटिश साम्राज्य-वादी घोषणा को अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने स्वीकार कर लिया था। लेकिन अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रस्ताव और इसके अध्यक्ष के भाषण के बाद मुस्लिम लीग को सन्देह होने लगा था। इसके अध्यक्ष मि० जिन्ना ने यह ऐलान किया कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रस्ताव और इसके अध्यक्ष के भाषण के बाद मुस्लिम लीग १६ मई की ब्रिटिश घोषणा को स्वीकार नहीं कर सकी थी। अतः अन्तःकालीन राष्ट्रीय सरकार में किसी प्रकार का भाग लेने से मुस्लिम लीग ने कतई इन्कार किया। राष्ट्रीय सरकार के अलावा विधान-परिषद का भी इसने बहिष्कार किया, हालाँकि इसके चुनाव में इसने भाग लिया था और इसके सदस्य भारतीय विधान-परिषद के सदस्य चुने भी गये थे। मि० जिन्ना ने जोरदार शब्दों में अपनी पूर्व माँगों को दोहराया और कहा कि हिन्दुस्तान एक राष्ट्र नहीं है, यहाँ हिन्दू-मुस्लिम दो राष्ट्र अलग-अलग हैं। मुस्लिम राष्ट्र किसी भी तरह सम्पूर्ण भारत

वर्ष के एक केन्द्रीय शासन को स्वीकार नहीं कर सकता। अगर वह ऐसा करता है, तो मुसलमानों के लिये हिन्दुओं की गुलामी स्वीकार करता है, जो किसी भी तरह सहन नहीं किया जा सकता था।

ब्रिटिश सरकार के निश्चय के अनुसार मुस्लिम लीग के बहिष्कार के बावजूद भी यूनियन जैक के नीचे कांग्रेस के अध्यक्ष श्री पं० जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अन्तःकालीन राष्ट्रीय सरकार की स्थापना पहली सितम्बर १६४६ ई० को की गयी। ब्रिटिश सरकार ने पहले ही यह घोषित किया था कि चाहे कोई दल न भी शामिल हो, इस घोषणा को कार्यान्वित किया जायगा। जब मुस्लिम लीग ने देखा कि इसके बहिष्कार करने की घोषणा करने पर भी पूँजीपति और ब्रिटिश सरकार ने अन्तःकालीन सरकार की स्थापना की और भारतीय विधान-परिषद का निर्माण करने पर तुली हुई है, तब मुस्लिम आम जनता को साथ लेकर मुस्लिम लीग ब्रिटिश सरकार और हिन्दू पूँजीपतियों पर पाकिस्तान की माँग को स्वीकार करने के हेतु दबाव डालना चाहती थी। अन्तःकालीन सरकार की स्थापना के पूर्व १६ अगस्त को हिन्दुस्तान भर में मुस्लिम लीग की ओर से "डाइरेक्ट एक्शन डे" मनाया गया था, जिसके परिणाम-स्वरूप कई दिनों तक कलकत्ता में दोनों सम्प्रदायों के बीच कत्लआम हुआ था। यहाँ से हिन्दुस्तान भर में हिन्दू-मुस्लिम-युद्ध प्रारम्भ हुआ था, जिसके विषय में बाद में हम उल्लेख करेंगे।

दूसरी सितम्बर १६४६ ई० को भारतीय पूँजीवादी वर्ग के हाथों में भारतीय शासन-सत्ता हस्तान्तरित करने का सिलसिला

"यूनियन जैक" के नीचे प्रारम्भ किया गया था। हस्तान्तरित करने का सिलसिला कांग्रेस के पूँजीवादी सुधारवादी नेतृत्व के द्वारा संचालित हो रहा था। हम पहले देख चुके हैं कि भारतीय शोषित-श्रमिक जनता इस नेतृत्व के प्रभाव से अलग होती जा रही थी। यह इसे अच्छी तरह अनुभव कर रहा था। अतः पहली सितम्बर को आजादी के ऊषा-काल के रूप में मनाकर आम जनता को अपने प्रभाव में इसने रखने को सोचा। राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से पहली सितम्बर को सारे देश में दीपावली मनायी गयी।

हम पहले कह चुके हैं कि मुस्लिम लीग द्वारा लगातार यह प्रचार किया गया था कि समूचे भारतवर्ष के एक केन्द्रीय शासन-सत्ता की स्थापना का अर्थ है मुसलमानों के लिए हिंदुओं की गुलामी, जिसे हिन्दुस्तान के मुसलमान बर्दाश्त नहीं कर सकते। अतः जब पहली सितम्बर को अन्तःकालीन राष्ट्रीय सरकार के रूप में भारतीय केन्द्रीय शासन की स्थापना होने जा रही थी, उस समय उक्त भावना को दृढ़ करने के हेतु हिन्दुस्तान में प्रत्येक मुस्लिम घर पर काला झंडा फहराने का आदेश अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की ओर से दिया गया। अधिकांश भारतीय मुसलमानों ने इसे पालन किया। घरों में उन्होंने मातम मनाया। इसके फलस्वरूप मुसलमानों में साम्प्रदायिकता का विष रूपी वृक्ष और भी फैल गया था।

हम देख चुके हैं कि बिना मुस्लिम लीग के भी कांग्रेस के नेतृत्व में अन्तःकालीन सरकार की स्थापना हो चुकी थी। परन्तु अभी तक विधान-परिषद की बैठक प्रारम्भ नहीं हुई थी। हम देख चुके हैं कि इसके चुनाव में मुस्लिम लीग ने भाग

लिया था और इसके काफी सदस्य चुने भी गये थे। लेकिन मुस्लिम लीग ने इसमें भाग लेने से साफ-साफ इन्कार कर दिया था। अन्त:कालीन सरकार की स्थापना के उपरान्त इसमें और विधान परिषद में शामिल होने के लिये बिना १६ मई की घोषणा की अस्वीकृति के अपने प्रस्ताव को वापस लिये ब्रिटिश सरकार ने लीग के साथ काफी बातें कीं। इसके परिणामस्वरूप अन्त:कालीन सरकार में अक्टूबर में मुस्लिम लीग शामिल हुई, जिसके बाद वास्तव में केन्द्रीय सरकार दो गुटों में विभाजित हो गई। वायसराय द्वारा नेहरूजी को आश्वासन देने पर कि अन्त:-कालीन सरकार में शामिल होने पर मुस्लिम लीग विधान परिषद में अवश्य शामिल होगा, परन्तु इसके अध्यक्ष मिस्टर जिन्ना ने अस्वीकृति के प्रस्ताव को वापस लेने के लिये कोई भी कदम नहीं उठाया। भारतीय राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के उपरान्त वायसराय लन्दन बुलाए गये। इनके साथ-साथ मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मिस्टर जिन्ना और भारत के प्रधान मन्त्री, श्री जवाहरलाल नेहरू भी वहाँ बुलाये गये। ये दोनों भी लण्डन पहुँचे। वहाँ एक गोलमेज कानफ्रेंस हुई, जिसमें नेहरू जी और जिन्ना साहेब शामिल हुये। लीग और कांग्रेस के बीच समझौते की कोशिश की गई। इसकी असफलता के बाद ता० ६-१२-४६ ई० को ब्रिटिश सरकार ने यह घोषित किया कि प्रान्तों के गुटबन्दी की व्यवस्था को स्वीकार करने को प्रत्येक बाध्य हैं। गुटों में वोट की प्रथा सदस्यों की बहुमत से होगा, प्रान्तों का विधान प्रत्येक प्रान्त के प्रतिनिधि के द्वारा नहीं बनेगा बल्कि पूरे गुट के द्वारा। वायसराय तथा जिन्ना साहब लन्दन में ही रुक गये और पंडित नेहरू जी भारत वापस आ गये।

ता० ६–१२–४६ को "युनियन जैक" के नीचे डाक्टर सच्चिदानन्द सिनहा की अध्यक्षता में भारतीय विधान परिषद् की प्रथम ऐतिहासिक बैठक स्वतंत्र भारत के भावी विधान के निर्माण करने के हेतु प्रारम्भ हुई। इसके प्रथम अध्यक्ष के और प्रथम भारतीय प्रधान मन्त्री के भाषण के उपरान्त इसके स्थाई अध्यक्ष का निर्वाचन हुआ। डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी सर्वसम्मति से भारतीय विधान परिषद् के ऐतिहासिक अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इसके उपरान्त इनकी अध्यक्षता में स्वतंत्र भारत के भावी विधान तैयार करने का कार्य शुरू किया गया।

२० फरवरी की ब्रिटिश घोषणा

१६ मई की ब्रिटिश सरकार की ऐतिहासिक घोषणा होने के उपरान्त राष्ट्रीय सरकार और विधान परिषद् में मुस्लिम लीग को शामिल करने के हेतु ब्रिटिश सरकार की ओर से काफी प्रयत्न हुआ। लेकिन ये सब व्यर्थ साबित हुये थे। अन्तःकालीन सरकार के कायम होने के बाद भी प्रयत्न होता रहा। अन्त में अन्तःकालीन सरकार में शामिल होने के लिये मुस्लिम लीग ने स्वीकार कर लिया था। गैरमुस्लिम लीगी मन्त्रीगण त्यागपत्र देकर अलग हो गये मुस्लिम लीग के सदस्य उसमें शामिल हुए। परन्तु कांग्रेस और लीग के बीच हमेशा संघर्ष चलता रहा। एक ओर मुस्लिम लीग अन्तःकालीन सरकार में शामिल थी और दूसरी ओर विधान परिषद् को बहिष्कार किये हुए थी। सरकार में एक साथ होने पर भी लीग और कांग्रेस में मेल नहीं था। हमेशा अन्दर और बाहर संघर्ष चल रहा था। केन्द्रीय सरकार में कभी-कभी आन्तरिक संघर्ष इतना विकट हो जाता था कि प्रधान मन्त्री इस्तीफा देने

को भी तैयार हो जाते थे। उधर ६ दिसम्बर १९४६ को ब्रिटिश घोषणा को प्रान्तीय स्वतंत्रता के विपरीत समझते हुए कांग्रेस ने ता० ६-१-४७ को एक प्रस्ताव द्वारा इसे भी स्वीकार किया। साथ ही साथ पंजाब, बंगाल और आसाम के विरोध का सामना करने के लिये प्रान्त को तथा प्रान्त के अंश को कार्य की आजादी भी दे दी।

यह प्रस्ताव भी मुस्लिम लीग को संतुष्ट करने के लिये पर्याप्त नहीं था। ता० ३१-१-४७ को मुस्लिम लीग की कार्यकारिणी कमेटी ने एक बड़ा प्रस्ताव पास किया कि "विधान परिषद् का चुनाव और उसके बाद इसकी बैठक अवैधानिक है।·········इसे जारी रहना और इसके निर्णय सब के सब अवैधानिक होंगे। अतः शीघ्र से शीघ्र इसे भंग कर देना चाहिये। इस प्रस्ताव के बाद अन्तःकालीन सरकार के अन्दर भारी संकट उत्पन्न हो गया। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही था कि जो पार्टी "डाइरेक्ट एक्सन" की आयोजना करती है, वह इसके अन्दर कैसे रह सकती है। इसे स्पष्ट करने के हेतु नेहरूजी ने कांग्रेस की ओर से वायसराय को लिखा कि संयुक्त अन्तःकालीन सरकार की परम्परा का मुस्लिम लीग ने उल्लंघन किया है, जो नेहरूजी को वायसराय द्वारा दिये गये आश्वासन के विपरीत है। क्या लीग के कराँची के घातक प्रस्ताव के बाद भी मुस्लिम लीग अन्तःकालीन सरकार में कायम रह सकती है? इन सभी प्रश्नों का स्पष्टीकरण करने को वायसराय को कहा गया। इसके बाद मुस्लिम लीग की ओर से सरकार को लिखा गया कि लीग के सदस्य यह मानते हैं कि अगर १६ मई की घोषणा की स्वीकृति ही पाप है तो मुस्लिम लीग ने सर्व-

प्रथम इसे स्वीकार किया था, जिसे बाद में वापस ले लिया क्योंकि किसी और पार्टी ने इसे स्वीकार नहीं किया। दूसरी ओर उनका कहना है कि किसी भी समय कांग्रेस ने इसे स्वीकार नहीं किया है और न ६ जनवरी के प्रस्ताव के ही द्वारा इसने इसे स्वीकार किया। वर्तमान परिस्थिति में लीग के सदस्यों को अन्त:कालीन सरकार के अन्दर बने रहने का उतना ही अधिकार है जितना कांग्रेस के सदस्यों का। वायसराय ने लीग के इस पत्र का भी लन्दन भेज दिया। इसके पूर्व पंडित नेहरूजी का पत्र भेजा जा चुका था। इसके उपरान्त प्रेस प्रतिनिधियों के बीच श्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा कि अगर ऐसी हालत में मुस्लिम लीग अन्त:कालीन सरकार में बनी रहती है, तो कांग्रेस इससे अलग हो जायगी।

ब्रिटिश कैबिनेट के आगमन के उपरान्त भारतीय साम्प्रदायिक-राजनीतिक समस्याएँ और भी उलझती गईं। इसे सुलझाने के हेतु ता० २०-२-४७ को ब्रिटिश मजदूर प्रधान मन्त्री एटली ने निम्नलिखित घोषणा की :—'............ यह अति दुख की बात है कि अभी भी सरकार देखती है कि हिन्दुस्तान की पार्टियों के बीच काफी मतभेद फैला हुआ है, जा विधान परिषद के कार्य में रुकावट डाल रहा है, इसका जैसा कार्य होना चाहिये था वैसा नहीं हो रहा है। यह आयोजना का तत्व है कि विधान परिषद पूर्णरूप से प्रतिनिधित्व करे......

"लेकिन कैबिनेट मिशन की आयोजना के अनुसार ब्रिटिश सरकार सभी पार्टियों द्वारा स्वीकृत विधान के द्वारा स्थापित अधिकारों के हाथों में शासन सत्ता सौंपना चाहती है। लेकिन

अभाग्यवश यह स्पष्ट नहीं हो रहा है कि इस प्रकार के विधान तथा अधिकार का उदय होगा। अनिश्चयता की वर्तमान परिस्थिति खतरा से खाली नहीं है और यह अनिश्चय काल के लिये जारी नहीं रखी जा सकती है। ब्रिटिश सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि यह उसकी निश्चय राय है कि सन् वह १९४८ के जून तक जिम्मेदार हिन्दुस्तानियों के हाथों में शासन-सत्ता सौंपने का प्रयत्न करेगी।......"ऐसी सरकार, जो जनता के समर्थन पर कायम हो, जो व्यवस्था तथा शान्ति कायम रख सकेगी, और जो न्याय तथा क्षमता के साथ शासन प्रबन्ध कर सकेगी, के ही हाथों में शासनसत्ता सौंपने के लिये ब्रिटिश सरकार इच्छुक है। इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि सभी पार्टियाँ अपने मत-भेद को दूरकर के शासन का बोझ उठाने के लिये प्रस्तुत हो जायें, जो दूसरे साल आने वाली है।

"......लेकिन अगर यह ज्ञात हो कि ऐसा विधान पूर्ण विधान परिषद के द्वारा समय निश्चय के पूर्व तैयार नहीं हो सकता, तो ब्रिटिश सरकार को यह सोचना पड़ेगा कि किसके हाथ में यह भारत के केन्द्रीय शासन का भार निश्चित कर सौंपे। ब्रिटिश भारत के किसी प्रकार की केन्द्रीय सरकार के पूर्णरूप में या कुछ क्षेत्रों में मौजूदा प्रान्तीय सरकारों या दूसरी तरह, जो हिन्दुस्तान की जनता के हित में हो......

"यह भी घोषित किया गया कि युद्ध के उपरान्त लार्ड वेवल की नियुक्ति खत्म की जाय और इनके स्थान में एडमिरैल विस्कौन्ट मौन्टबैटन की नियुक्ति की जाती है और मार्च के महीने में यह शासन प्रबन्ध की जिम्मेदारी ग्रहण करेंगे।"...

ता० २२-२-४७ को इस घोषणा पर वक्तव्य देते हुये नेहरूजी

ने कहा कि यह "बुद्धिमतापूर्ण तथा साहसी कार्य है।" उन्होंने कहा कि विधान परिषद के कार्य को और भी तीव्रता के साथ बढ़ाना चाहिये। जो लोग अभी तक इससे अलग हैं, उन्हें इसमें शामिल होने के लिये उन्होंने आवाहन किया कि डर और शंका को त्यागकर इस ऐतिहासिक कार्य में वे हाथ बटावें।

दूसरी ओर २० फरवरी की ब्रिटिश घोषणा के उपरान्त मुस्लिम लीग सन् १६४८ ई० के जून के बाद ब्रिटिश शासन-सत्ता के खत्म होने के उपरान्त सिन्ध में स्वतंत्र राज्य घोषितकर मुस्लिम लीगी सरकार कायम करने का प्रयत्न करने लगी। इस विचार से सिन्ध के शिक्षा मन्त्री ने मिस्टर जिन्ना से एक विधान परिषद की नियुक्ति के हेतु अनुरोध किया, जो स्वतंत्र सिन्ध राज्य के लिये स्वतंत्र भावी विधान तैयार करेगा। साथ ही साथ उन्होंने यह भी लिखा कि अंग्रेजों के जाने के बाद राज्य-शक्ति हस्तांतरित करने के लिये हम अभी से तैयार हों।

इसके उपरान्त देश में विशेषतः पंजाब में साम्प्रदायिक युद्ध विकट रूप ग्रहण करने लगा।

पंजाब और बंगाल के विभाजन की माँग

जब हिन्दू पूँजीपतियों ने यह समझा कि बिना पाकिस्तान स्वीकार किये मुस्लिम पूँजीपतियों के साथ समझौता नहीं हो सकता। हिन्दू और मुस्लिम पूँजीपतियों के बीच एकता कायम करने के लिये पाकिस्तान की माँग स्वीकार करना आवश्यक ज्ञात होने लगा। हिन्दू पूँजीपतियों ने अपने आर्थिक स्वार्थ के लिये यह आवश्यक समझा था कि

जहाँ तक सम्भव हो सके, वहाँ तक कम से कम क्षेत्र पाकिस्तान में हो। अतः सर्वप्रथम सिखों के अकाली दल ने पंजाब के विभाजन की माँग पेश की। इसे समर्थन करते हुए कांग्रेस के सुधारवादी पूँजीवादी नेतृत्व ने यह माँग पेश की कि अगर पाकिस्तान की स्थापना होती है, तो जिस आधार पर यह स्थापना होगी, उसी आधार पर पंजाब और बंगाल को भी विभाजित किया जाये। बंगाल के जिन जिलों में मुसलमान बहुमत में हैं, वह तो पाकिस्तान में हो और जिन जिलों में हिन्दू बहुमत में हैं, वह हिन्दुस्तान में शामिल किया जाये। पंजाब और बंगाल के साम्प्रदायिक आधार पर विभाजन की माँग का कांग्रेस के पूँजीवादी सुधारवादी नेतृत्व ने भारतवर्ष के साम्प्रदायिक आधार पर विभाजन को स्वीकार किया और आम मुस्लिम जनता के ऊपर यह असर पैदा किया कि मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग भारतीय मुसलमानों के जीवन के विकास और उन्नति के लिये उचित और आवश्यक है।

२० फरवरी की घोषणा के उपरान्त राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्यकारिणी की बैठक ता० ८-३-४७ को हुई और इसकी ओर से २० फरवरी की घोषणा के ऊपर निम्नलिखित प्रस्ताव प्रकाशित किया गया :—'राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्यकारिणी कमेटी ने इस घोषणा का स्वागत किया, जिसमें सन् १९४८ ई० के जून तक भारतीयों के हाथों में राज्य-सत्ता हस्तांतरित कर देने की निश्चित इच्छा व्यक्त की गई और इसके दृष्टिकोण से आगे के सभी कदम उठाये जायेंगे।""""इस प्रस्ताव में यह भी कहा गया है कि ब्रिटिश कैबिनेट मिशन की

१६ मई की आयोजना को कांग्रेस पहले स्वीकार कर चुकी थी और इसके बाद ६ सितम्बर की ब्रिटिश कैबिनेट की १६ मई की घोषणा की व्याख्या को भी स्वीकार कर चुकी है। इसके अनुसार विधान परिषद् भावी विधान के निर्माण के कार्यों में व्यस्थ है।......

विधान परिषद् का कार्य ऐच्छिक है। बहुधा कार्यकारिणी कमेटी ने यह घोषित किया है कि इसके लिये कोई बाध्य नहीं किया जा सकता।......यह स्पष्ट कर दिया गया है कि विधान परिषद् द्वारा निर्मित विधान केवल वहाँ लागू होगा, जहाँ यह स्वीकृत होगा। यह भी सोचना चाहिये कि कोई भी प्रान्त या किसी प्रान्त का कोई भी हिस्सा, जो इसे स्वीकार करता है और जो संघ (यूनियन) में शामिल होना चाहता है, ऐसा करने से रोका नहीं जा सकता। अतः किसी भी तरह का दबाव नहीं होगा। और जनता अपने भविष्य का स्वतः निर्णय करेगी।

इस घड़ी में जब अन्तिम निर्णय करना है और हिन्दुस्तानियों के दिमाग तथा हाथ से भारत का भविष्य गठित होने जा रहा है, कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटी सभी दलों, गुटों और खास तौर से सभी भारतीयों से यह माँग करती है कि हिन्सात्मक तथा प्रतिरोधी तरीकों को छोड़ दें और विधान तैयार करने में शान्तिपूर्ण तथा प्रजातान्त्रिक तौर से सहयोग करें। निर्णय करने का समय आ गया है, कोई इसे रोक नहीं सकता, न अलग रह सकता और न अछूता ही रह सकता है।......कांग्रेस के प्रतिनिधियों से मिलने के लिये मुस्लिम लीग को इसने निमन्त्रित किया।......और इसके सम्बन्ध में प्रस्ताव में कहा कि नये विकास की दृष्टि से, जो तीव्रता के साथ

भारतीयों के हाथों में शासन-सत्ता हस्तान्तरित कर देने के लिये हो रहा है, यह भारतीयों के लिये अति आवश्यक हो गया है कि सामूहिक तथा सहयोगी के रूप में इसके लिये तैयारी करें, जो सभी के लिये हितकर होगा।

साथ ही साथ कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटी ने पंजाब के विभाजन की भी माँग की।

साम्प्रदायिक दंगा

२०वीं सदी के पूर्व हिन्दू-मुस्लिम दंगे का नाम कभी सुनने में नहीं आता था। हाँ! जब से २०वीं सदी में ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन चलने लगा था और आन्दोलन को बन्दकर मध्यम वर्गीय नेतृत्व ने सुधारवादी वैधानिक पथ में देश को ले जाने का प्रयत्न किया, उस समय देश में साम्प्रदायिक दंगे होने लगे। प्रथम साम्राज्यवादी युद्ध के अवसर पर एक ओर सशस्त्र क्रान्ति का प्रयत्न विफल हो गया था और दमन के द्वारा क्रान्तिकारी शक्तियाँ बुरी तरह कुचली गई थीं, दूसरी ओर युद्ध काल में मध्यम वर्ग तथा मध्यम वर्गीय राष्ट्रीयसुधार-वादी नेतृत्व ने जी-जान से ब्रिटिश सरकार को साम्राज्यवादी-युद्ध संचालन में सहायता की थी और युद्ध के उपरान्त भारतीय विधान में कुछ सुधार होने वाला था। ऐसी भौतिक परिस्थिति में सन् १९१७ ई० के सर्वप्रथम भारतवर्ष में हिन्दू-मुस्लिम दंगा आरम्भ हुआ था। और तब से आज तक विभिन्न रूप में सर्वदा होता रहा है। हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुस्लिम दंगे के इतिहास के विश्लेषण से यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि जब कभी भारतीय जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों के दबाव से ब्रिटिश सरकार ने राजनीतिक सुधार रूपी रोटी के टुकड़े फेंके हैं, उस समय

मध्यम वर्ग तथा बुद्धिजीवी वर्ग भी आपस में बाँटने के प्रयत्न में साम्प्रदायिक दंगे का शरण लेते रहे। इससे यह भी विदित होता है, कि जब तक सुधार रूपी रोटी के टुकड़े के बटवारा करने का प्रश्न भारतीय मध्यम तथा बुद्धिजीवी वर्ग के सामने रहा, तब तक साम्प्रदायिक दंगे का रूप एक प्रकार का रहा था। किन्तु भारतीय समाज के सामाजिक जीवन की भौतिक अवस्था के परिवर्तन के साथ-साथ राजनीतिक अवस्था में भी मौलिक परिवर्तन होना आवश्यक था। सन् १९३७ ई० के पूर्व भारतीय समाज की भौतिक तथा राजनीतिक अवस्था एक प्रकार की थी और साम्प्रदायिक दंगे का रूप भी उसके अनुसार ही रहा करता था। परन्तु सन् १९३७ ई० के उपरान्त भारतीय समाज के भौतिक तथा राजनीतिक अवस्था में मौलिक परिवर्तन ज्ञात हो रहा था। अतः हिन्दू-मुस्लिम दंगे का रूप भी परिवर्तित हो गया था।

द्वितीय साम्राज्यवादी युद्ध काल में भारतीय पूँजीवाद ने काफी विकास तथा प्रगति की थी। भारतीय विधान में राजनीतिक सुधार केवल होने से भारतीय पूँजीवाद तथा पूँजीवादी वर्ग की आवश्यकता पूरी नहीं हो सकती थी। युद्ध के उपरान्त इसके सामने राजनीतिक सुधार प्राप्त करने का प्रश्न नहीं था बल्कि भारतीय शासन-सत्ता के हस्तान्तरित होने का प्रश्न था। बिना भारतीयों के हाथों में भारतीय शासन-सत्ता के हस्तांतरित हुए भारतीय पूँजीवाद तथा पूँजीवादी वर्ग का विकास तथा प्रगति सम्भव नहीं ज्ञात होती थी। उधर भारतीय शोषित-श्रमिक जनता का ब्रिटिश विरोधी जन-आन्दोलन दिन प्रति-दिन उग्रतर होता जा रहा था, जिसकी प्रबलता तथा भया-

नक रूप को अनुभव करके ब्रिटिश सरकार के साथ-साथ भारतीय पूँजीवादी वर्ग भी दहल उठा था। वर्षों तक संसार-व्यापी साम्राज्यवादी युद्ध के संचालन के परिणाम-स्वरूप ब्रिटिश साम्राज्यवाद पहले जैसा शक्तिशाली नहीं रहा था। युद्ध के उपरांत भारत जैसे औपनिवेशिक देश में साम्राज्यवादी शासन कायम रखना ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिये कठिन सा हो गया था। अपनी परिवर्तित भौतिक अवस्था में साम्राज्य-वादी शोषण भारतवर्ष में कायम रखना ब्रिटिश सरकार के लिये सम्भव नहीं ज्ञात होता था। अतः राष्ट्रीय और अन्त-र्राष्ट्रीय भौतिक परिस्थिति से बाध्य होकर सन् १९४६ ई० की १६ मई को भारतीयों के हाथों में शासन-सत्ता सौंप देने की घोषणा ब्रिटिश सरकार ने की थी। भारतीयों के हाथों में शासन-सत्ता हस्तांतरित होने का सिलसिला पहली सितम्बर सन् १९४६ ई० को इस ऐतिहासिक घोषणा के अनुसार प्रारम्भ होने जा रहा था।

परन्तु भारतीय पूँजीवाद के विकास तथा प्रगति के साथ-साथ भारतीय पूँजीवादी वर्ग का आन्तरिक संघर्ष तीव्रतर होता गया। यह इतना तीव्र हो गया था कि अविभाजित हिन्दुस्तान के रहते हुए उनके बीच समझौता सम्भव नहीं ज्ञात होता था। मुस्लिम पूँजीपति पूँजीवादी संसार में अपने विकास तथा प्रगति के लिये साम्प्रदायिक आधार पर भारतवर्ष का विभाजन आवश्यक समझता था। परन्तु हिन्दू-पूँजीपति और ब्रिटिश साम्राज्यवाद भारत-विभाजन को अपने लिये लाभदायक नहीं समझते थे। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के रूप में भारत विभाजन को वे स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं थे। मुस्लिम

मध्यम वर्ग के प्रतिनिधि मुस्लिम लीग ने यह समझा कि बिना उसके भी अन्तःकालीन राष्ट्रीय सरकार और भारतीय विधान परिषद् की स्थापना कांग्रेस के नेतृत्व में होने जा रही है, जिसे मुसलमानों के लिये वह घातक बताने लगी। एक ओर तो समझौते की बातें हो रही थीं और दूसरी ओर सारे देश में साम्प्रदायिक दंगे की तैयारी तथा संगठन किया जा रहा था। साम्प्रदायिक दंगे के संचालन तथा संगठन के लिये अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने केन्द्रीय "कौन्सिल आफ ऐक्सन" की नियुक्ति की थी, जिसकी शाखा प्रत्येक प्रान्त में स्थापित की गई थी। यहाँ हम यह न भूलें कि ब्रिटिश सरकार के खिलाफ किसी प्रकार के आन्दोलन को संचालित करने के हेतु मुस्लिम लीग की "कौन्सिल आफ ऐक्सन" की स्थापना नहीं की गई थी। हम ऊपर कह चुके हैं कि भारतीय पूँजीवादी वर्ग का आन्तरिक संघर्ष ब्रिटिश और भारतीय पूँजीवादी वर्ग के बीच के संघर्ष से कहीं ज्यादा तीव्र हो गया था, जिसके कारण ब्रिटिश सरकार के खिलाफ आन्दोलन चलाने का उनके सामने प्रश्न नहीं था। बल्कि मुख्य प्रश्न था आन्तरिक संघर्ष के संचालन का। अतः हिन्दू-मुस्लिम दंगे को संचालित तथा संगठित करने के लिये ही मुस्लिम लीग ने कौन्सिल आफ ऐक्सन की स्थापना की थी।

ऊपर के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि साम्प्रदायिकता के विष-वृक्ष के बीजारोपण, विकास तथा फैलाव की जिम्मेदारी बेशक ब्रिटिश सरकार की फूट पैदा करके शासन करने की नीति, मुस्लिम लीग के प्रतिक्रियावादी नेतृत्व के साथ-साथ राष्ट्रीय कांग्रेस की पूँजीवादी सुधारवादी वैधानिक नीति के

ऊपर अवश्य रही है। परन्तु साम्प्रदायिक दंगे की जिम्मेदारी से वामपक्षी बरी नहीं हैं। भारतीय स्टालिनवादी (कम्युनिस्ट) के ऊपर सबसे ज्यादा इसकी जिम्मेदारी है। सन् १९३७ ई० के उपरान्त यह लगातार कांग्रेस-लीग के समझौते का नारा बुलन्द करते रहे। सन् १९४० ई० में पाकिस्तान की माँग का प्रस्ताव पास करने के उपरान्त विशेषतः १९४२ ई० से तो कांग्रेस-लीग समझौता पर विशेष जोर लगाया। सन् १९४६ ई० में जब मुस्लिम लीग पाकिस्तान के आधार पर केन्द्रीय तथा प्रान्तीय एसेम्बली का चुनाव लड़ रही थी, उस समय भी राष्ट्रीय मुस्लिम के खिलाफ मुस्लिम लीग का केवल समर्थन ही उन्होंने नहीं किया बल्कि पूरा सहयोग देकर पाकिस्तान की माँग का समर्थन किया। मुस्लिम लीग के प्रतिक्रियावादी नेतृत्व के प्रभाव को आम मुस्लिम जनता के ऊपर मजबूत करने में कम्युनिस्टों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। एक ओर मुस्लिम लीग देश भर में साम्प्रदायिक दंगे के संचालन तथा संगठन की तैयारी कर रही थी, दूसरी ओर स्टालिनवादी कांग्रेस-लीग-कम्युनिस्ट एकता का नारा बुलन्द कर रहे थे। भारतीय स्टालिनवादियों की क्रान्ति-विरोधी नीति ने साम्प्रदायिक दंगे को विकसित होने में सहायता की, जिसे इतिहास क्षमा नहीं कर सकता।

तथाकथित वामपक्षी भारतीय समाजवादी भी साम्प्रदायिक विष-वृक्ष के फैलने के लिये कुछ अंश तक जिम्मेदार अवश्य हैं। अगस्त क्रान्ति और नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज के आक्रमण के उपरान्त, जब भारतीय शोषित जनता के साथ विश्वासघात करके भारतीय पूँजीवादी

वर्ग ब्रिटिश साम्राज्यवादी-पूँजीवादी वर्ग के साथ क्रान्तिकारी जनशक्तियों के खिलाफ प्रतिक्रियावादी गुट का निर्माण करने में व्यस्त था, उस समय वामपन्थियों का यह ऐतिहासिक कार्य था कि सन् १९४२ ई० की क्रान्ति से भारतीय शोषित जनता की विकसित राजनीतिक चेतना को क्रान्तिकारी वर्ग तथा समाजवादी चेतना में रूपान्तरित करना आवश्यक था। परन्तु भारतीय समाज या कांग्रेस सोशलिस्टों ने ऐसा न करके पूँजीवादी सुधारवादी नेतृत्व के प्रभाव में भारतीय जनता को रखने का प्रयत्न करते रहे। अतः ये भी साम्प्रदायिक दंगे के लिये कम जिम्मेदार नहीं हैं।

सन् १९४६ ई० की पहली सितम्बर को मुस्लिम लीग के बिना अन्तःकालीन राष्ट्रीय सरकार की स्थापना राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में होने जा रही थी। इसके खिलाफ आम मुस्लिम जनता को करने के लिये ऐतिहासिक तिथि १६ अगस्त को हिन्दुस्तान भर में मुस्लिम लीग की ओर से "डाइरेक्ट ऐक्सन डे" मनाया गया था। जिन प्रान्तों में मुस्लिम लीगी मन्त्रिमंडल था, वहाँ पर इसके लिये विशेष रूप से तैयारी की गई थी। मुस्लिम लीगी मन्त्रियों ने अपनी शक्ति को इसके संचालन में प्रयोग किया था। बंगाल के मुस्लिम लीग मंत्रिमंडल ने विशेषतः वहाँ के प्रधान मन्त्री सुहरावर्दी ने काफी तैयारी तथा संगठन किया था। कलकत्ता के पुलिस हेड क्वार्टर में ४८ घंटे तक रहकर फोन से साम्प्रदायिक दंगे को १६-१७ अगस्त को संचालित किया था, जिसके विषय में अखबारों में काफी उल्लेख हो चुका था। परन्तु इसका परिणाम मुस्लिम लीग के विपरीत हुआ था। हिन्दुओं से कहीं ज्यादा मुसलमानों का कत्ल हुआ था। मुस्लिम

लीग की मकसद हासिल नहीं हुई थी।

प्रथम साम्प्रदायिक युद्ध के संचालन के उद्देश्य की पूर्ति में मुस्लिम लीग कलकत्ता में असफल रही थी। बंगाल में हिन्दुओं के लिये सबसे कमजोर स्थान नोवाखाली वगैरह को मुस्लिम लीग ने अपने आक्रमण का निशाना बनाया। यहाँ के प्रधान मन्त्री के नेतृत्व में दूसरे साम्प्रदायिक युद्ध की तैयारी तथा संगठन होने लगा। मुस्लिम लीग के देख-भाल में आयोजना तैयार की जाने लगी। इसके परिणामस्वरूप सैकड़ों हिन्दू कत्ल किये गये। हाहाकार मचा। यही ज्ञात होता था कि धर्म के नशा ने मनुष्य को इन्सान से हैवान बना दिया था। वह यह भूल गये थे कि वह इन्सान हैं। यह दंगे नहीं हो रहे थे बल्कि इसने कलकत्ता से ही साम्प्रदायिक युद्ध का रूप अपनाया था। व्यक्तिगत हमले इसकी विशेषता नहीं थी, बल्कि इसकी विशेषता सामूहिक आक्रमण था।

हिन्दुस्तान के और प्रान्तों में नोवाखाली वगैरह के साम्प्रदायिक युद्ध की बहुत बुरी प्रतिक्रिया हुई थी। सर्वप्रथम इस प्रतिक्रिया का शिकार बिहार हुआ। यहाँ स्पष्ट रूप में साम्प्रदायिक युद्ध होने लगा। बिहार के कई जिलों में एक साथ यह युद्ध होने लगा। हजारों मुस्लिम मारे गये। जो बचे थे, उनमें अधिकांश अपने घर को छोड़कर भाग गये थे। दूसरे स्थानों में शरणार्थी जीवन व्यतीत करने को बाध्य हुए थे। यहाँ और भी मनुष्यता को दबाकर मनुष्य की राक्षसी प्रवृत्ति काफी प्रबल हो उठी थी और मनुष्यता का एकदम लोप कर दिया था। हिन्दू सभ्यता का मुख्य आधार सहनशीलता का कहीं नाम भी नहीं था। सचमुच साम्प्रदायिकता तथा धर्म के नशा में मनुष्य

पागल हो उठा था। नोवाखाली की प्रतिक्रिया बिहार तक ही सीमित नहीं रही थी। संयुक्त प्रान्त में भी यह हुई। विशेषतः गढ़मुक्तेश्वर इस प्रतिक्रिया का बुरी तरह शिकार हुआ था।

साम्प्रदायिक युद्ध तक ही अपने कार्य-क्रम को मुस्लिम लीग ने सीमित नहीं रख छोड़ा था। बल्कि इसके अलावे और भी इसके कार्य-क्रम थे। जिन प्रान्तों में मुस्लिम बहुमत था और वहाँ गैरमुस्लिम लीगी मन्त्रिमंडल था वहाँ उसके खिलाफ जन-आन्दोलन को संचालित तथा संगठित करके उसे हटाने का प्रयास मुस्लिम लीग कर रही थी। सर्वप्रथम पंजाब और फ्रान्टियर की प्रान्तीय सरकार इनका शिकार होने लगी। फ्रान्टियर में कांग्रेसी मन्त्रिमंडल और पंजाब में युनियनिष्ट—कांग्रेसी संयुक्त मन्त्रिमंडल था। पंजाब के मन्त्रिमंडल ने मुस्लिम लीग के नेशनल गार्ड और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को गैरकानूनी घोषित कर दिया था और दफा १४४ लगा दिया था। नागरिक स्वतंत्रता के नाम पर मुस्लिम लीग ने इसका विरोध जन-आन्दोलन का संचालन करके किया। हजारों की तादाद में मुसलमान जेलों के सींकचों के भीतर बन्द कर दिये गये थे। इसके परिणाम-स्वरूप पंजाब मन्त्रिमंडल खत्म कर दिया गया और गवर्नर-शासन कायम किया गया था। अभी तक यह आन्दोलन प्रान्तीय सरकार के खिलाफ सीमित था परन्तु मन्त्रिमंडल के खत्म होने और गवर्नर-शासन केकायम होते ही इस आन्दोलन ने पंजाब के पश्चिमी जिलों में साम्प्रदायिक युद्ध का रूप अपना लिया। उधर फ्रान्टियर के कांग्रेसी मन्त्रिमंडल के खिलाफ मुस्लिम लीग का आन्दोलन चल रहा था। बहुत से मुसलमान जेलों में भरे गये। ३ जून की ब्रिटिश

सरकार की ऐतिहासिक घोषणा के उपरान्त मुस्लिम लीग का यह आन्दोलन बन्द किया गया था।

एक ओर तो मुस्लिम लीग अन्तःकालीन राष्ट्रीय सरकार में शामिल होकर अन्दर से विभिन्न प्रकार का अड़ङ्गा डाल रही थी और भारतीय विधान परिषद् का बहिष्कार किये हुए थी। दूसरी ओर देश भर में वह साम्प्रदायिक युद्ध को संगठित एवं संचालित कर रही थी। अजब परिस्थिति पैदा हो रही थी। ज्यादा दिन तक इसे जारी रखना भारतीय समाज के लिये विशेषतः भारतीय पूँजीवादी वर्ग के लिये बहुत ही घातक परिमाणित होता। यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिये भी कम हानिकारक नहीं था। अतः ब्रिटिश सरकार और भारतीय पूँजीवादी वर्ग इसे ज्यादा दिन तक चलने नहीं दे सकते थे। अन्त में, भारतीय पूँजीवादी वर्ग की राय से सन् १९४७ ई० की ३ जून को ब्रिटिश सरकार ने अन्तिम ऐतिहासिक घोषणा की।

३ जून को अंतिम ब्रिटिश घोषणा

पंजाब में साम्प्रदायिक युद्ध बन्द होने के बजाय तीव्रतर होता गया। मार्च के तृतीय सप्ताह में पं० नेहरूजी ने लाहौर में प्रेस प्रतिनिधियों के बीच बोलते हुए कहा, "पंजाब में जो कुछ हो रहा है उसका सम्बन्ध भारतीय राजनीति है।" नये वायसराय मौन्टबैटेन मार्च के चौथे सप्ताह के प्रारम्भ में पधारे। शपथ लेने के उपरान्त दिल्ली के शाही दरबार भवन में ता० २४-३-४७ को बोलते हुए उन्होंने कहा कि कुछ महीनों के अन्दर भारतीय समस्या का समाधान अवश्य प्राप्त होगा। आगे कहते हुये उन्होंने कहा कि सन् १९४८ ई० के जून तक

शासन-सत्ता भारतीयों के हाथों में हस्तांतरित कर देने का निश्चय ब्रिटिश सरकार ने कर लिया है। इसके लिये नये वैधानिक प्रबन्ध अवश्य करना है और शासन-सम्बन्धी बहुत से पेचीदे सवालों को हल करना है, जो शीघ्र ही काम में लाया जायेगा, जिसका स्पष्ट अर्थ है, कुछ महीनों के अन्दर हल खोज निकालना।......

इसके बाद ता० २५-३-४७ को वायसराय ने नेहरूजी तथा मियाँ लियाकत अली से बातें की। ता० २७-३-४७ को मि० जिन्ना ने पाकिस्तान के आधार पर संधि के लिये आवाहन किया। ता० ३-४-४७ को मिस्टर जिन्ना के पाकिस्तान के आधार पर सन्धि के लिये आवाहन पर अहमदाबाद में बोलते हुए सरदार पटेल ने कहा कि "पाकिस्तान का सिद्धांत एक बहुत बड़ा मजाक है" और "एक बच्चे का खेल है।" केवल न्याय के आधार पर ही पाकिस्तान की स्थापना हो सकती है, न कि तलवार के बल से।

बंगाल को हिन्दू और मुस्लिम बंगाल में विभाजित करने की माँग बंगाल से उठने लगी। अप्रैल के प्रथम सप्ताह में बंगाल की प्रांतीय कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटी ने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया कि ब्रिटिश सरकार मौजूदा बंगाल सरकार के हाथों में शासन-सत्ता सौंपने को सोच रही है, जो स्वतंत्र पृथक् बंगाल राज्य की स्थापना के लिये दृढ़ है फिर जिस प्रकार से यह गठित है वह एक साम्प्रदायिक पार्टी सरकार है। बंगाल का ऐसा हिस्सा, जो भारतवर्ष के संघ (यूनियन) में रहना चाहती हो, रहने देना चाहिये और हिन्दुस्तान के संघ

(यूनियन) में एक अलग प्रान्त के रूप में गठित करना चाहिये।

पंजाब के कांग्रेसी तथा सिख नेताओं ने पंजाब धारा सभा में कहा कि पंजाब की कठिन राजनीतिक स्थिति का एक मात्र हल है पंजाब का विभाजन। उधर कांग्रेस और लीग के बीच समझौते का प्रयत्न वायसराय कर रहे थे।

जलियानवाला बाग दिवस पर बोलते हुये नेहरूजी ने कहा कि समय अब ऐसा आ गया है कि हम इधर या उधर का निर्णय करें। यह समय की आवश्यकता की माँग है कि बहुत सी राजनीतिक पार्टियों के जिम्मेदार व्यक्ति एक गोलमेज कान्फ्रेंस में बैठकर अन्तिम निर्णय करें। ...

उन्होंने दुख के साथ कहा कि करीब ४० दिन पहले कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटी ने बातें करने के लिये लीग को निमन्त्रित किया था, लेकिन इसका जवाब लीग ने नहीं दिया।...आगे उन्होंने कहा कि मुस्लिम लीग के पाकिस्तान का सवाल केवल दो तरह से—पारस्परिक वाद-विवाद के या युद्ध के द्वारा—ही हल हो सकता है, कोई तीसरा रास्ता नहीं है। ..... देश में साम्प्रदायिक युद्ध के ऊपर बोलते हुए उन्होंने कहा कि इसके पहले भी हिन्दुस्तान में दंगे हुये थे, लेकिन वे इतने बड़े नहीं थे, जैसा आज देश में हो रहा है। सन् १९४६ ई० के अगस्त से साम्प्रदायिक दंगा ने एक नया रूप अपनाया है। जब से लोगों ने समझा कि तीव्रता के साथ हिन्दुस्तान परिवर्तित हो रहा है, उस समय से ही दंगे प्रारम्भ हुए। सम्भवतः यह इसलिये कि कुछ दलें दबाव डालना चाहती हैं और कुछ अंश में यह चाहती हैं कि ब्रिटिश यहाँ से चले जायँ।

आगे नेहरूजी ने कहा कि अब यह समय आ गया है कि हम यह निर्णय कर लें कि हम संयुक्त भारत चाहते हैं या विभाजित। यह सवाल शीघ्र से शीघ्र तय हो जाना चाहिये। हम किसी प्रान्त या देश के किसी भी अंश को यह नहीं चाहते कि वह हिन्दुस्तान में या पाकिस्तान में शामिल हो। सिन्ध ने सन् १९४८ ई० के जून में अंग्रेजों के चले जाने के बाद स्वतंत्र होने की घोषणा कर दी है।···इसी प्रकार बंगाल और पंजाब के कुछ हिस्से अलग होना चाहते हैं। उन्हें ऐसा करने से कोई नहीं रोक सकता है। इन सब के बावजूद देश भर में विशेषत: पंजाब में साम्प्रदायिक युद्ध विशाल रूप अपनाता जा रहा था। इसे शान्त करने का प्रयत्न वायसराय कर रहे थे। इसके फलस्वरूप गांधीजी तथा जिन्ना साहब ने संयुक्त रूप से साम्प्रदायिक युद्ध को बन्द करने की भारतीय जनता से अपील की:—"हम देश भर में फैले हुए हिन्सा तथा भ्रष्टता के कार्यों से काफी दु:खी हैं, जिसने हिन्दुस्तान के स्वच्छ नाम को कलंकित किया है और जिसने बिना किसी प्रकार का विचार किये भारतीय जनता के ऊपर अकथनीय कठिनाई ला दी है।

"हम सर्वदा राजनीतिक हित की सिद्धि के लिये हिन्सा को इस्तेमाल करने का विरोध करते रहे हैं, और हिन्दुस्तान के सभी सम्प्रदायों के लोगों—चाहे जिस धर्म के मानने वाले हों—को आवाहन करते हैं कि वे केवल हिन्सा के कार्यों और अराजकता से ही दूर न रहें बल्कि वह कोई उभाड़ने वाली बातें न कहें और न लिखें।"

हस्ताक्षर—एम० ए० जिन्ना हस्ताक्षर—एम० के० गांधी

ता० १६-४-४७ को सूरत में भाषण देते हुए सरदार पटेल ने मुस्लिम लीग से कांग्रेस के निमन्त्रण पर गौर करने का अनुरोध किया और कांग्रेस के साथ बातें करने के लिये प्रतिनिधि भेजने को कहा, जिससे राजनीतिक मसले मैत्रीपूर्ण ढंगसे हल हो जायँ। अगर ऐसा हम नहीं करते तो सन् १९४८ ई० के जून तक राज्य-सत्ता हस्तांतरित करने के लायक हम नहीं हो सकेंगे।......कुछ समय तक और भारत में रहने को ब्रिटिश सोचेंगे।

उत्तर-पश्चिम सरहदीप्रान्त में कांग्रेसी मन्त्रिमंडल को हटाने के हेतु मुस्लिम लीग की ओर से कांग्रेसी सरकार के खिलाफ आन्दोलन चलाया जा रहा था, जिससे साम्प्रदायिक युद्ध और भी भभक उठा था। हजारों की संख्या में मुसलमान जेलों में बन्द थे। गांधी-जिन्ना अपील के उपरान्त उत्तर-पश्चिम सरहदी प्रान्त की सरकार ने एक प्रेस वक्तव्य में कहा कि......"गांधी-जिन्ना अपील के साथ सरहदी प्रान्तीय सरकार दिल से साथ होती है और प्रान्त की जनता से अनुरोध करती है कि वे इसकी सच्चाई का प्रतिपादन करें।......

"अपनी ओर से उसके अनुसार, जो राजबन्दी हिन्सात्मक कार्य के सम्बन्ध में जेलों में बन्द नहीं हैं, उन्हें बिना शर्त के छोड़ देने का निश्चय करती है।

"शान्तिपूर्ण सभा तथा राजनैतिक विचारों को व्यक्त करने की आजादी में किसी प्रकार का विघ्न डालने का विचार सरकार का नहीं है।......"

दिल्ली में एक आम सभा में भाषण करते हुए डाक्टर श्यामाचरण मुकर्जी ने बंगाल-विभाजन की माँग की और कहा

कि इसके सिवाय दूसरा और कोई हल नहीं है।

ता० २४-४-४७ को जिन्ना साहब ने मुस्लिम लीग के कार्यकर्त्ताओं से अनुरोध किया कि "कई दिनों तक वायसराय से बातें होने के फलस्वरूप सरहदी सरकार ने उक्त घोषणा की है।······वायसराय वहां की परिस्थिति स्वयं अनुभव करने के हेतु वहाँ जा रहे हैं।······मैं आम मुसलमानों से और विशेषत: मुस्लिम लीग के कार्यकर्त्ताओं से अमन-चैन तथा शान्ति बनाये रखने का अनुरोध करता हूँ, जिससे वायसराय को परिस्थिति के समझने का पूरा मौका मिल सके।···

ता० ३०-४-४८ को भारतीय विधान परिषद् के अध्यक्ष श्री डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने प्रेस प्रतिनिधियों की भेंट में कहा कि "अगर भारत का विभाजन होता है तो यह जितना सम्भव तथा पूर्ण हो सके, उतना हो, जिसमें बंगाल तथा पंजाब विभाजन शामिल हो, जिसमें किसी प्रकार के झगड़े के लिये गुँजाइश न रह जाये। पंजाब और बंगाल के विभाजन की जोरदार माँग के उठते ही मुस्लिम लीग परेशान होने लगी। वही सुहरावर्दी, जो कलकत्ता के कत्ल-आम के लिये जिम्मेदार हैं, तथा अन्य मुस्लिम लीगी नेतागण शान्ति कायम रखने के हेतु अपील करने लगे।···

वायसराय के प्रयत्न के फलस्वरूप ता० ६-५-४७ को गांधी-जिन्ना मिलन हुआ। इस मिलन की असफलता के उपरान्त गांधीजी की स्वीकृति से जिन्ना साहब ने यह वक्तव्य प्रकाशित किया कि "दो बातों पर हमने बातें की। एक थी पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में भारतवर्ष को विभाजित करने की बात। गांधीजी विभाजन के सिद्धान्त को नहीं स्वीकार करते हैं। वह

सोचते हैं कि भारत का विभाजन अनिवार्य नहीं है। लेकिन मैं पाकिस्तान को केवल अनिवार्य ही नहीं समझता बल्कि भारतवर्ष की राजनीतिक समस्या का एकमात्र हल है। दूसरी चीज यह है, जो बातें हमने की हैं यानी एक पत्र जिस पर हमने हस्ताक्षर किया है जिसमें शान्ति बनाये रखने की अपील जनता से की है और इस सम्बन्ध में हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि हम अपने-अपने क्षेत्र में यह प्रयत्न करें कि हमारी अपील मानी जाय और इसके लिये हम पूर्ण प्रयत्न करें।"

ता० १०-५-४७ को शिमला के वायसराय भवन से यह प्रकाशित हुआ कि ता० १७-५-४७ को वायसराय ने नेहरूजी, जिन्ना साहब, सरदार पटेल, लियाकत अली, तथा सरदार बलदेवसिंह को मिलने के लिये बुलाया है। ता० ११-५-४७ को नेताओं का मिलन स्थगित कर दिया गया। ता० ११-५-४७ को सरदार पटेल को जवाब देते हुए मिस्टर जिन्ना ने कहा कि अगर ब्रिटिश सरकार भारतवर्ष के बिभाजन करने का निश्चय करती है, तो केन्द्रीय सरकार को भंग कर देना होगा और सभी सत्ता दो विधान परिषदों के हाथों में दे देना होगा, जो हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में बनेगी और उनका प्रतिनिधित्व करेगी।

ता० १५-५-४७ को ब्रिटिश सरकार ने वायसराय को लन्दन बुलाया। पंजाब में सिखों तथा मुसलमानों के बीच समझौता करवाने के लिये वायसराय ने पटियाला के महाराजा को जिन्ना साहेब से बातें करने को भेजा परन्तु सफल नहीं हुए।

ता० १८-५-४७ को वायसराय लन्दन के लिये रवाना हुए। यहाँ उनकी आयोजना के साथ काफी सम्मत थी। ता० १६-५-४७ को मद्रास में भाषण करते हुए राजेन्द्र बाबू ने कहा कि अगर पंजाब और बंगाल का विभाजन मुस्लिम लीग नहीं मानती, तो कांग्रेस भारतवर्ष के विभाजन को नहीं स्वीकार करेगी। ता० २१-५-४७ को बंगाल और पंजाब के विभाजन का विरोध मि० जिन्ना ने किया और पंजाब तथा बंगाल को मिलाने के हेतु यू० पी० तथा बिहार से दहलीज (Corridor) की माँग की।

ता० २३-५-४७ को राजेन्द्र बाबू ने इसका विरोध किया। मुस्लिम लीग की ओर से अन्तःकालीन सरकार के कानून-मंत्री श्री योगेन्द्र मंडल, हरिजन नेता ने बंगाल के विभाजन का समर्थन किया।

ता० ३०-५-४७ को प्रार्थना-भवन में गांधीजी ने यह घोषित किया कि १६ मई की घोषणा के अनुसार विधान परिषद् कार्य कर रहा है।...... आगे गांधीजी कहते हैं कि १६ मई की घोषणा को कांग्रेस तथा सरकार ने स्वीकार किया है, जो इससे पीछे हट गया, वह दूसरे के साथ अविश्वास करेगा।

यह हम देख चुके हैं कि २० जनवरी की ब्रिटिश-घोषणा भी हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक प्रश्न को हल नहीं किया बल्कि इससे और भी उलझ गया। यह भी हमने देखा है कि एक ओर तो अन्तःकालीन राष्ट्रीय सरकार में शामिल होकर अन्दर से मुस्लिम लीग अड़ङ्गा लगा रही थी। अभी तक विधान परिषद् का विरोध मुस्लिम लीग कर रही थी और दूसरी ओर सारे देश में साम्प्रदायिक युद्ध का संचालन और संगठन

मुस्लिम लीग के नेतृत्व में हो रहा था। लीग और कांग्रेस के बीच समझौते के सारे प्रयत्न विफल रहे। उस समय के मौजूदा वायसराय लार्ड वावेल ब्रिटेन को वापस बुला लिया गया और लार्ड माउन्टबैटेन वायसराय के पद पर नियुक्त किये गये। यहाँ पदार्पण करने के बाद लार्ड माउन्टबैटेन ने लीग और कांग्रेस के नेताओं से काफी बातें की और उन्होंने यह भलीभाँति अनुभव किया कि कांग्रेस-लीग समझौते पूँजीवादी वर्ग की आन्तरिक असंगतियों के कारण कतई सम्भव नहीं हैं। साम्प्रदायिक आधार पर पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में भारतवर्ष के विभाजन के बिना साम्प्रदायिक प्रश्न के रूप में भारतीय पूँजीवादी वर्ग का आन्तरिक राजनीतिक मसला हल नहीं हो सकता था। अतः लाचार होकर हिंदू पूँजीपतियों और ब्रिटिश साम्राज्यवादी-पूँजीवादी वर्ग भारत-विभाजन करने को प्रस्तुत हो गये थे। सन् १९४७ ई० की ३ जून को ब्रिटिश सरकार ने निम्नलिखित घोषणा की :—

(१) "ता० २०-२-४७ को ब्रिटिश भारत में हिन्दुस्तानियों के हाथों में सन् १९४८ ई० के जून तक शासन-सत्ता दे देने की घोषणा की गई थी, और यह आशा की थी कि १६ मई की कैबिनेट मिशन की आयोजना को कार्यान्वित करने में प्रमुख पार्टियाँ सहयोग करेंगी और भारतवर्ष के लिये एक विधान तैयार करेंगी, जो सभी के स्वीकार करने योग्य होगा। यह आशा नहीं पूरी हुई।

(२) "मद्रास, संयुक्त प्रान्त, सी० पी० और बरार, आसाम, उड़ीसा, बिहार और उत्तर-पश्चिम सरहद प्रान्त, अजमेर-मारवाड़ तथा कुर्ग के अधिकांश प्रतिनिधियों ने नये

विधान तैयार करने में काफी प्रगति की है। दूसरी ओर मुस्लिम लीग पार्टी तथा बंगाल और पंजाब के अधिकांश प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लेने से इन्कार कर दिया है।

(३) "यह सर्वदा ब्रिटिश सरकार की इच्छा रही कि हिन्दुस्तानी जनता की इच्छा के अनुसार शासन-सत्ता सौंपा जाय। भारत के प्रमुख राजनीतिक दलों के बीच समझौते हो जाने से यह कार्य सरल हो जाता। इसके अभाव में भारतीय जनता की इच्छा के अनुसार शासन-सत्ता सौंपने की आयोजना तैयार करने का ब्रिटिश सरकार के ऊपर आया है। भारतवर्ष के नेताओं के साथ पूर्ण परामर्श के उपरान्त निम्नलिखित आयोजना लागू करने का निश्चय ब्रिटिश सरकार ने किया है। यह स्पष्ट कर देती है कि यह किसी प्रकार का भारतवर्ष के लिये अन्तिम विधान तैयार करने की इच्छा नहीं रखती है, यह तो भारतीयों का काम है और न इस आयोजना में संयुक्त भारत के लिये सम्प्रदायों के बीच समझौते के लिये प्रस्तावना ही करती है।

(४) "मौजूदा विधान परिषद के कार्य में किसी प्रकार का विघ्न डालने का ख्याल ब्रिटिश सरकार का नहीं है। सरकार यह आशा करती है कि इस घोषणा के उपरान्त मुस्लिम लीग विधान परिषद में अवश्य शामिल होगी।

विभाजन की आयोजना

(५) "बंगाल और पंजाब के प्रान्तीय धारा सभा (इन यूरोपियन सदस्यों के अलावे)—इनमें से प्रत्येक दो हिस्से में बैठेगी, एक में मुस्लिम बहुमत जिलों के प्रतिनिधि और दूसरे में प्रान्त के बाकी हिस्सों के प्रतिनिधि बैठेंगे। प्रान्त की

आबादी का निर्णय करने के लिये सन् १६४७ ई० का जन-गणना अधिकार रूप में माना जायगा। इस घोषणा के परिशिष्ट में मुस्लिम लीग बहुमत जिलों का नाम दे दिया गया है।

(६) "प्रत्येक प्रान्तीय धारा सभा के दो भागों में बैठे हुए सदस्यों को प्रान्त विभाजित हो या नहीं पर वोट देने का अधिकार होगा। अगर दोनों हिस्सों में कोई भी भाग के सदस्यों का बहुमत प्रान्त के विभाजन के पक्ष में मत देता है तो विभाजन माना जायगा और इसके लिये प्रबन्ध किया जायगा।

(७) "विभाजन के प्रश्न पर निर्णय करने के पूर्व प्रत्येक हिस्से के प्रतिनिधियों को यह जानना आवश्यक है कि दो भागों के संयुक्त प्रान्त रखने के निर्णय के उपरान्त प्रान्त किस विधान परिषद में शामिल होगा। इसके लिये अगर कोई सदस्य ऐसी माँग पेश करे, तो प्रान्तीय धारा सभा के सभी सदस्यों (यूरोपियन सदस्यों को छोड़कर) की बैठक होगी, जिसमें यह निर्णय किया जायगा कि प्रान्त किस धारा-सभा में शामिल होगा। अगर इसके दोनों भाग एक ही साथ रहने का निर्णय करें।.........

(११) "उत्तर-पश्चिम सरहदी प्रान्त की अवस्था भिन्न है। इसके तीन सदस्यों में से दो भारतीय विधान परिषद में भाग ले रहे हैं, लेकिन यह स्पष्ट है कि इसकी भौगोलिक स्थिति तथा अन्य दूसरी चीजों को देखते हुए, अगर पंजाब का कोई भी भाग पूर्णतः मौजूदा विधान परिषद में शामिल नहीं होने का निर्णय करता है, उस समय उत्तर-पश्चिम सरहदी प्रान्त को फिर से विचार करने का अवसर देना आवश्यक हो जाता

है। इसके अनुसार, ऐसी हालत में मौजूदा प्रान्तीय धारा के वोटर मत देंगे कि यह किस विधान परिषद में शामिल हो। जनमत लेने का प्रबन्ध प्रान्तीय सरकार की सलाह से गवर्नर-जेनरल के मातहद होगा।······

(१२) "ब्रिटिश बेलूचिस्तान का सदस्य मौजूदा विधान परिषद् में बैठ रहा है। इसका भौगोलिक परिस्थिति के कारण इस पर फिर विचार करने का इसे अवसर देना चाहिये कि यह किस विधान परिषद् में शामिल हो। यह कैसे हो सकता, इस पर गवर्नर जेनरल गौर कर रहे हैं।

(१३) "यद्यपि आसाम प्रधानतः गैरमुस्लिम प्रान्त है। इसके सिलहट जिले में, जो बंगाल से मिला हुआ है, अधिकांश मुसलमान रहते हैं। यह माँग रही है कि बंगाल के विभाजन के उपरान्त इसे बंगाल में मुस्लिम भाग के साथ मिला देना चाहिये। इसके अनुकूल, अगर बंगाल का विभाजन निश्चय हो जाता है, तो आसाम की प्रान्तीय सरकार की सलाह से गवर्नर-जेनरल के मातहद सिलहट जिले में जनमत लेना होगा कि क्या यह आसाम का अंश होकर रहेगा या पूर्वीय बंगाल के नये प्रान्त में शामिल होगा। अगर यह प्रान्त स्वीकार करे और पूर्वीय बंगाल में शामिल होने के पक्ष में जनमत होता है, तो बंगाल और पंजाब की तरह सीमा-निर्धारण कमीशन नियुक्त होगा।

दिल्ली से बोलते हुए वायसराय ने इस घोषणा को भारतीय जनता के सामने पेश किया। कांग्रेस की ओर से इसका स्वागत करते हुए पंडित नेहरूजी ने भारतीय जनता से इसे स्वीकार करने की अपील की और कहा कि गांधीजी भी इससे सहमत

हैं। मिस्टर जिन्ना ने भी अपनी व्यक्तिगत स्वीकृति प्रकट करते हुए कहा कि इस पर लीग कौन्सिल शीघ्र ही निर्णय करेगी। ता० ४-६-४६ को प्रार्थना के बाद गांधीजी ने देश को इसे स्वीकार करने की सलाह दी और कहा कि इसे कांग्रेस द्वारा स्वीकृत होने के कारण वे कांग्रेस के खिलाफ बगावत न करें बल्कि आज की परिस्थिति में वे इसमें इसके साथ खड़े हों।

ता० ७-६-४७ को वायसराय ने हिन्दुस्तान के सात नेताओं से बातें कीं कि भारत-विभाजन के सम्बन्ध में क्या कदम उठाया जाये। ता० ६-६-४७ को मुस्लिम लीग की कौन्सिल ने ३ जून की ब्रिटिश आयोजना को स्वीकार किया, साथ ही साथ प्रान्तों के विभाजन पर रोष व्यक्त किया। ता० १२-६-४७ को पैंथिक ऐसम्बली पार्टी, श्री सिरोमणि अकाली दल की कार्यकारणी तथा प्रतिनिधि पैन्थिक बोर्ड की संयुक्त कान्फ्रेन्स हुई। उसमें पंजाब के विभाजन के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया। साथ ही साथ यह भी ऐलान किया गया कि पंजाब का ऐसा विभाजन, जो सिख सम्प्रदाय को विभाजित करेगा, सिख सम्प्रदाय सहन नहीं करेगा।

ता० १४-६-४७ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक दिल्ली में हुई। ३ जून की ब्रिटिश घोषणा को स्वीकार करने की इसे सलाह देते हुए गांधीजी ने कहा कि यह ख्याल रखना चाहिये कि कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटी उनके प्रतिनिधि के रूप में है। वह इसे स्वीकार कर चुकी है। यह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का कर्तव्य है उनके पीछे खड़े होना।... अगर इस परिस्थिति में यह इसे अस्वीकार कर देती है, तो संसार क्या सोचेगा। सभी दलों ने इसे स्वीकार किया है। यह

कांग्रेस के लिये अपनी बातों से पीछे हटना उचित नहीं होगा। अगर आप लोग इसे काफी महसूस नहीं करते, और इसे अस्वीकार कर दिया तो यह देश के लिये घातक होगा। इसका परिणाम यह होगा कि आप लोगों को नये नेता तलाश करना होगा, जो केवल कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटी को नहीं बनायेंगे, बल्कि शासन की भी जिम्मेदारी ले सकें। अन्त में, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने ३ जून की घोषणा स्वीकार किया।

ता० १६-६-४७ को कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटी की बैठक हुई, उसने एक प्रस्ताव द्वारा उत्तर-पश्चिम सरहदी प्रान्त में जनमत लेने का विरोध किया।

ता० २३-६-४७ को पंजाब एसेम्बली के पूर्वी पंजाब के सदस्यों की एक बैठक हुई और ५० सदस्यों ने पंजाब के विभाजन के पक्ष में और २२ सदस्यों ने विभाजन के विरुद्ध में मत दिया। पश्चिमी पंजाब के सदस्यों ने बहुमत से पंजाब विभाजन के विरुद्ध में प्रस्ताव पास किया। पंजाब एसेम्बली की बैठक में इसके ९१ सदस्यों ने नये विधान परिषद में और ७७ सदस्यों ने मौजूदा विधान परिषद में शामिल होने के पक्ष में मत दिया।

ता० १-७-४७ को सेना सम्बन्धी यह निर्णय किया गया कि १५ अगस्त से और जब तक सेना का विभाजन पूरा न हो जाये, तब तक, मौजूदा, कमांडर-इन-चीफ, संयुक्त सेना का सुप्रीम कमाण्डर होगा।

भारतवर्ष में सभी मौजूदा सेना एक प्रबन्धकर्त्ता नियन्त्रण के तब तक मातहद होगी, जब तक यह दो स्पष्ट हिस्सों में

विभाजित न हो जाये, और दोनों सरकार इसके प्रबन्ध—वेतन, भोजन, कपड़ा, और हथियार वगैरह से अपनी सेना को सुसज्जित करने – के लायक न हो जाँय।............[क्योंकि दोनों—हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान में पूँजीवाद तथा पूँजीवादी व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिये यह करना उनके लिये आवश्यक था।]

ता० ४-७-४७ को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में भारतीय स्वतंत्रता का बिल पेश किया गया, जिसके अनुसार हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दो अलग-अलग उपनिवेश कायम हुए। ता० १०-७-४७ को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने यह घोषित किया कि मिस्टर जिन्ना पाकिस्तान के गवर्नर-जेनरल और माउन्ट-बैटेन हिन्दुस्तान के गवर्नर-जेनरल मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस की सिफारिश से नियुक्त किये गये। ता० १३-७-४७ को सिलहट जिला ने पूर्वी बंगाल में शामिल होने का निर्णय किया। ता० १४-७-४७ को विधान परिषद के चौथे सेशन में मुस्लिम लीग भी शामिल हुई। ता० १५-७-४७ को भारतीय स्वतंत्रता कानून (बिल) पास हो गया। ता० १५-७-४७ को इसे सम्राट् की स्वीकृति प्राप्त हो गई और पार्लियामेन्ट से यह घोषित किया गया और तब से दो उपनिवेश अस्तित्व में आये। ता० १६-७-४७ को अन्तःकालीन सरकार की स्थापना की गई। इसकी घोषणा वायसराय-भवन से की गई।

ता० २०-७-४७ को उत्तरी-पश्चिमी सरहदी प्रान्त में जनमत लेने के उपरान्त प्रतिशदी ५०.४६ ने पाकिस्तान में शामिल होने के पक्ष में मत दिया।

इस घोषणा के अनुसार सन् १९४७ ई० के १५ अगस्त को साम्प्रदायिक आधार पर पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की स्थापना होने जा रही थी। इसके अनुसार पंजाब और बंगाल हिन्दू और मुस्लिम में बाँटा जायेगा। जिन जिलों में मुसलमान बहुमत में हैं, वे जिले पाकिस्तान में शामिल किये गये और जिन जिलों में हिन्दू बहुमत में थे, वे जिले हिन्दुस्तान में शामिल किये गये। आसाम प्रान्त में जहाँ मुस्लिम बहुमत रहा, वहाँ इस बात पर जनमत लिया जायेगा कि वहाँ के लोग पाकिस्तान में शामिल होना चाहते हैं या हिन्दुस्तान में। अभी तक उत्तरी-पश्चिमी सरहदी प्रान्त के मुसलमान कांग्रेस के प्रभाव में थे। वहाँ के बारे में इस घोषणा के अनुसार प्रान्त भर में इस बात पर जनमत लिया जायेगा कि वहाँ के लोग पाकिस्तान में सम्मिलित होना चाहते हैं यह हिन्दुस्तान में। यह सब १५ अगस्त के पूर्व समाप्त हो जाना था। साथ ही साथ १५ अगस्त के पूर्व पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की सीमा भी निर्धारित हो जाती थी।

कांग्रेस, लीग और ब्रिटिश सरकार के नुमाइन्दों को लेकर घोषणा के बाद तुरन्त सीमा निर्धारित कमेटी का निर्माण हुआ, जिसने बिना विलम्ब कार्य प्रारम्भ कर दिया था। उत्तरी-पश्चिमी सरहदी प्रान्त और आसाम के मुस्लिम बहुमत भागों में जनमत लिया गया और वे पाकिस्तान में शामिल होने के पक्ष में मत दिया। इस ऐतिहासिक घोषणा के अनुसार भारतीय शासन-सत्ता भारतीयों के हाथों में हस्तांतरित होने को थी। अतः १५ अगस्त को हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में शासन-सत्ता कांग्रेस और मुस्लिम लीग के हाथों में हस्तांतरित

की गई, जिसका सिलसिला सन् १९४६ ई० की पहली सितम्बर को आरम्भ हुआ था और सन् १९४७ के १५ अगस्त को समाप्त हुआ।

१५ अगस्त, भारतीय इतिहास में ऐतिहासिक दिवस

यह ऐतिहासिक नियम है कि गुलामी के साथ-साथ आजादी की लड़ाई भी प्रारम्भ हो जाती है। हो भी तो क्यों नहीं। इसी में तो जीवन है; और तभी तो गुलामी की बेड़ी को तोड़कर स्वतंत्रता देवी का स्वागत होता रहा है। ठीक भारतीय जनता ने भी इस ऐतिहासिक नियम का पालन किया। जब से भारतीय जनता गुलामी की बेड़ी में जकड़ी गई थी, तभी से इसे तोड़ फेंकने का प्रयत्न करती रही थी। कभी-कभी इस प्रयत्न ने प्रबल रूप धारणकर क्रान्ति में रूपान्तरित होता रहा था। आजादी-प्राप्ति के प्रयत्नों में हमेशा भारतीय जनता एकता का परिचय देती रही थी। परन्तु जब स्वतंत्रता देवी का स्वागत करने का अवसर उसे प्राप्त हुआ; उस समय वह एकता भारतीय समाज से लोप हो चुकी थी। ऐसी परिस्थिति में भारतीय स्वतंत्रता का पदार्पण हुआ।

३ जून की ब्रिटिश साम्राज्यवादी घोषणा को कांग्रेस और लीग ने पूर्णतः स्वीकार किया और भारतीय सोशलिस्ट पार्टी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की दिल्ली की बैठक में ३ जून की घोषणा को स्वीकार करने के प्रस्ताव पर तटस्थ रहकर इसका समर्थन एक प्रकार से किया और भारतीय स्टालिन-वादियों ने पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय सरकार को पूर्ण सहयोग का अश्वासन दिया था। पाकिस्तान और

हिन्दुस्तान में भारतीयों के हाथों में पूर्ण शासन-सत्ता १५ अगस्त को सौंपी जाने वाली थी। दिल्ली में हिन्दुस्तान के प्रधान मन्त्री के और पाकिस्तान में भी प्रधान मन्त्री के हाथों में १५ अगस्त को धूमधाम से शासन को बागडोर थमाई गई।

सदियों की गुलामी की बेड़ी के टूटने की कल्पनाकर भारतीय जनता उमंग में गोता खाने लगी। बड़े-बड़े शहरों में महीनों से स्वतंत्रता देवी की आरती उतारने की तैयारी हो रही थी। कराची और दिल्ली में विशेष रूप से लाखों रुपये खर्च करके तैयारी की गई थी। १४-१५ अगस्त की १२ बजे रात को दिल्ली में और कराची में स्वतंत्रता देवी का आगमन हुआ। बड़े-बड़े शहरों में सोने और चाँदी के फाटक खड़े किये गये ? खड़े भी क्यों नहीं होते ? पूँजीवादी समाज की विशेषता भी तो यही है कि स्वतंत्रता देवी का स्वागत दरिद्रता तो कर नहीं सकती, यह सौभाग्य लक्ष्मी को ही प्राप्त होता है। ठीक १५ अगस्त को भारत में भी दरिद्रता के बजाय लक्ष्मी ने बड़ी धूम-धाम से बड़े-बड़े महलों में स्वतंत्रता देवी का स्वागत किया। भारतीय पूँजीपतियों ने दिल खोलकर इसके स्वागत में धन खर्च किया, जितना धन स्वागत में खर्च किया उसका दशवाँ अंश भी इसकी प्राप्ति के प्रयत्न में इन्होंने नहीं खर्च किया था। आज खर्च करना स्वाभाविक ही था क्योंकि वास्तव में इनकी ही स्वतंत्रता हुई थी। भारतीय श्रमिक-शोषित-पीड़ित जनता की झोपड़ियों में इसका स्वागत करने के लिये धन कहाँ था ? इसके स्वागत से वंचित रहना उनके जीवन की भौतिक अवस्था की ही माँग थी। शोषित-पीड़ित जनता के घरों में दिवाली के लिये घी कहाँ था। किरासन तेल भी मिलना

सम्भव नहीं था। झोपड़ियों के अन्धकार में धमापन में संलग्न होकर स्वतंत्रता देवी की कल्पना उन्होंने अवश्य की।

१५ अगस्त को १२ बजे रात से यूनियन जैक के स्थान में तिरंगा फहराने लगा था। यह वह तिरंगा नहीं था, जिसके नीचे भारतीयों ने आजादी की लड़ाई में खून बहाया था। चर्खे का स्थान चक्र ने ले लिया था। परिवर्तित तिरंगे के नीचे सर्वप्रथम विभाजित भारत में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई।

एक ओर भारत के बड़े महलों में खुशी का गान हो रहा था और स्वतंत्रता के नशे में चूर हो रहे थे। दूसरी ओर साम्प्रदायिकता के नशे में चूर होकर भारतीय नरसंहार कर रहे थे। आज आजादी दिवस के अवसर पर स्वतंत्रता के नाम पर साम्प्रदायिकता की वेदी पर लाखों शोषित-पीड़ित जनता बलि चढ़ाई गई। हम देख चुके हैं कि पंजाब के पश्चिमी जिलों में ३ जून के पूर्व मुसलमानों के सामूहिक आक्रमण गैरमुस्लिम सम्प्रदायों के ऊपर होने लगे। हजारों की तादाद में काम आ गये। जून घोषणा के उपरान्त स्वभावतः साम्प्रदायिक युद्ध कुछ काल के लिये अस्थगित कर दिया गया था, जिसका कतई अर्थ यह नहीं था कि ३ जून की घोषणा के उपरान्त साम्प्रदायिक युद्ध खत्म हो गया। बड़े पैमाने पर साम्प्रदायिक युद्ध की तैयारी तथा संगठन होने लगा था। ज्योंही १५ अगस्त को भारत आजाद हो गया और भारतीयों के हाथों में शासन-सत्ता सौंपी गई, त्योंही पंजाब के सम्प्रदायों ने भी अपने को आजाद समझकर एक दूसरे के खून की नदी बहाने लगे। कुछ अंश तक कलकत्ता ने भी पंजाब का अनुकरण करने का

प्रयत्न किया था, लेकिन शीघ्र ही शान्ति हो गई थी। इसके परिणाम-स्वरूप लाखों की तदाद में पंजाब के अन्दर मारे गये और करोड़ों की तदाद में बेघर-बार के पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में मारे-मारे फिर रहे हैं। न रहने का ठिकाना और न खाने का। आजाद भारत में आज सामाजिक जीवन की ऐसी भौतिक अवस्था हो गई है कि सामाजिक जीवन के विकास तथा प्रगति अगर असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गई है।

१०

उपसंहार

मानव समाज के इतिहास के विश्लेषण से यह स्पष्टत: ज्ञात होता है कि आधुनिक सभ्यता का विकास नवीन प्रस्तर कालीन सभ्यता के उदय से प्रारम्भ होता है, जिसे जन्म देने का गौरव भारतवर्ष को प्राप्त है। इतना ही नहीं, सोलहवीं सदी में सर्वप्रथम भारतवर्ष में सामन्त-समाज के गर्भ में पूँजीवाद का अंकुर उगने और बढ़ने लगा था। परन्तु इसके पूर्व कि यह भ्रूण-समाज सर्वाङ्ग पूर्ण हो सामन्त समाज के गर्भ से जन्म लेगा, विदेशी व्यापारियों के आगमन से इसका गर्भ में ही हत्या कर दिया गया। अतः सर्वप्रथम पूँजीवादी सभ्यता भारतवर्ष में ही विकसित होने लगता था, लेकिन समय की गति ने इसकी गति को भी परिवर्तित कर दिया और भारत के आधार पर ब्रिटेन में इसका विकास होने लगा। सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में भारतवर्ष में पूँजीवाद के अंकुर के साथ-साथ राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता भी विकसित होने लगी था। परन्तु अंग्रेज तथा अन्य विदेशी व्यापारियों के भारतवर्ष में आगमन से भारतीय पूँजीवाद

का विकसित होते हुए अंकुर मुरझाने लगा और भारतीय व्यापार पूर्णतः ब्रिटिश व्यापारियों के हाथों में चले जाने के साथ-साथ यह एकदम सूख गया। क्योंकि अंग्रेजों के हाथों में भारतीय व्यापार चले जाने से, भारतीय श्रमिक जनता के श्रम का अतिरिक्त मूल्य बजाय हिन्दुस्तान में एकत्र हो पूँजी का रूप ग्रहण करता, हिन्दुस्तान के बाहर प्रधानतः ब्रिटेन में एकत्र होने लगा, जिसके आधार पर सर्वप्रथम पूँजीवाद का विकास ब्रिटेन में हुआ था। इसका ऐतिहासिक परिणाम यह हुआ कि एक ओर भारतीय पूँजीवाद तथा विकसित होते हुए का हत्या कर डाला गया और दूसरी ओर ब्रिटिश पूँजीवाद का उदय हुआ, जिसके आधार पर संसारव्यापी पूँजीवादी व्यवस्था की स्थापना हुई।

ज्यों-ज्यों भारतीय श्रमिक जनता के श्रम का अतिरिक्त मूल्य भारतवर्ष से बाहर जाकर ब्रिटेन में एकत्र होने लगा, त्यों-त्यों ब्रिटेन पूँजीवाद के उदय की पृष्ठ-भूमि बनता गया। समय की गति के साथ भारतवर्ष की श्रमिक जनता के श्रम के अतिरिक्त मूल्य की मात्रा तथा ब्रिटेन में आगमन की गति भी तीव्र होती गई। और यह (अतिरिक्त मूल्य) क्रमशः पूँजी में रूपान्तरित होता गया, जिसके परिणामस्वरूप पूँजीवाद के विकास की गति क्रमशः तीव्रतर होती गयी। इसका प्रभाव ब्रिटेन के आर्थिक जीवन तक ही केवल सीमित नहीं रहा था, बल्कि इससे ब्रिटिश सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन भी प्रभावित होने लगा था। पूँजीवाद के उदय तथा विकास के साथ-साथ ब्रिटिश सामन्तवादी ढाँचा भी क्रमशः पूँजीवादी ढाँचे में परिवर्तित होती गई। जिसके आधार पर पूँजीवादी

राजनीतिक व्यवस्था व्यवस्थित होने लगी थी। एक ओर भारतवर्ष की सामन्तवादी राज-शक्ति, अकबर बादशाह के युग में केन्द्रभूत होकर शक्तिशाली हो रही थी, क्रमशः क्षीण होती गई थी और दूसरी ओर ब्रिटेन में राज-शक्ति केन्द्रभूत होकर दिन प्रतिदिन शक्तिशाली होती जाती थी। जिसके परिणाम-स्वरूप भारतवर्ष ब्रिटेन की गुलामी की जंजीर में बँधता गया था।

जब अंग्रेज भारतवर्ष में व्यापार करने के लिए आये थे, उस समय भारतवर्ष का अधिकांश एक मजबूत केन्द्रीय शासन द्वारा व्यवस्थित हो रहा था। परन्तु जब व्यापार के अतिरिक्त शासन-सत्ता को हस्तान्तरित करने की नीति वह (अंग्रेज) कार्यान्वित करने लगे थे, उस समय तक यह (भारतवर्ष) सामन्तशाही राजाओं के मातहत टुकड़े-टुकड़े हो गया था और सरलतापूर्वक एक के बाद दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे को अपनी गुलामी की जंजीर में बाँधता गया था। ब्रिटिश पूँजीवाद के विकास तथा प्रगति के लिए और ब्रिटिश सरकार के लिए सामन्तवादी टुकड़ों में भारत-विभाजन लाभ-दायक नहीं था। अतः सारे भारत को एक केन्द्रीय शासन के मातहद गूँथने का प्रयास ब्रिटिश सरकार ने किया और एक मजबूत और दृढ़ केन्द्रीय शासन-सत्ता की स्थापना की थी।

एक ओर केन्द्रीय शासन-सत्ता की स्थापना के कारण भारतीयों में स्वभावतः एकता का भाव उदय तथा विकसित होने लगा। साथ ही साथ ब्रिटिश गुलामी के साथ-साथ ब्रिटिश विरोधी आजादी की लड़ाई भारतीयों में दिन प्रतिदिन एकता की भावना को मजबूत और दृढ़ करता गया था, जिसकी प्रबल

शक्ति को अंग्रेज सरकार ने सन् १८५७ ई० की प्रथम आजादी की लड़ाई के अवसर पर अनुभव किया था। दूसरी ओर ब्रिटिश साम्राज्यवाद की छत्र-छाया में भारतीय पूँजीवाद का अंकुर उगने लगा था। इसके साथ-साथ भारतीय राष्ट्र और राष्ट्रीयवाद का भी स्वभावतः उदय होने लगा। भारतीय समाज के विकास तथा प्रगति के साथ यह भी विकसित होता गया, परन्तु यह (भारतीय राष्ट्र और राष्ट्रीयवाद) पूर्णरूप में विकसित नहीं हो सका था।

उक्त विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि भारतीय पूँजीवाद का स्वभाविक विकास नहीं हो रहा था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की छत्र-छाया में जन्म लेने के कारण यह (भारतीय पूँजीवाद) अपने उदय काल से ही विरोध का सामना करते हुए विकसित होता रहा था। एक ओर ब्रिटिश केन्द्रीय शासन-सत्ता की स्थापना और इसके विरोध आजादी की लड़ाई के संचालन से भारतीय जनता की एकता की भावना राष्ट्रीयवाद में रूपांतरित हो रही थी और भारतवर्ष आधुनिक राष्ट्र में विकसित होने लगा था। दूसरी ओर उन राष्ट्रीयवादी भावनाओं को विकसित होते देखकर ब्रिटिश सरकार अपने अस्तित्व के लिये भयभीत होने लगी थी। इसे भंग करने के प्रयास में यह सर्वथा व्यस्त रहने लगी। इस प्रयास को सफल बनाने में भारत की प्रतिक्रियावादी शक्तियों तथा राष्ट्रीय-सुधारवादी-पूँजीवादी नेतृत्व के सुधारवादी वैधानिक नीति से सर्वथा पर्याप्त सहायता इसे (ब्रिटिश सरकार) प्राप्त होती रही थी। ज्यों-ज्यों भारतीय शोषित-श्रमिक जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों के दबाव से ब्रिटिश सरकार भारतीय मध्यम वर्ग के

हाथों में राजनीतिक सुधार प्रदान करती गई त्यों-त्यों भारतीय शोषित-श्रमिक-जनता के अन्दर फूट पैदा होता गया और क्रमशः उनकी एकता भी भंग होती गई। जब सन् १९४७ ई० के १५ अगस्त को भारतीय शासन-सत्ता भारतीयों के हाथों में सौंपी गयी, उस समय सम्प्रदायिक आधार पर पाकिस्तान और हिन्दुस्तान केवल विभाजित नहीं था, बल्कि इस भौगोलिक विभाजन के अतिरिक्त भारतीय शोषित-श्रमिक जनता भावनाओं में भी विभाजित थी, जो उसकी पूँजीवादी गुलामी और शोषण के खिलाफ मुक्ति की लड़ाई के लिये घातक है।

सन् १९४६ ई० से साम्प्रदायिक युद्ध ने सदियों से ब्रिटिश विरोधी आजादी के आन्दोलन से विकसित भारतीय जनता की एकता को एकदम भंग कर दिया। इतना ही नहीं आज भारतवर्ष केवल हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में अलग-अलग राज्य की स्थापना की गई है, बल्कि भारतीय जनता में एक की भावना खत्म हो गई है और इसका स्थान एक दूसरे सम्प्रदाय के प्रति अविश्वास ने ग्रहण कर लिया है। आज हिन्दुस्तान के अन्दर वास्तविकता यह है कि मुसलमानों के प्रति गैरमुसलमानों का विश्वास कतई जाता रहा। यह (गैर-मुसलमान) समझते हैं कि पाकिस्तान की स्थापना में हिन्दुस्तान के मुसलमानों का बहुत बड़ा हाथ रहा। वे कभी भी हिन्दुस्तान के प्रति ईमानदार नहीं होंगे। आज साम्प्रदायिकता इस रूप में विद्यमान हो रही है। पाकिस्तान में भी गैरमुसलमानों के प्रति मुसलमानों का अधिक अविश्वास है। ये (मुसलमान) समझते हैं कि वह (गैरमुस्लिम) हमेशा पाकिस्तान की स्थापना का विरोध करता रहा था, इसकी

स्थापना के बाद वह कभी भी इसके प्रति ईमानदार हो सकेगा। पाकिस्तान में भी इस प्रकार की भावनाओं के रूप में साम्प्रदायिकता विकसित होती जा रही है।

यहाँ हम यह न भूलें कि सन् १९४७ ई० के १५ अगस्त को क्रान्ति के द्वारा भारतीय शोषित-श्रमिक जनता ने शासन-सत्ता हस्तांतरित नहीं की बल्कि इसकी बढ़ती हुई क्रान्तिकारी शक्ति को देखकर भारतीय और ब्रिटिश पूँजीवादी वर्ग आतुर हो उठा और भारतीय प्रतिक्रियावादी शक्तियों तथा भारतीय पूँजीवादीवर्ग के साथ गठबन्धन करके समझौता द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार ने भारतीय शासन की बागडोर भारतीय पूँजीवादी वर्ग के प्रतिनिधियों के हाथों में सौंप दी जो प्रधानतः भारतीय पूँजीवादी तथा मध्यमवर्ग के लिये अधिक लाभदायक है। अभी उनके यह भूत सवार है कि कहीं श्रमिक-शोषित जनता संगठित हो उनके अस्तित्व को ध्वंस न कर दे। यही कारण है कि जहाँ कहीं शोषण के खिलाफ शोषित-पीड़ित जनता डट जाती है और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करती है, तुरन्त और आम जनता की सहानुभूति को खत्म करने के हेतु यह नारा बुलन्द करने लगते हैं कि राष्ट्र खतरे में हो गया है। खतरे के समय यह सब राष्ट्रीय सरकार को कमजोर करने का प्रयत्न कर रहे हैं और राष्ट्र तथा राष्ट्रीय आजादी के लिये ये सब घातक हो रहे हैं। इस प्रकार की बातें दोनों राज्यों में आज चल रही हैं। आज इस प्रकार की भौतिक परिस्थिति से दोनों राज्यों में श्रमिक-शोषित जनता की मुक्ति की लड़ाई गुजर रही है।

यह ठीक है कि सन् १९४७ ई० के १५ अगस्त को भारतीय-शासन-सत्ता भारतीयों के हाथों में सौंपी गई है। लेकिन श्रमिक-शोषित-पीड़ित जनता के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन की भौतिक अवस्था में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। आज भी उनका जीवन भारतीय पूँजीवादी और ब्रिटिश साम्राज्यवादी शोषण से मुक्त नहीं है। आज भी श्रमिक-शोषित जनता पूँजीवादी शोषण और गुलामी के अन्दर जीवन व्यतीत करने को बाध्य हो रही है। जीवन की यह अवस्था तब तक कायम रहेगी, जब तक कि पूँजीवाद तथा पूँजीवादी व्यवस्था ध्वंस न कर दिया जाय और इसके अवशेष साम्यवादी वर्ग-रहित व्यवस्था की स्थापना न हो जाय। यह तब तक सम्भव नहीं है, जब तक मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के अन्दर जीवन से परेशान हो बर्दाश्त करने को तैयार न हो और न शोषक शासक वर्ग ही पुराने ढंग से शासन कर सके।

यहाँ हम यह न भूलें कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान साम्प्रदायिकता के आधार पर आज दो स्वतंत्र राज्य के रूप में भारतीय स्वतंत्रता के साथ-साथ स्थापित हुए हैं। इन दोनों राज्यों में पूँजीपति पूर्ण राष्ट्रीय राज्य के रूप में इन्हें विकसित करने का प्रयास कर रहा है। अतः आज हम यह स्वीकार करके आगे बढ़ें कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान अलग-अलग दो स्वतंत्र पूँजीवादी राज्य के रूप में विद्यमान हैं। यह ठीक है इस प्रकार के साम्प्रदायिक आधार पर भारतवर्ष का विभाजन होना भारतीय सामाजिक जीवन के विकास तथा प्रगति के लिये घातक अवश्य रहा है और है। हम पूँजीवादी वर्ग तथा इसके दलाल के जाल में फँसकर वास्तविकता को न भूलें।

आज इन दोनों पूँजीवादी राज्यों में यह जोरों से प्रचार किया जाता है कि जब तक यह दूसरे को अपने में हजम नहीं कर लेता है, तब तक जीवन की भौतिक अवस्था में विशेष उन्नति होने की संभावना नहीं ज्ञात होती है। दोनों राज्यों की शोषित-श्रमिक जनता को यह भूलना नहीं है कि अगर किसी भी तरह ऊपर से (पूँजीवादी वर्ग के द्वारा) पाकिस्तान हिन्दुस्तान में या हिन्दुस्तान पाकिस्तान में मिला दिया जाता है, तो यह केवल पूँजीपतियों के लिये ही लाभदायक हो गया और इसके द्वारा शोषित-श्रमिक जनता की गुलामी और शोषण की बेड़ी मजबूत होगी. यह इसके सामाजिक और आर्थिक जीवन के विकास के लिये घातक अवश्य होगा। इसके परिणामस्वरूप आज प्रतिक्रियावादी वर्ग के द्वारा शोषित-पीड़ित जनता के बीच पैदा किया हुआ दरार और भी चौड़ा हो जायगा, जो केवल पूँजीवादी वर्ग के लिये ही लाभदायक होगा।

यह भी हम अस्वीकार नहीं करते हैं कि साम्प्रदायिक आधार पर भारतवर्ष के विभाजन के परिणामस्वरूप शोषित-श्रमिक जनता की क्रान्तिकारी शक्ति भी आज विभाजित हो गई है, जो श्रमिक-शोषित-पीड़ित जनता के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के विकास तथा प्रगति के मार्ग में बड़ा भारी अड़चन पैदा हो गया है। परन्तु इससे पूँजीवादी वर्ग का अस्तित्व कुछ काल के लिये सुरक्षित ज्ञात होने लगा है। मानव समाज के इतिहास के विश्लेषण से यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि पूँजीवाद तथा पूँजीवादी व्यवस्था के कायम रहते हुये शोषित-श्रमिक-पीड़ित जनता के पूँजीवादी शोषण और गुलामी

के जीवन का विकास तथा प्रगति सम्भव नहीं हो सकती है। यह तभी सम्भव हो सकेगी, जब पूँजीवादी तथा पूँजीवादी व्यवस्था को ध्वंसकर संसारव्यापी साम्यवादी वर्गरहित व्यवस्था की स्थापना हो।

उक्त बातों का कतई यह अर्थ नहीं है कि संसारव्यापी पूँजीवाद तथा पूँजीवादी व्यवस्था को ध्वंस करने के हेतु संसार भर में एक साथ एक ही समय और एक ही तरह की समाजवादी क्रान्ति होगी। जो ऐसा समझता है, वह साम्य-वादी अर्थात् क्रान्तिकारी समाजवादी नहीं है और न वह साम्यवाद के सिद्धान्तों को ही जानता है। विभिन्न देशों की भिन्न भौतिक अवस्था के अनुसार विभिन्न समय, विभिन्न रूप में और विभिन्न प्रकार की होगी। समाजवादी क्रान्ति एक बहुत बड़ा सिलसिला है जो एक देश में पूँजीवाद तथा पूँजी-वादी व्यवस्था को ध्वंसकर पंचायती व्यवस्था की स्थापना होती और इसके बाद दूसरे देश में और दूसरे के बाद तीसरे देश में पूँजीवाद तथा पूँजीवादी व्यवस्था के अवशेष पर पंचायती व्यवस्था कायम की जाती है। जो संसारव्यापी भावी साम्यवादी व्यवस्था की नींव होगी। इसके लिये यह आवश्यक है कि ज्यों-ज्यों भिन्न देशों में पंचायती व्यवस्था स्थापित होती जाये त्यों-त्यों पंचायती समाजवादी संघ विकसित होता जाय और विश्व पंचायती समाजवादी संघ के रूप में स्थापित हो जाये; जिसके आधार पर संसारव्यापी पूँजीवाद और पूँजीवादी व्यवस्था को ध्वंसकर संसारव्यापी साम्यवादी वर्गरहित व्यवस्था की स्थापना सम्भव हो सकेगी। अलग-अलग छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों के अस्तित्व इसके

विकास के मार्ग में बड़ा भारी रोड़ा होगा। आज पूँजीवादी संसार भी ऐसा ही अनुभव कर रहा है और यह प्रयत्न कर रहा है कि अधिक से अधिक पूँजीवादी देशों का एक संयुक्त प्रजातांत्रिक संघ की स्थापना की जाये।

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की भौतिक अवस्था की आज यह ऐतिहासिक माँग है कि अपने-अपने यहाँ शोषित-श्रमिक जनता मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था को ध्वंस करके इसके अवशेष पर समाजवादी पंचायती व्यवस्था शीघ्र से शीघ्र स्थापित करे, जिसके आधार पर साम्यवादी वर्गरहित व्यवस्था वह विकसित कर सकेगी। उक्त ऐतिहासिक कार्य को सम्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि उनके (शोषित-श्रमिक जनता के) अन्दर एकता की भावना हो। एकता की यह भावना पाकिस्तान और हिन्दुस्तान को एक कर देने से नहीं होगी। अगर पूँजीपतियों के आपस के मेल से दोनों एक कर दिया जाता है, इसका स्पष्ट अर्थ है इसके द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था और भी मजबूत तथा दृढ़ बनाना और पूँजीवादी शोषण और गुलामी की जड़ को मज़बूत करना, जिसे शोषित-पीड़ित श्रमिक जनता के लिये सहन करना उसके जीवन के लिये घातक होगा। अतः ऊपर से एक करने के प्रयत्न को विफल बनाना शोषित-श्रमिक का ऐतिहासिक कार्य है।

आज शोषित-श्रमिक जनता के सामने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान को एक करने का मुख्य सामाजिक प्रश्न नहीं है। बल्कि वास्तविक प्रश्न उसके सामने आज है, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में शोषित जनता के बीच एकता की भावना पैदा करना, जिसका एकदम अभाव आज सामाजिक जीवन है।

यह ऊपर से नहीं पैदा की जा सकती बल्कि ऊपर से किये गये प्रयत्नों से इसका प्रश्न और भी जटिल हो जायेगा। इसकी सम्भावना केवल नीचे से किये गये प्रयत्नों से ही है। यह पूँजीवादी शोषण और गुलामी के खिलाफ वर्ग संघर्ष के द्वारा उनके सामाजिक जीवन में विकसित होगी। जब सामूहिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये संघर्ष का आलिंगन कर दमन और अत्याचार के बीच जीवन व्यतीत करने लगेंगे, उस समय क्रमशः उनके अन्दर एक दूसरे के प्रति फैला हुआ अविश्वास दूर होता जायेगा और एक दूसरे में जीवन-मरण के संघर्ष के द्वारा विश्वास उत्पादन होगा, जो उनकी एकता की भावना का मुख्य आधार होगा। अतः आज सभी प्रगतिशील व्यक्तियों का यह ऐतिहासिक सामाजिक कार्य है कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में श्रमिक-शोषित जनता को वर्ग संघर्ष के आधार पर स्वतंत्र वर्ग संगठन में सङ्गठितकर उसके वर्ग संघर्ष को संचालित करें और इसे देशव्यापी वर्ग संघर्ष में विकसित करके समाजवादी क्रान्ति में रूपान्तरित करके पूँजीवाद तथा पूँजीवादी व्यवस्था को ध्वंसकर इसके अवशेष पर दोनों राज्यों में समाजवादी पंचायती व्यवस्था कायम करें। समाजवादी पंचायती व्यवस्था के अन्दर पूँजीवादी गुलामी और शोषण से रहित सामाजिक तथा आर्थिक जीवन को व्यतीत करने में यह श्रमिक जनता अनुभव करेगी कि समाज के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन के विकास एवं प्रगति के लिये हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के संयुक्त समाजवादी पंचायती संघ की स्थापना आवश्यक है और उनके सामूहिक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप संयुक्त भारतीय समाजवादी पंचायती संघ की स्थापना हो

सकेगी जो विश्व समाजवादी संघ का आधार होगा।

आज के सामाजिक जीवन के विश्लेषण से यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि साम्प्रदायिकता के विष ने निम्न-मध्यम तथा बुद्धि-जीवी वर्ग के सामाजिक जीवन को अधिक प्रभावित किया है। आज इनके बीच अधिक अविश्वास फैला हुआ है और यह शोषित-श्रमिक जनता को भी अपने विचारों से प्रभावित करते रहते हैं। इनके बीच सद्भावना पैदा करना निहायत जरूरी है। यह आवश्यक होता है कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में इसके लिये प्रगतिशील शक्तियाँ लड़ें कि अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के किसी भी प्रकार के अधिकार पर आक्रमण न हो। उन्हें भी पूर्ण नागरिक अधिकार तथा धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्वतंत्रता प्राप्त हो। उनकी भाषा तथा साहित्य की पूर्ण रक्षा की जाये। इस बात की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये कि उन्हें उचित ढंग से उनके अधिकार के अनुसार नौकरी वगैरह दी जाये। उनके साथ किसी प्रकार का अन्याय न हो। अगर होता हो तो उसे दूर करने के हेतु जन-आन्दोलन का संचालन करें। अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के होने के नाते उनके नागरिक अधिकार के ऊपर किसी प्रकार का अड़चन न आने पावे।